दो शब्द

महिला शिक्षा सदन अपने जीवन के बारह वर्ष अर्थात् एक युग समाप्त करके तेरहवे वर्ष में पदार्पण कर रहा है। इस अवधि में सदन के कार्य तथा प्रगति का ब्यौरा आपके सामने है।

जब यह अंकुर लगाया गया था, तब किसी को गुमान भी न था कि इतने थोडे समय में यह सस्था एक वट-वृक्ष का रूप धारण कर लेगी। कहना न होगा कि इस वृद्धि का श्रेय सदन के सरक्षको, सहायको, प्रेमियो, हितैपियो तथा सबसे उपर कार्यकर्ताओ व कार्यकर्त्रियो को है जिन्होने पूरी लगन, तत्परता तथा नि स्वार्थ सेवा से इस पौधे को सीचा है तथा सकटो से बचाया है। उन सबको धन्यवाद देना तथा उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना उनके महान् कार्य के महत्त्व को कम करना होगा। हमारे यहाँ तो गुप्तदान को ही सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। और मैं धन्यवाद भी किस मुह से दू ? उन्होंने सदन को अपनी सस्था समझा है और अपनी सन्तान की तरह इसका लालन-पालन किया है। यह उन्ही की चीज है और इसकी वृद्धि से प्राप्त होने वाला सन्तोप तथा आनन्द किसी औपचारिकता की अपेक्षा नही रखता। अनेक महानुभावो ने सस्था के कार्य का अवलोकन करके इसे जो आशीर्वाद दिये है तथा इसकी उन्नति की कामनाएँ की है उनमे हमें बल तथा उत्साह प्राप्त हुआ है और आगे कार्य करने की प्रेरणा मिली है।

इस अवसर पर यह उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है कि गान्धी सेवा सघ ने हटूण्डी के गान्धी आश्रम की भूमि सदन को सौंप कर यज्ञ की वेदी प्रस्तुत की है और इस यज्ञ में भारत सरकार, भूतपूर्व अजमेर सरकार तथा वर्तमान राजस्थान सरकार ने आर्थिक सहायता के रूप में घृताञ्जलियाँ डाली है। अन्य सस्थाओ तथा महानुभावो की छोटी-मोटी आहुतियाँ यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित रखने में सहायक हुई है। हमने तो केवल समिधाएँ जुटाने का कार्य किया है।

सदन के सम्बन्ध में परिचयात्मक साहित्य तथा इसके कार्य व प्रगति के विवरण समय-समय पर प्रकाशित किये जाते रहे है। परन्तु सदन के कुछ हितैपियो ने सुझाव दिया कि इस अवसर पर एक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय जिसमें सदन के बारे में सारी जानकारी एक जगह मिल सके। यह सुझाव बहुत पसन्द किया गया और साथ ही यह भी सोचा गया कि यदि इस ग्रन्थ मे स्त्री-शिक्षा व बाल-शिक्षा पर कुछ उपयोगी लेख तथा इन क्षेत्रो में कार्य करने वाली देश की अन्य सस्थाओ के परिचय भी सम्मिलित कर दिये जायें तो ग्रन्थ उपादेय बन जायगा। प्रस्तुत 'स्मरण-ग्रन्थ' इसी योजना का फल है।

हमें इस बात का परम हर्ष है कि इसका प्रकाशन हमारे लोकप्रिय नेता प० नेहरू की वर्ष गाठ के दिन, १४ नवम्बर, को हुआ है।

इसकी तैयारी में तथा इसके लिए साधन व सामग्री जुटाने मे जिन लेखको, कवियो, विज्ञापको आदि से सहयोग व सहायता प्राप्त हुई है, उन सबके प्रति सदन की ओर से मै आभार प्रदर्शित करती हूँ। ग्रन्थ के लिए पूज्य विनोबा, महामहिम राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, काग्रेस अध्यक्ष, राजर्षि टण्डनजी आदि महानुभावो ने सन्देश भेजने की कृपा की है, इसके लिए सदन उनका कृतज्ञ है।

इस ग्रथ को अति अल्प समय में सुन्दर और सुचारु रूप से समय पर तत्परता पूर्वक तैयार कर देने के लिए भाई सीताराम गुठे ने जो परिश्रम किया, उसके लिए उनका आभार मानना उनके स्नेही स्वभाव को ठेस पहुचाना होगा।

—भागीरथी उपाध्याय

प्राक्कथन

महिला-शिक्षा-सदन, हटूण्डी की स्थापना ३ अक्टूबर, १९४५ को गांधीजी के बताये आदर्शों के अनुसार नारी जीवन का सर्वांगीण विकास करने के उद्देश्य से हुई। इसी उद्देश्य को सामने रखकर पिछले १२ वर्षों से यह संस्था विभिन्न प्रवृत्तियों का संचालन करती आई है। पाठ्य-क्रम के साथ-साथ छात्राओं के त्रिविध विकास—शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक—पर संस्था के अधिकारियों का विशेष ध्यान रहा है। संक्षेप में, इस संस्था द्वारा शिक्षा, कला और कर्म के समन्वय का प्रयत्न होता रहा है। इस काम को श्रद्धेय हरिभाऊजी उपाध्याय और उनकी कर्म-निष्ठा सहधर्मिणी श्रीमती भागीरथीजी ने शुरू किया था। भागीरथीजी आज दिन तक उसकी मंत्री के रूप में सेवा कर रही हैं। परन्तु वास्तव में अब कई वर्षों से उनकी योग्य पुत्री चिरंजीवी शकुन्तला ने विद्यालय-संचालन की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है और माता-पिता ही के समान लगन और परिश्रम से इस काम को कर रही हैं।

मुझे हर्ष है कि संस्था की सेवा के १२ वर्ष पूरे हो रहे हैं और इस अवसर पर पिछले कार्य का सिंहावलोकन करने के लिए एक ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रंथ में महिलाओं की शिक्षा से सम्बन्धित अन्य सामग्री भी प्रस्तुत की गई है। बड़े सन्तोष की बात है कि इस ग्रंथ के लिए बहुत से लेखकों, कवियों तथा शिक्षा-शास्त्रियों का भी सहयोग प्राप्त हुआ है।

यह विद्यालय प्रारम्भ में कई वर्षों तक जनता के धन से ही चलता रहा है। प्रबन्ध और धन-संग्रह का दोहरा काम इसके संचालकों को करना पड़ा है। अब तो इसे सरकारी सहायता मिल रही है, परन्तु वह इतनी नहीं कि जिससे पूरा खर्च चलाया जा सके। इस कमी को पूरा करने के लिए प्रतिवर्ष अब भी अच्छी खासी रकम जमा करनी पड़ती है, जो आजकल के कठिन दिनों में बहुत परिश्रम और समय मांगती है। संचालकों को इस कठिनाई से मुक्त करने के लिए आवश्यक है कि जनता की पूरी सहायता मिले।

यह विद्यालय कोई साधारण विद्यालय नहीं है। इसके संचालन में गांधीजी के विचारों और सिद्धान्तों का पूरा ध्यान रखा जाता है। इसलिए मैं देश के धनी-मानी सज्जनों से विशेष अनुरोध करती हूं कि वे दिल खोल कर इसके लिए दान दें।

मुझे विश्वास है कि इस संस्था द्वारा आगे और अधिक सेवा होगी तथा इस ग्रंथ का सर्वत्र स्वागत और आदर होगा।

—रामेश्वरी नेहरू

विषय-सूची

आशीर्वाद तथा शुभकामनाएं

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'महिला शिक्षा सदन' की बारहवी वर्षगाठ के अवसर पर एक स्मरण-ग्रन्थ प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। देश के एक कोने मे स्थित यह सस्था महिला-शिक्षा सम्बन्धी महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य कर रही है और सभी द्वारा प्रोत्साहन तथा शुभकामना की अधिकारिणी है। मै छात्राओ को अपना आशीर्वाद भेजता हूँ और 'महिला शिक्षा सदन' की प्रगति की कामना करता हूँ।

राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली
१२ अक्तूबर, १९५७
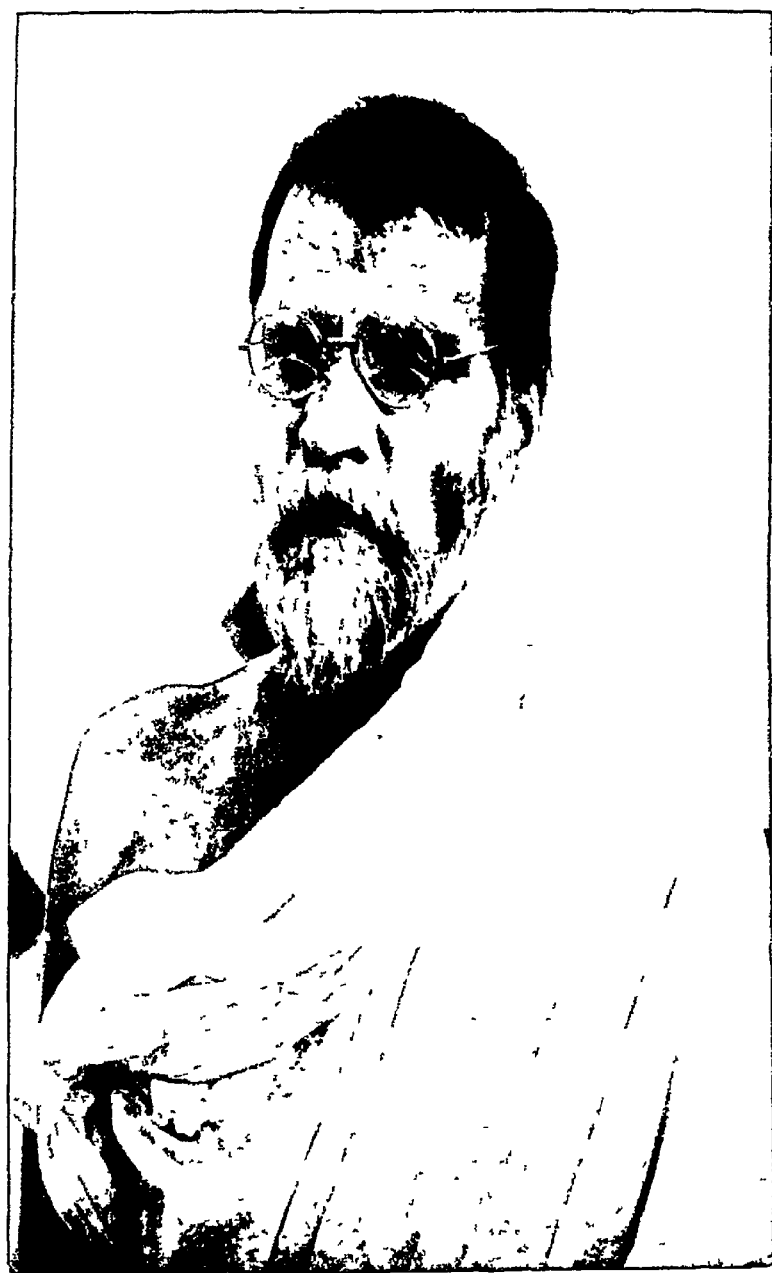
श्री भागीरथी बहन,

शकुंतला का पत्र जीसका आपने जीक्र कीया है, नहीं मीला। महीला शीक्षा सदन के जरीये आप लोगों ने जो सेवा की है, वह जनता को मान्य हो चुकी है। पर जनता का अेक अजीब स्वभाव है। जो वीशेष करता है अुससे वह और अधीक सेवा की अपेक्षा करती है। अुसकी सेवा की मांग बढ़ती जाती है। अुसका वह हक भी है। क्योंकी वही सेवकों की मानी हुई देवता है। सेवा से प्रसाद और प्रसाद से सेवा यह सीलसीला अखंड चले, अीसीमें जीवन की मजा है।

विनोबा

उपराष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि १४ नवम्बर को पंडित जवाहरलाल नेहरू की वर्षगाठ के अवसर पर 'महिला शिक्षा सदन', हटूण्डी एक स्मरण-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है। महिला-शिक्षा के क्षेत्र मे भी हमे अपने देश मे बहुत-कुछ करना है। इस दिशा मे महिला शिक्षा सदन जो कार्य कर रहा है मै उससे परिचित हू और इसमे कोई सन्देह नही है कि आप आगे भी उसे चालू रखेंगे तथा आपके कार्य को उपयुक्त प्रोत्साहन मिलता रहेगा।

शुभकामनाओ के साथ

६ अक्तूबर १९५७ —एस० राधाकृष्णन्

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'महिला शिक्षा सदन' सस्था के १२ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य मे आप एक स्मरण-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे है। हटूण्डी गाधी आश्रम की छत्रच्छाया मे 'महिला शिक्षा सदन' ने महिलावर्ग की जो कुछ सेवाए की है वे सराहनीय है। मै इस शुभ अवसर पर अपनी शुभकामनाए भेज रहा हूँ।

—उ० न० ढेबर

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि 'महिला शिक्षा सदन', अजमेर ने अपनी १२वीं वर्षगाठ के अवसर पर एक ग्रन्थ तैयार करने का आयोजन किया है। हमारे देश की परम्परा मे स्त्रियो को सदैव उच्चतम स्थान प्राप्त रहा है और भारत के सविधान मे भी ऐसे ही आदर्श को सुरक्षित किया गया है। राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र मे स्त्री-पुरुष दोनो को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त है, और जिस प्रकार स्वतत्रता के सग्राम मे देश के महिला-वर्ग ने पुरुषो के साथ साहस और

वीरता का परिचय दिया उसी प्रकार अब आजादी के युग मे महिलाये समाज के कल्याण और निर्माण के कार्य मे हाथ बँटा रही है। स्त्री को हमारे यहा 'गृह लक्ष्मी' कहा जाता है, क्योकि पारिवारिक जीवन मे सुख, समृद्धि और शाति का वातावरण उसी पर मुख्यत निर्भर है। देश और समाज के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए इस प्रकार महिला-वर्ग पर बडी भारी जिम्मेदारिया है और इस उत्तरदायित्व को निभाने मे महिलाओ का उपयुक्त पथ-प्रदर्शन करना 'सदन' जैसी सस्थाओ का विशेष उद्देश्य होना चाहिए। मै आशा करता हू कि पिछले वर्षो की भाति भविष्य मे भी 'शिक्षा सदन' को इस कार्य मे सफलता मिलती रहेगी, और इसके लिए मै अपनी शुभकामनाएँ भेजता हू।

नई दिल्ली
१९ नवम्बर, १९५७

—गोविन्द वल्लभ पन्त

'महिला शिक्षा सदन' की ओर से १४ नवम्बर को जो स्मरण-ग्रन्थ निकलने वाला है उसके लिए मेरी शुभकामना और आशीर्वाद। आपका यह ग्रन्थ नारियो और पुरुषो मे भारतीय सस्कृति तथा नैतिक जीवन के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करे और उनके लिए कर्मनिष्ठ बनने मे सहायक हो, यह मेरी अभिलाषा है।

पुरुषोत्तमदास टण्डन

आपकी सस्था और आप १२ वर्षो से शिक्षा के क्षेत्र मे जो आदर्श कार्य कर रहे है उसके प्रति मेरे मन में प्रशसा के भाव है। इस अवसर पर आप अपनी सस्था और उसके कार्यो का जो परिचयात्मक स्मरण-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे है मै उसकी सफलता चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि ईश्वर आपकी सस्था के उत्तरोत्तर विकास मे सहायक होगा और यह देश का एक अनुकरणीय शिक्षा-सदन बन जायगा।

[signature]

सस्था ने स्त्री-शिक्षा और बालशिक्षा के विषय मे बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। शिक्षा के बारे में गाधीजी ने हमारे सामने जो आदर्श रखा है उसका अमल करके ही हम सच्चा राष्ट्रीय उत्थान कर सकते है। मै इस अवसर पर सस्था के सचालको और अध्यापको का अभिनन्दन करता हूँ और अपनी शुभकामनाएं भेजता हूँ।

मोरारजी देसाई

'महिला शिक्षा सदन' बापू के आदर्शों के अनुसार पिछले कुछ वर्षों से स्त्रियो तथा बालको की शिक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण काम करता आ रहा है। इस समय वह अपने जीवन के १२ वर्ष पूरे कर रहा है। इस अवधि मे इसने जो काम किया है उसके लिए मैं 'सदन' का अभिनन्दन करती हू और आशा करती हू कि महिलाओ मे अधिक-से-अधिक शिक्षा का प्रसार यह करेगा। 'सदन' अपने उद्देश्य मे सफल हो, यही मेरी शुभकामना है।

अमृत कौर

नारी जीवन के सर्वांगीण विकास मे 'सदन' पिछले १२ वर्षों से जो उपयोगी सेवा कर रहा है उसके लिए बधाई। मेरा विश्वास है कि कर्तव्य तथा अधिकार के क्षेत्र मे 'सदन' महिलाओ को अधिकाधिक जागरूक रखने मे सहायक होगा। मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ है।

[signature]

'महिला शिक्षा सदन' के कार्यों को देखने का मुझे अवसर मिला है। वहा की कार्यशैली को देखकर काफी प्रभावित हुआ।

देश मे स्त्री-शिक्षा की बहुत ही आवश्यकता है—ऐसी शिक्षा की, जो एक स्त्री को कुशल गृहिणी और सफल माता बनाने में सहायक हो तथा देश और समाज के प्रति अपना कर्तव्य और दायित्व निभाने की क्षमता दे सके। 'महिला शिक्षा सदन' मे इसी प्रकार की शिक्षा दी जाती है। श्री हरिभाऊजी का सरक्षण तथा भागीरथीजी के मातृस्नेह से 'सदन' की बालिकाओ को ऐसा आदर्श मिलता है, जो उनके जीवन मे बराबर उपयोगी रहेगा। मै 'सदन' की उन्नति चाहता हू।

[signature]

आजादी मिलने के बाद से हम देश-कल्याण के कई कार्य करते रहने का प्रयत्न करते रहे है। ये कार्य तभी अच्छी तरह से चलाये जा सकते है, जबकि जनमत उनको स्वीकार करने को तैयार हो। देश के विभिन्न भागो के अपने दौरे मे मुझे यह पता चला कि जिन क्षेत्रो में काम की अधिक आवश्यकता है वहा काम करना बहुत कठिन है।

व्यापक शिक्षा—खासतौर पर कन्याओ की—में ही इस दशा का एकमात्र इलाज है। मुझे आशा है कि 'महिला शिक्षा सदन' हटूण्डी पुस्तकीय शिक्षा के अलावा अपनी छात्राओ की विचार-धारा को विस्तृत करने और उनमे समाज-सेवा की भावना उत्पन्न करने का भी प्रयत्न करता है।

मेरी शुभकामनाए 'सदन' के साथ है।

इन्दिरा गांधी

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि 'महिला शिक्षा सदन', हटूडी (अजमेर) की तरफ से उसकी अबतक की कार्य-विधियो का दिग्दर्शन एक स्मरण-ग्रथ के रूप मे प्रकाशित किया जाने वाला है। गत १२ वर्षों से 'महिला शिक्षा-सदन' स्त्री-शिक्षा के कार्य को आगे बढाने मे काफी प्रयत्न कर रहा है। मै 'सदन' के कार्य की उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजता हू।

नई दिल्ली

१२ नवम्बर, १९५७

—बा० वि० केसकर

'शिक्षा सदन' ने पिछले कुछ वर्षो मे बडी उन्नति की है। मैने दो वर्ष पूर्व उसके कार्य को देखा था। बडा अच्छा वातावरण है। उसके पीछे हटूण्डी के आश्रम की परम्परा की छाप है।

राजस्थान के विकास में विशेषकर महिला-समाज की सेवा मे 'सदन' अच्छा योग दे, यह हमारी आकाक्षा है।

मोहनसिंह मेहता

बहुत खुशी की बात है कि 'महिला शिक्षा सदन' ने अपने कार्य के १२ वर्ष पूरे किये। नारी शिक्षण का प्रयास योही काफी महत्व रखता है और उसके साथ ही आश्रम मे आवास के कारण चारित्र्य-निर्माण-कार्य भी अच्छी तरह से हो सकता है। 'सदन' ने अपनी शिक्षा में ज्ञान, प्रत्यक्ष कार्य तथा कलाको समाविष्ट करके प्रगति पर अग्रसर भारत के लिए आदर्श महिला निर्माण करने का योग्य प्रयत्न किया है।

मुझे आशा है कि गत १२ वर्ष के अनुभव से लाभ उठाकर और अपने स्मरण-ग्रथ से प्रेरणा लेकर 'महिला शिक्षा सदन' भविष्य मे अधिक प्रशसनीय कार्य कर सकेगा। मेरी यह हार्दिक प्रार्थना है कि 'महिला शिक्षा सदन' की हर प्रकार उन्नति होती रहे।

७-११-१९५७

—जीवराज ना० मेहता

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि 'महिला शिक्षा सदन', हटूडी, अपने उपयोगी जीवन के १२ वर्ष पूरे कर रहा है। इस काल मे इस सस्था ने इस प्रदेश मे महिला-शिक्षा के प्रोत्साहन की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। इस सस्था मे दी जाने वाली शिक्षा का आदर्श केवल ज्ञान-वर्द्धन ही नही है वरन् प्रयत्न इस बात का भी किया जाता है कि महिलाए सुगृहिणी बनें एव समाज तथा देश की प्रगति मे बराबर का भाग ले। 'शिक्षा-सदन' की गतिविधियो में निरन्तर वृद्धि हो रही है और यह आशा की जाती है कि 'महिला शिक्षा सदन' का देश की महिला-सस्थाओ मे विशेष स्थान होगा। इस सस्था की सफलता का श्रेय आदरणीय श्री हरिभाऊजी को है और वे हम सब की बधाई के पात्र है। श्रद्धेय प्रधान मत्री की वर्ष-गाठ के अवसर पर एक स्मरण-ग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन 'शिक्षा-सदन' की ओर से हो रहा है। मै इस प्रयत्न का स्वागत करता हू और आशा करता हू कि 'महिला शिक्षा सदन', हटूडी, सतत उन्नति करता रहेगा।

१२ नवम्बर, १९५७ —मोहनलाल सुखाडिया

'महिला शिक्षा सदन' देश की एक प्रमुख जागरूक समाजसेवी सस्था एव शिक्षण केन्द्र है। इसके द्वारा दीर्घ काल से नारी समाज को सुशिक्षित तथा राजनैतिक चेतना मे प्रबुद्ध बनाने का कार्य किया जा रहा है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता इस बात की है कि इस सस्था ने जिस रचनात्मक कार्यक्रम को अपनाया है, उसके द्वारा अधिक-से-अधिक लोक-कल्याण सभव हो सका है। आज के युग में वे ही सस्थाए सजीव और सक्रिय बनकर जनता का विश्वास प्राप्त कर सकती है जो प्रचार और प्रदर्शन की भावना से दूर हो और मात्र कार्य के प्रति अपनी निष्ठा रखती हो।

मै आपके प्रयास की हृदय से सफलता चाहता हू।

—जीवाजीराव शिंदे
महाराजा, ग्वालियर

आपने 'महिला शिक्षा सदन' की स्थापना की, इससे मुझे बहुत बडी प्रसन्नता हुई है। भारत के इतिहास मे स्त्री-जाति ने उच्चतम स्थान प्राप्त किये थे। नारियो ने युद्ध मे भी कन्धे-से-कन्धा लगाकर राष्ट्र का साथ दिया था। पराकाष्ठा की विदुषी स्त्रिया भी हो चुकी है। चिरकाल से दासता के कारण स्त्रियो में शिक्षा का अभाव हो गया है। स्त्री-जाति मे वीरता, ज्ञान और राष्ट्र-भक्ति तभी आ सकती है जबकि स्त्रियो को उचित ढग से शिक्षित किया जाय तथा सादा व श्रमिक बनाया जाय।

—गोस्वामी गणेशदत्त

— 'महिला शिक्षा सदन' ने गत १२ वर्षों में महिलाओ की शिक्षा का जो अपूर्व कार्य किया है वह सराहनीय है। आशा है, यह 'सदन' अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहेगा। मेरी कामना है कि 'सदन' की १२ वी वर्षगाठ पर प्रकाशित होनेवाला स्मरण-ग्रन्थ 'सदन' के गौरव के अनुरूप हो।

—गुलजारीलाल नन्दा

'महिला शिक्षा सदन' ने वालको व स्त्रियो की शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रगति गत १२ वर्षों मे की है उसके लिए हार्दिक वधाई।

राज्य सरकार का यह कर्त्तव्य है कि आपकी जैसी सस्थाओ को कार्यकर्त्ता व अर्थ-सवधी सुविधाए देकर पूर्णतया प्रोत्साहित करे। इस दिशा मे निजी प्रयास अधिकाशत सरकार के लिए मार्ग-दर्शन का काम करते है।

राष्ट्रीय शिक्षा को कार्यान्वित करने में वालको के अपने व उनकी माताओ के श्रम की आवश्यकता है। आज नारियो का भी सरकारें वनाने मे उतना ही महत्वपूर्ण योग है जितना कि पुरुषो का, क्योकि मतदाताओ की सख्या में वे पुरषो के समकक्ष है। सामाजिक विज्ञान व सेवा-क्षेत्र मे उनकी वाणी की महत्ता है।

—पट्टाभि सीतारामैया

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'महिला शिक्षा सदन' हटूण्डी, अपने उपयोगी अस्तित्व के वारह वर्ष शीघ्र ही पूर्ण कर लेगा। सस्था की स्थापना उपाध्याय-दम्पती ने की, जो अनेक वर्षो तक महात्मा गाधी के साथ रहकर महिला शिक्षा सवधी उनके विचारो को समझ सके, जिनके अनुसार वालिकाए पत्नी, माता तया नागरिक के रूप मे, राष्ट्रनिर्माण के महान् कार्य मे पुरुपो के समान ही उपयोगी सिद्ध हो सके।

सस्था नारीत्व के पुरातन भारतीय आदर्शो तथा महिलाओ व वच्चो की आधुनिकतम पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली के समन्वय का प्रयत्न करती है। साहित्यिक शिक्षा के अतिरिक्त सस्था का ध्येय महिलाओ को, विभिन्न कलाओ तथा उद्योगो की शिक्षा देकर उनके व्यक्तित्व का विकास करना है। स्वयसेवा तथा सहकारिता के गुणो की शिक्षा वालिकाओ को आरभ से ही दी जाती है, ताकि सस्था छोडने के पश्चात् भी सामाजिक जीवन में वे अपना समुचित स्थान ग्रहण कर सके। नगर के कोलाहल से दूर, अत्यन्त सुरम्य वातावरण में स्थित, इस आश्रमतुल्य सस्था मे प्रतिवर्ष भारत के कोने-कोने से आकर वच्चे शिक्षा-लाभ प्राप्त करते है।

विश्वास है कि 'सदन', जिसके वहूद्देशीय विद्यालय के लिए निजी भवन का निर्माण हो रहा है, सख्या व सम्मान दोनो ही दृष्टियो से ऊचा उठेगा और प्रतिवर्ष ऐसी कुशल युवतिया प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा, जो देश के नवनिर्माण मे महत्वपूर्ण योग दे सके।

—अ० द० पण्डित

मुख्य आयुक्त, दिल्ली

मैंने आरभ से ही सस्था के विकास और गत बारह वर्षों की उन्नति को, जिसका मूल कारण श्री हरिभाऊ उपाध्याय और उनके देशभक्त परिवार की रचनात्मक विचारधारा और शक्ति रही है, देखा है।

श्री उपाध्याय तथा उनके परिवार जैसे क्रियाशील व्यक्ति ही, इस प्रकार की सस्थाओ का निर्माण कर सकते हैं।

यह सोचना भ्रामक है कि सरकार समस्त आदर्श प्रयोगो का सूत्रपात कर सकती है। सरकार को एक वडी सख्या मे विद्यालयो का सचालन करना है, अत प्रत्येक नये प्रयोग की आशा उससे नही की जानी चाहिए। इस प्रकार के महत्वपूर्ण कार्य शैक्षणिक आदर्शवादियो को अपने हाथ में लेने चाहिए। 'महिला शिक्षा सदन' हटूण्डी इसी प्रकार की एक सस्था है, जिसकी पूर्ण सफलता की मैं कामना करता हूँ।

—मदनमोहन वर्मा
सदस्य, राजस्थान जनसेवा आयोग

हटूण्डी के 'महिला शिक्षा सदन' के कार्य के १२ साल पूरे हुए, यह जानकर वडी प्रसन्नता हुई। इस सुअवसर पर हम दोनो की शुभ इच्छाए जानियेगा।

—आशादेवी, आर्यनायकम्

'सदन' को देखने का मुझे सुअवसर मिला है। वह योग्य हाथो मे है और शिक्षा जो बालिकाओ को वहा दी जा रही है सिर्फ शाब्दिक नही है, वहुत-कुछ सर्वांगीण है। उसको स्थान भी ऐसा मुक्त और समग्र शिक्षा के उपयुक्त प्राप्त हुआ है, और यह शुभ होगा कि इस उपयोगी सस्था को स्थायित्व देने के लिए जो किया जा सके किया जाय। 'सदन' के कार्यकर्त्ता, अधिकारी और व्यवस्थापक दायित्वपूर्ण कार्य करते है और सस्था सही दिशा मे बढ रही है। उनके प्रयत्नो को उत्तरोत्तर सफलता मिलती जायगी, यह मेरी आशा और कामना है।

—जैनेन्द्रकुमार

मेरी सद्भावना और शुभकामना तो 'सदन' के प्रति है और बराबर रहेगी। भगवान से प्रार्थना है कि यह सस्था बराबर उन्नति करती जाय।

—जयदयाल डालमिया

भारत मे ऐसी सस्थाओ का बहुत अभाव है, जो नारी जीवन के सर्वांगीण विकास को ध्यान मे रखकर शैक्षणिक कार्य कर रही हो। राजस्थान तो इस दृष्टि से और भी पिछडा हुआ है। 'महिला

शिक्षा सदन' ऐसी ही एक सस्था है, जो इस क्षेत्र मे सराहनीय कार्य कर रही है। आशा है, अन्य सस्थाए भी इसका अनुकरण कर नारी की वास्तविक शिक्षा मे सहयोग देंगी, ताकि हमारा देश शीघ्र आगे वढ सके।

—करणीसिह
महाराजा बीकानेर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि 'महिला शिक्षा सदन', हटूडी (अजमेर) द्वारा एक स्मारक विशेषाक प्रकाशित किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र मे तथा विशेष कर स्त्री-शिक्षा के लिए सदन द्वारा जो सेवाएँ की जा रही है, वे सर्व विदित है। विशेषाक द्वारा सदन के सम्वन्ध में अधिक-से-अधिक लोगो को जानकारी प्राप्त हो सकेगी, ऐसी मुझे आशा है। मै विशेषाक की सफलता चाहता हूँ।

—तख्तमल जैन

जिस सस्था का सचालन हरिभाऊजी जैसे सतोगुणी सेवानिष्ठ व्यक्ति के हाथो मे हो उसकी विश्वसनीयता स्वय प्रकट है। मै काफी अर्से से उस सस्था की गतिविधि से परिचित हू और इस कारण विश्वास के साथ कह सकता हू कि आश्रम ने महिला जगत की अमूल्य सेवा की है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह उक्त सस्था को उत्तरोत्तर प्रगति दे ताकि हरिभाऊजी की भावना पूर्णरूपेण साकार हो सके। मेरी सर्वशुभेच्छा आपके साथ है।

सरदारशहर —कन्हैयालाल दूगड

हम इस महत्वपूर्ण कार्य मे अपनी सहयोगी सस्था की पूर्ण सफलता की कामना करते है।

—जे० वी० गिब्सन
प्रिंसिपल, मेयो कालेज, अजमेर

'महिला शिक्षा सदन' के तेरहवें वर्ष के उपलक्ष्य मे १४ नववर को आप स्मरण-ग्रथ प्रकाशित कर रहे है, यह एक अत्यन्त ही प्रसन्नता-सूचक वात है। निश्चय ही यह ग्रथ भारतीय महिलाओ एव बालको को उत्साहप्रद होगा। मेरी शुभकामनाए स्वीकार करिये।

—गोविन्ददास

'महिला शिक्षा सदन' के वारहवे वार्षिकोत्सव के शुभ अवसर पर मै उसे हृदय से बधाई देता हू। मेरी शुभ कामना है कि यह उपयोगी सस्था दिन-प्रतिदिन उन्नति करे और अधिकाधिक महिलाए इससे लाभ उठा सकें।

—श्रीप्रकाश
राज्यपाल, वम्बई राज्य

हटूडी जैसी शिक्षण-संस्थाओं का विशेष उपयोग गांधी-विचार-धारा के अनुकूल परम्पराओं को कायम रखते हुए एक विशेष वातावरण बनाने में हो सकता है, जिसमें दिन-रात रहकर शिक्षा पानेवाले व्यक्तियों के समग्र व्यक्तित्व का निर्माण होकर निखर उठे और समय आने पर उन व्यक्तियों का देश व समाज की सेवा में समुचित उपयोग हो सके। हटूंडी के इसी प्रकार के विकास के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभकामना प्रकट करता हूं।

११-११-५७ —हीरालाल शास्त्री
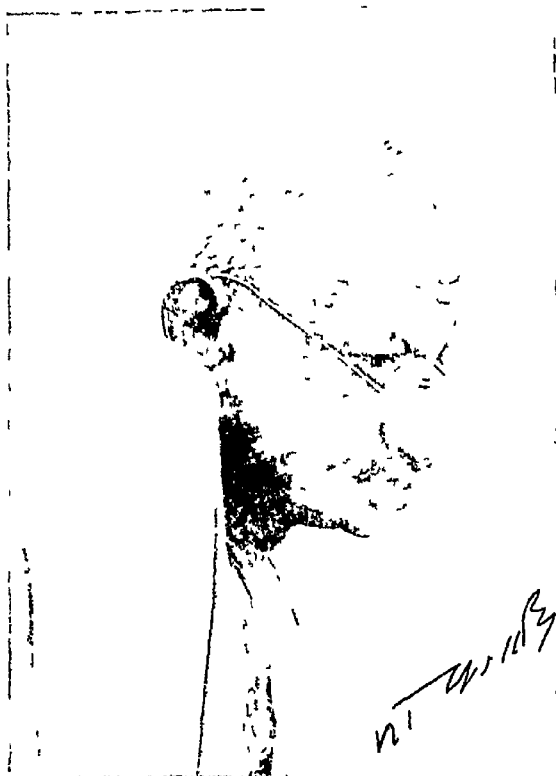
पूज्य बापू

जिनकी प्रेरणा ही गांधी आश्रम का मूल स्रोत है।

श्री जमनालालजी बजाज

गाधी आश्रम के सस्थापक और प्रेरक

शिक्षा और उसका आदर्श

"तपश्चर्या में तो बाहरी त्याग, सहन-शीलता और आडम्बर भी हो सकता है। मगर पवित्रता तो भीतरी गुण है। मेरी माता के आन्तरिक जीवन की परछाईं उसकी तपश्चर्या में पडती थी। मुझमें जो-कुछ भी पवित्रता देखते हो, वह मेरे पिता की नहीं, किन्तु मेरी माँ की है। मेरी माँ चालीस वर्ष की उम्र में गुजर गई थी, इसलिए मैंने उसकी भरी जवानी देखी है। लेकिन मैंने उसे कभी उच्छृंखल या टीपटाप या कुछ भी शौक या आडम्बर करने वाली नहीं देखा। मुझपर उसकी पवित्रता की छाप सदा के लिए रह गई है।" —मो० क० गान्धी

गीत

तन की, मन की, धन की हो तुम।
नव जागरण, शयन की हो तुम।

काम कामिनी कभी नहीं तुम,
सहज स्वामिनी सदा रहीं तुम,
स्वर्ग दामिनी नदी बहीं तुम,
अनयन-नयन, नयन की हो तुम।

मोह-पटल-मोचन आरोचन,
जीवन कभी नहीं जन-शोचन,
हास तुम्हारा पाश-विमोचन,
मुनि की मान, मनन की हो तुम।

गहरे गया, तुम्हे तब पाया,
रहीं अन्यथा कायिक छाया,
सत्य भास की केवल माया,
मेरे श्रवण-वचन की हो तुम।

—निराला

स्फुट वचन

श्री माताजी, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी

स्त्रियां प्राणिक और भौतिक चेतना के साथ पुरुषों की अपेक्षा अधिक नहीं बँधी होतीं, बल्कि, अपने अंत पुरुष को ढूढ कर उसीके अनुसार चलना उनके लिए अधिक सुगम होता है, क्योंकि साधारणत पुरुषों के गर्वपूर्ण मानसिक दावों का उनमें अभाव होता है।

* * *

उनकी सचेतनता मानसिक ढग की नहीं होती जिसका शब्दों में वर्णन हो सके, पर वे अपने भावों में सचेतन होती हैं और उनमें से श्रेष्ठ कोटि की अपने कार्यों में भी सज्ञान होती हैं।

* * *

दो मानव प्राणियों के सबध के अन्दर चाहे कितनी भी सच्चाई, सरलता और पवित्रता क्यों न हो, यह सबध कम या अधिक मात्रा में उन्हें सीधी भागवत शक्ति और सहायता की ओर से बद कर देता है और उनकी शक्ति, ज्योति और सामर्थ्य को उनकी सयुक्त शक्यताओं तक ही सीमित कर देता है।

* * *

भगवान की सहायता के बिना साधना करना किसी के लिए भी सभव नहीं हो सकता। पर सहायता बराबर विद्यमान रहती है।

* * *

भागवत चेतना तुम्हें रूपातरित करने के लिए कार्य कर रही है, तुम्हें उसकी ओर अपने आपको खोलना होगा जिससे वह तुम्हारे अदर निर्बाध कार्य कर सके।

* * *

भगवत्कृपा बराबर ही कार्य करने के लिए तैयार है, पर तुम्हें इसे कार्य करने का मौका देना चाहिए और इसके कार्य का विरोध नहीं करना चाहिए। पर एक मात्र आवश्यक शर्त है श्रद्धा।

* * *

यह व्यर्थ की बात है कि सहायता तो मागी परन्तु विश्वास न रखा जाय। इसके विपरीत, भरोसा होने से प्रत्येक बात कितनी आसान हो जाती है।

* * *

एकमात्र प्रेम ही भगवान् की क्रिया के रहस्य को समझ सकता है और उसे आयत्त कर सकता है। मन, विशेषकर भौतिक मन, ठीक ठीक देखने में असमर्थ होता है और फिर भी वह बराबर सब विषयों पर राय कायम करना चाहता है । पर सच पूछा जाय तो मन की सच्ची और सरल विनम्रता ही, जो कि चैत्य पुरुष की समस्त सत्ता पर राज्य करने देगी, मनुष्य को अज्ञान और अधकार से बचा सकती है।

* * *

जो प्रेम करता है केवल वही प्रेम को पहचान सकता है। जो सच्चे प्रेम में अपने आपको दे देने में असमर्थ होते हैं वे कभी और कहीं भी प्रेम को पहचान नहीं पायेंगे, और जितना ही प्रेम अधिक दिव्य होगा अर्थात् निःस्वार्थ होगा, उतना ही कम वे उसे पहचान पायेंगे।

* * *

मानुषी प्रेम के पीछे सदा ही एक कटु अनुभव रहता है—केवल भागवत प्रेम ही कभी निराश नही करता।

* * *

भगवान् की बाहो में विश्राम लेने से सब कष्ट दूर हो जाते हैं, कारण, ये बाहें हमें आश्रय देने के लिए सदा प्रेम से खुली रहती हैं।

* * *

आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक महत्व इस बात का नही कि तुम क्या करते हो बल्कि इस बात का कि तुम उसे कैसे करते हो तथा उसमें तुम क्या चेतना भरते हो। भगवान् को सदा स्मरण रखो और तब तुम जो कुछ भी करोगे वह भागवत उपस्थिति की अभिव्यंजना होगा।

* * *

जो काम प्रेम द्वारा तथा प्रेम के लिए किया जाता है, वही निःसंदेह सबसे अधिक प्रभावशाली होता है।

* * *

आओ, कर्म हम ऐसे करें जैसे प्रार्थना, क्योंकि अवश्य ही कर्म भगवान् के प्रति शरीर की सर्वोत्तम प्रार्थना है।

* * *

स एकाकी न रेमे

वासुदेवशरण अग्रवाल

भारतीय सस्कृति के विचारशील प्रवक्ता श्री अग्रवालजी की लेखनी वेदोक्त गूढतम रहस्यों का उद्घाटन करने में निरन्तर सलग्न है। स्त्री और पुरुष के अनादि सम्बन्धो का विश्लेषणात्मक निरूपण प्रस्तुत लेख में किया गया है—सपादक

स्त्री और पुरुष विश्व-रूपी अकुर के दो पत्ते हैं—

होतहि बिरवा भये दुइ पाता।
पिता सरग और धरती माता॥

पिता स्वर्ग और धरती माता है। दोनों एक बीज की दो दालें हैं। विश्वनिर्माता विश्वकर्मा प्रजापति आरम्भ में एक था, किन्तु एक से वह बहुत नही हो सका। उसका अकेले मन नही लगा—'स एकाकी न रेमे'। उस एक केन्द्र में ही यद्यपि दोनो केन्द्र समाये हुए थे, पर जबतक दोनो अलग-अलग स्फुट भाव में आकर एक दूसरे से समालिंगित न हो, तबतक वह एक केन्द्र जैसे बेचैन बना हुआ था—'तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छन्। स ह्यावानास यथा स्त्रीपुमासौ सम्परिष्वक्तौ। स इममेवात्मान द्वेधाऽपातयत्। तत पतिश्च पत्नी चाभवताम्। तस्मादर्धबृगलमिव स्व।'—(शतपथ १४।४।२।२४)

आज भी प्रकृति का वही नियम बना हुआ है। जो अकेला केन्द्र है वह व्याकुल और अधूरा रहता है। उस प्रजापति ने दूसरे की इच्छा की। उसके भीतर इतना विस्तार था जितना स्त्री और पुरुष को मिलाने से होता है। उसने अपने उसी रूप को दो भागो में विभक्त कर डाला। उसमे एक भाग पति और दूसरा भाग पत्नी बना। जो अपना आपा है वह 'अर्ध बृगल' या आधा टुकडा ही है।

याज्ञवल्क्य का यह दर्शन विश्व के गूढ रहस्य का स्फुटतम कथन है। इसकी खरी शब्दावली कितने ही आवरणों को भेदकर तथ्य से जा टकराती है। प्रत्येक व्यक्ति जो जन्म लेता है उसके चारो ओर एक मण्डल बनता है। वही उसका आकाश है। उस आकाश में उसके मानस की तरगें गतिशील होती है, किन्तु उन्हे अपना दूसरा छोर नही मिलता। वे तरगें व्याकुल और निरुद्दिष्ट विचरण करती है। वे कही ठहरती नहीं, उनमें स्थिति भाव नही आता। प्रत्येक केन्द्र की जो मण्डलात्मक परिधि है, वही उसका आकाश है। वह पत्नी के द्वारा ही रस से भरा जाता है। पति जब पत्नी से मिलता है तब वह पूरा हो जाता है। 'अर्ध बृगल' पुरुष का दूसरा आधा भाग स्त्री है। दोनो के समालिंगन से पूर्ण अण्डाकृति बन जाती है। केन्द्र की जो तरगें बाहर की ओर गतिशील थी वे आकाश में पत्नी-रूप मर्यादा पाकर पुन केन्द्र की ओर लौट आती है। यही तरग की पूर्णता है। शक्ति की जो तरग जहाँ से उठती है वह बाहर की ओर फैलकर जब अपने ऋण बिन्दु को पा लेती है तब पुन धन बिन्दु की ओर लौटती है। इस 'एति च प्रेति च'—आती है, जाती है—सचारिणी प्रक्रिया द्वारा ही तरग का शक्तिमय रूप बनता है। यदि कोई तरग

केवल केन्द्र से बाहर की ओर फैलती जाय तो वह अनन्त आकाश में सदा के लिए वितरित होकर विलीन हो जायगी और उससे कुछ भी सघर्षात्मक कर्म की उत्पत्ति न हो सकेगी। रश्मि या तरग को आकाश में परिधि चाहिए, यही उसके चतुर्दिक व्यापी आकाश या अन्तराल का भरना है। तरग में गति है, आकाश में स्थिति है। गति और स्थिति का युग्म ही शक्ति की स्वरूप-निष्पत्ति है। एकाकी शक्ति निष्क्रिय और निष्फल रहती है। वह जो पति के आकाश में मर्यादा रचती है वही पत्नी है। यह वैज्ञानिक की भाषा है। केन्द्र तभी सार्थक है, जब वह परिधि से सापेक्ष बने। जिस केन्द्र की परिधि नही वह अभिव्यक्त नही बन पाता। परिधि के स्वरूप से ही केन्द्र के अस्तित्व और नियामक जीवन का परिचय मिलता है। पति और पत्नी दोनो को 'रेत सिच्' कहा गया है। दोनो रेतोधान करनेवाले 'रेतोधा' तत्त्व है। प्रकृति का यही अविनाभूत विधान है। प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में दोनो अनिवार्य है। अन्तर्वत्नी पत्नी इस तथ्य का प्रमाण है कि उसके साथ नियामक 'रेतोधा' पति का साहचर्य हुआ है। इन्ही दोनो 'रेतोधा' तत्त्वो को वैदिक भाषा में प्रयति और स्वधा कहा गया है। पति वह प्रयति या नियामक तत्त्व है जिसके द्वारा गर्भ अपने भौतिक स्वरूप का सवर्धन करता है। उसका भौतिक स्वरूप ही 'स्वधा' या अन्न है जो माता के उदर में वृद्धि पाता है। प्रयति और स्वधा का—प्राण और भूत का—मिला हुआ रूप ही प्रजापति है, अर्थात् विश्व की रचनात्मक प्रवृत्ति या प्रक्रिया का प्रथम विन्दु है। जितने भूत है सब प्रजा है। प्राण उनका पति या उत्पादक पिता है। अकेले भूत निष्फल है एव एकाकी प्राण भी निष्क्रिय है। प्राण और भूत का सम्मिलित रूप ही सपरिष्वक्त स्त्री-पुरुष या समालिंगित पति-पत्नी का रूप है। इसे ही कालान्तर की शिल्पमुद्रा में 'युगनद्ध' देवमूर्ति कहा गया।

इन प्रतीको की कितनी ही व्याख्याएँ सम्भव है, किन्तु विराट् तथ्य एक ही है। सृष्टि के दैवी विधान की दुर्धर्ष सत्ता सर्वोपरि है। आरम्भ में एक निर्विशेष शक्ति का तत्त्व था। वह महासमुद्र के समान व्यापक था। चारो ओर व्याप्त होने के कारण वह रस आभु कहलाया—आ समन्तात् भवति। उस आभु या रस तत्त्व को बल ग्रन्थि ने सीमित बनाया। जहाँ इस प्रकार बल की प्रक्रिया ने रस का स्पर्श किया वही वह मर्यादित रस शक्ति का केन्द्र बन गया। उस शान्त रस में एक दुर्धर्ष अलात चक्र सक्रिय हो गया। सक्रिय केन्द्र बिन्दु को ही मन कहा जाता है। मन सदा हृत्प्रतिष्ठ होता है। हृत् केन्द्र को कहते है। शक्ति के स्वतन्त्र केन्द्र का जन्म ही मन है। जैसे ही मन की उत्पत्ति होती है उसमें कामना का उदय होता है—

'कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेत प्रथम यदासीत्।'

मन का स्वरूप ही काममय है। वही मन की उत्पादक शक्ति है। उसी काम का अर्धभाग केन्द्र में और अर्ध परिधि में बँट जाता है। वे पति और पत्नी है। योषा वृषा रूप मे काम की सत्ता विश्व के समस्त चैतन्य प्राणियो में पाई जाती है। जहाँ मन या प्रज्ञा मात्रा का विकास दिखाई देगा वहाँ ऋण-धन, प्राण-शक्ति या योषा-वृषा का तन्त्र अवश्यम्भावी है। सूक्ष्मतम कीट से लेकर मानव के जटिल सस्थान में यही एक नियम काम कर रहा है। काम के इस द्विविध भाव में जो सशक्त आकर्षण अनन्त काल से चला आता है वह सृष्टि का महान् रहस्य है। उसकी मधुर अनुभूति का अन्त नही है। उस अनुभूति को ही रति कहते है। मानवीय आत्मा के लिए इससे प्रिय अनुभव और कुछ है ही नही। रति का क्षेत्र या तो नारी है या आत्मा स्वय है। कवि की यह उक्ति अक्षरश सत्य है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

ऋग्वेद में हमें इस कल्पना का परिचय मिलता है—पति जैसे पत्नी के समीप आता है वैसे ही सवितृ देवता हमारे समीप आगमन करे—(पतिरिव जायामभि नो न्येतु, ऋ० १०-१४९।४)।

विद्युत् की ऋण-धन धाराएँ जिस प्रकार एक दूसरे के लिए चटचटाती है और दोनो के सान्निध्य से जिस प्रकार शक्ति का विस्फोट होता है, ऐसा ही चमत्कारी आकर्षण और विस्फोट नर-नारी या स्त्री-पुरुष के ऋण-धन प्राणो में अन्तर्निहित है। इन्हे सृष्टि-विज्ञान की शब्दावली में अग्नि और सोम भी कहा जाता है। पति अग्नि और जाया सोम का रूप है। सारा जगत् अग्निसोमात्मक है। जड और चेतन सबमें अग्नि और सोम की प्रक्रिया विद्यमान है। अग्नि अन्नाद और सोम उसका अन्न है। अग्नि में सोम की आहुति निरन्तर पड रही है। इसी आहुति से विश्व का नित्य प्राकृतिक विधान चल रहा है। इसे ही अग्नि कहते हैं। योषा-वृषा या जाया-पति का सम्मिलन अग्नि-सोम का ही मिलन है। यह मिलन अन्तर्यामी सम्बन्ध से होता है। शुक्र और शोणित एक दूसरे से मिलकर अपना-अपना स्वरूप खो देते है और किसी अभूतपूर्व नये पदार्थ की उत्पत्ति करते है। इसी सम्मिलन को यज्ञ कहते है।

इस दृष्टि से विवाह प्रकृति का अत्यन्त स्पृहणीय विधान है। वह जीवन की अतीव रमणीय घटना या पवित्र-तम यज्ञ है। मानव ने सस्कृतिमय चिन्तन से जिस जीवन विधि का आविष्कार किया उसीका पर्यवसान विवाह-सस्कार है। स्त्री-पुरुष के प्रकृतिसिद्ध सपरिष्वग की ही सामाजिक सज्ञा विवाह है। विवाह सस्कार के बिना भी स्त्री और पुरुष परस्पर मिलते ही है। विवाह के मूल में जो हिरण्यात्मक मणि है वह काम है। उसी काम के स्फुलिंग तत्त्व जब छिटकते है तब वे विवाह का रूप धारण करते हैं। माता के और पिता के दो पृथक् शरीर है पर उनके जीवन रस एक दूसरे से अविनाभूत है। प्रजातन्तु के लिए उपयोगी उनके रसो को प्रकृति दो कपालो से उडेलकर एक कपाल में मिलाती है। यह वैध यज्ञीय प्रक्रिया मात्र नही है, प्रकृति के नित्य यज्ञ का यही विधान है। पुरुष के घटक कोश में और स्त्री के घटक कोश में २४-२४ वर्णाणु (क्रोमोजोम) कहे जाते है। किन्तु जब वे एक दूसरे से मिलते है तब उनके अर्ध युगल या आधे-आधे भाग ही सयुक्त होते है और जिस भ्रूण से शिशु का आरम्भ होता है उसमें पुन चौबीस वर्णाणु ही जीवन का निर्माण करने के लिए रहते है। द्यावापृथिवी की आहुति एक ही कपाल में परिपक्व होती हैं। जो प्रजापति है वही माता भी है, वही पिता भी—

मातेव पितेव च प्रजापति। (शतपथ ५।१।५।२)

वही प्रजापति माता के शोणित और पिता के शुक्र में है। दोनों में दोनो है। पुरुष का शुक्र सोम गुणात्मक है, स्त्री का आर्त्तव आग्नेय कहा जाता है। सोम अग्नि से मिलना चाहता है और अग्नि सोम से। शुक्र-रूपी सोम की शोणित रूप अग्नि में आहुति होती है। यही सोम और अग्नि का सम्मिलन है। पर शुक्र में भी आग्नेय अश है और शोणित में सौम्य अश है। प्रत्येक अपने युग्म के लिए बुभुक्षित रहता है। स्त्रिय सतीस्ता पुम आहु—जो स्त्रियाँ है उन्हे पुरुष जानो और जो पुरुष है उन्हे स्त्रियां जानो। प्रत्येक का जो बाह्य रूप है, उसके भीतर दूसरा आधा भाग उससे विपरीत भाव लिये हुए है। वही अन्तर्निहित भाग अपने सदृश भाग से मिलने के लिए व्यग्र रहता है।

प्रकृति के ये गूढ विधान मानस भावभूमि मे अत्यन्त रोमाचकारी है। प्रेम और काम से बढकर विचित्र इस सृष्टि में और कुछ नही है। वही सचमुच नारायणीय विधान का सबसे मनोरम रूप है। नारी का जो मधुर रूप है, उसका जो सुकुमार लीलाभाव है, उसके काव्य का अशेष रस कौन पूरी तरह व्यक्त कर सकता है? जीवन के सुन्दरतम रूप की अभिव्यक्ति यदि कही है तो वह प्रेम में ही है। इस प्रेम जगत् की प्राणीमात्र को आवश्यकता है। यही उसके विकास का अन्तर्जगत् है, जो आत्म-सूर्य की सतरगी रश्मियो के अभिव्यञ्जित रूप से अत्यन्त रमणीय जान पडता है। हमारे अपने केन्द्र में जो सुन्दर, मधुर और मनोरम है वह पूर्णतम मात्रा में अधिकतम वेग और काल

के न्यूनतम व्यवधान से हमें कही प्राप्त हो सकता है तो एकमात्र स्त्री के प्रेम मे। प्रेम स्वर्गीय है। प्रेम पृथिवी की मिट्टी में प्राण का छिपा हुआ स्पन्दन है। प्रेम मर्त्यभाव मे अमृत और जड में चिदश की अनुभूति का कारण है। नारी न हो तो पुरुष में भास्वर प्रकाश आ ही नही सकता। रति का एकमात्र आश्रय स्त्री होती है या अपनी आत्मा। मानव अपने केन्द्र में आत्माराम या आत्मरति बन जाय तो वह ब्रह्मिष्ठ योगी या ब्रह्मज्ञानी होता ही है। पर उस स्थिति के साथ कोई खिलवाड नही कर सकता। वह सच्ची होनी चाहिए। उसमें अपना केन्द्र अपने ही भीतर निगूढ दूसरे उच्चतर केन्द्र से सपरिष्वक्त होता है और तब रतिजन्य आनन्द के समान ही विलक्षण आनन्द की अनुभूति मिलती है। उसे भी एक प्रकार का विवाह ही कहना चाहिए। उस सुख के प्राप्त हो जाने पर फिर और किसी सुख के लिए मन विचलित नही होता। मन उस आनन्द में ठहर जाता है। उस स्वाभाविक स्थिति भाव का भी अनोखा रस है। अपने चारो ओर आनन्द का समुद्र उमडता हुआ साक्षात् अनुभव में आता है। पर यह प्रज्ञा सबके लिए सुलभ नही है। सम्भवत प्रकृति ने इस स्वयम्वर को कुछ भाग्यशालियो के लिए ही सुरक्षित रखा है। इसके अतिविलक्षण अनुभवो के विषय में प्रकट रूप में कुछ अधिक कहा भी नही जा सकता। किन्तु स्त्री-पुरुष के प्रेम का मार्ग भी अत्यन्त विचित्र है। वह प्रकृति का स्वाभाविक विधान है। उसमें स्त्री-पुरुष के लिए पूरक और आवश्यक हैं। दोनो के मन, प्राण और शरीर एक दूसरे से मिलकर अपनी पूर्णता प्राप्त करते हैं। शरीर का मिलन परिमित और मन, प्राण का अपरिमित होता है। तीनो ही मधु या आनन्द के लिए व्याकुल रहते है। प्रेम के मधुवर्षी वसन्त में आनन्द के शत सहस्र द्वार उन्मुक्त हो जाते है। उस मधु में जो अमृत है वही मानव को प्राप्त हो, विष नही, इसकी युक्ति जो जान लेता है, उसीका प्रेम करना सच्चा है। प्रेम में उद्धार करने की शक्ति है और डसने की भी। भोग उसका डक है। जो इस डक से बच पाता है वही अमृत के लिए जीवित रहता है। नारी की सच्ची परिभाषा अत्यन्त कठिन है। उसके प्रेम में अमृत भी है, मृत्यु भी। जिस लोक में स्त्री-पुरुष प्रेम के द्वारा अमृत जीवन की साधना कर पाते है उसीका निर्माण प्रेम की सच्ची कला है। प्रेम का रहस्य समर्पण है। प्रेम एक यज्ञ है। उसका क्षेत्र असीम होता है। भोग जघन्य स्वार्थ है। भोग से जीवनरस नि शेष हो जाता है। प्रेम से मानव स्वर्गीय बनता है। भोग से वह अपने आनन्द की प्राप्त पूजी को भी खो बैठता है। जीवन की अनेक दिव्य उपलब्धियो में प्रेम की उपलब्धि अनायास नही मिल जाती है, वह साधना से प्राप्त होती है। उसके लिए इन्द्रियो को, प्राणो को और मन के भावो को समय में दीक्षित करना आवश्यक होता है। जो ऐसा कर सकता है, उसीके लिए प्रेम की सनातन आश्रयभूत नारी अपनी पूरी सम्भावनाओ को प्रकट करती है।

❁

"स्त्री ही बच्चे की प्रथम शिक्षक है और उसके चरित्र का सगठन करने वाली है। इस दृष्टि से स्त्री ही राष्ट्र की माता है।"

—मो० क० गान्धी

शासन-मुक्त लोकशिक्षा

काकासाहब कालेलकर

पूज्य गान्धीजी के जाने के बाद देश में गान्धीवाद की अनेक धाराएँ हो गई है। ऐमा होना स्वाभाविक ही था। स्वराज्य-प्राप्ति के विराट सकल्प के कारण ही मारा राष्ट्र गान्धीजी के पीछे इकट्ठा हुआ था। जो लोग गान्धीजी को नही मानते थे, वे स्वराज्य के आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा नही लेते थे। तो भी उन्होने स्वराज्य के आन्दोलन में विघ्न नही डाला, यह तो उनकी सेवा थी ही। जिन्होंने विघ्न डाला उन्हें उसका अग्रजो की ओर से पुरस्कार मिला, आज भी मिल रहा है। उनकी बात हम छोड दें। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के दिनो में कांग्रेस ने घोषित किया कि जो स्वराज्य मिलेगा वह सारे राष्ट्र को मिलेगा। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जिन्होंने विशेष कोशिश की उन्हे विशेष अधिकार मिलेंगे, ऐसी बात नहीं होगी।

जिन लोगो ने कांग्रेस के नाम स्वराज्य का आन्दोलन चलाया उन्हीके हाथ में राज्य की बागडोर जाना स्वाभाविक था। लेकिन जिन्होंने स्वराज्य-आन्दोलन के प्रति अनास्था और उपेक्षा दिखाई थी, वे भी धीरे-धीरे अधिकारारूढ होते जा रहे है। शिक्षा का ही क्षेत्र लीजिए। कांग्रेस के हाथ में स्वराज्य के अधिकार जाते ही विद्वानो ने कहना-बोलना शुरू किया कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। शिक्षा का माध्यम या वाहन हिन्दी ही होना चाहिए। गान्धीजी के विचार ही कांग्रेस को मान्य थे, इसलिए उन्ही विचारो की ताईद करना विद्वानो ने जरूरी समझा। लेकिन धीरे-धीरे कांग्रेस पक्ष में मतभेद प्रगट होने लगे। सब कांग्रेसवालो ने गान्धीजी के सब सिद्धान्तो को स्वीकार नही किया था। किसीने किसी चीज को महत्त्व दिया, किसीने दूसरी चीज को महत्त्व दिया। देश के सब लोग अपने को गान्धीवादी कहने लगे। पूर्ण रूप से गान्धीवादी कोई एक भी नही रहा। सूर्यप्रकाश के सामने जब बिलोरी कांच का शखू रखा जाता है, तब सूर्यप्रकाश के सात किरण अलग-अलग हो जाते हैं। स्वराज्य के दिनो में सब मिलकर के जो सूर्यप्रकाश हुआ था, स्वराज्य होने के बाद उसका सप्तवर्णी इन्द्रधनुष हुआ और हरेक रग अलग-अलग रूप से प्रगट हुआ। हरेक रग को कहने का अधिकार था कि हम सूर्यकिरण ही है। हरेक की बात कुछ हद तक सही थी, पूर्ण रूप से किसीकी भी नही।

ऐसी हालत में सबसे अच्छा रास्ता यही है कि गान्धीजी की दुहाई देकर कोई अपनी बात आगे न करे। गान्धीजी ने क्या कहा था, उनके सिद्धान्त क्या थे, उनके वचनो में से स्थायी तत्त्व कौन से है और उस काल में ही सही और आज सही नही हैं, ऐसे कालिक तत्त्व कौन से है, इसकी चर्चा हमेशा होती ही रहेगी। ऐसी चर्चा अनिष्ट भी नही कही जा सकती।

गान्धीजी ने एक दफा स्वय कहा था कि मेरे कार्यक्रम में सबसे महत्त्व का कार्यक्रम है खादी का। इसीलिए मैंने इसे ग्रहमाला का सूर्य कहा है। लेकिन अगर कुछ चमत्कार होकर हिन्दुस्तान में कपास की पैदाइश ही होना बन्द हो जाय और कपडे के लिए कुछ दूसरा ही प्रबन्ध करना पडा तो मेरा खादी का कार्यक्रम मैं छोड दूगा। सत्य, अहिंसा,

सयम, अस्तेय आदि जीवन के उत्कर्ष के सनातन तत्त्व कायम ही रहेगे। उनके वारे में हमारा आग्रह दिन-पर-दिन वढ़ता ही जायगा। लेकिन दूसरी वातें समय-समय के अनुसार वदलती जायेंगी।

इसलिए हरेक आदमी को कहने का अधिकार होता है—"मेरा विश्वास है कि गान्धीजी आज जीवित होते तो जरूर अपने कार्यक्रमो में और अपनी मान्यता में परिवर्तन या तब्दीली की होती। गान्धीजी का मानस अनुभव के अनुसार वढता जाता था। निर्जीव पदार्थ के जैसे वे अप्रगतिशील, अपरिवर्तनशील नही थे। आज वे हमारे वीच में नही है, इसलिए उनका नाम लेकर उन्हीकी उस समय की वातें आज चलाना ठीक नही होगा।"

यह भूमिका भी सही है। हालाँकि महात्माजी खूब सोचकर अपनी वातें करते थे, सत्य, अहिंसा, आदि अपने जीवन-सिद्धान्त पर कसने के वाद ही लोगो के सामने रखते थे और इसीलिए उन्हे अपने कार्यक्रम में तब्दीली नही करनी पडी। कई वातें विशेष अनुभव के वाद उन्होने अधिक स्पष्ट की है। दूसरी कई वातें उन्होने शायद मर्यादित भी की हो। लेकिन उनका साहित्य ध्यान से पढनेवालो का कहना है कि गान्धीजी के लेखन में शुरू से लेकर आखिर तक उनके मूलभूत सिद्धान्त एक से पिरोये हुए है, अनुस्युत है।

शिक्षा के वारे में गान्धीजी का कार्यक्रम और उनकी नसीहत दिन-पर-दिन स्पष्ट होती गई है। इसलिए यह तो स्पष्ट पहचाना जाता है कि गान्धीजी ने क्या कहा था और आज हम कहाँ जा रहे है। पिछले दस वरस में सारे राष्ट्र में और शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाले सव लोगो ने गान्धीजी के विचार छोड दिये है और उत्तरोत्तर पुच्छ प्रगति की है।

कांग्रेस ने और कांग्रेस के पीछे चलने वाली जनता ने अग्रेजो के हाथ से स्वराज्य छीन लिया। लेकिन स्वराज्य मिलने के वाद वह ऐसे लोगो के हाथ सौंप दिया कि जो अग्रेजी भाषा के ही हामी है। राज्य चलाने का जरिया और शिक्षा चलाने का जरिया अग्रेजी न हो ऐसा माननेवाले और कहनेवाले लोग वाजू पर हट गये है और सारा राज्य अग्रेजी वालो के हाथ में सौंपा गया है। अग्रेजो का राज्य चला गया और अग्रेजी का राज्य स्थापित हुआ है और शिक्षा के वारे में गान्धीजी के विचार विलकुल ही एक वाजू पर रखे गये। जैसा-जैसा अनुभव होता गया पुरानी शिक्षा-पद्धति के दोष फिर से ध्यान में आने लगे है, और जव जवाहरलालजी ने कहा कि गान्धीजी का वुनियादी तालीम का कार्यक्रम ही अच्छा था, तव से सवके सव लोग कहने लगे कि हम भी वुनियादी तालीम को अच्छी समझते है। उसीको चलाना चाहते है। वुनियादी तालीम पर व्याख्यान होने लगे है, सेमिनार होने लगे है। थोडे ही दिनो में कितावे तैयार होगी और फिर लोग कहने लगेंगे 'वुनियादी तालीम की आजमाइश हो चुकी। वह कारगर नही है। उसे छोड ही देना चाहिए।' ऐसे लोगो ने इसके पहले भी वुनियादी तालीम को वाकायदा स्वीकार किया और वाकायदा उसका इन्कार भी किया। अपने अधिकार जिन्हे छोडने नही है, नौकरी में रहना है और तरक्की पानी है उनके लिए दूसरा रास्ता नही है।

ऐसी हालत में हमारा सुझाव है कि गाँव की शिक्षा और ग्रामजीवन की पुनर्रचना का काम सरकार अपने हाथ में रखेगी नही।

जिस तरह मैट्रिक के वाद भी उच्च शिक्षा का खर्चा सरकार देती है, अच्छे-अच्छे कालेज भी चलाती है, तो भी उच्च शिक्षा का प्रवन्ध करनेवाले विद्यापीठ, विश्वविद्यालय यानी यूनीवर्सिटियाँ सरकार से स्वतन्त्र है, उच्च शिक्षा के स्वरूप का निर्णय यूनीवर्सिटी के नाम से सगठित हुई विद्वन्मण्डली के हाथ में है, सरकार उनकी स्वतन्त्रता और स्वायत्तता मञ्जूर करती है, उसी तरह ग्राम-शिक्षा और ग्राम-रचना का काम लोकसेवको की किसी सगठित सस्था के हाथ में सौंप देना चाहिए। उच्च शिक्षा अगर स्वतन्त्र रह सकती है तो लोक शिक्षा भी वैसी ही स्वतन्त्र होनी चाहिए और हिन्दुस्तानी तालीमी सघ और सर्व सेवा सघ के जैसी स्वतन्त्र सस्था के हाथ में सौप

देनी चाहिए। राजनीतिक पक्ष का ख्याल रखे बिना लोक सेवा का जिन्होंने व्रत लिया है ऐसे लोगो का सगठन बनाकर उस क्षेत्र के तजुर्बेकार लोगों के हाथ ग्राम-लोक-शिक्षा का प्रबन्ध सौप देना चाहिए। शहर के विद्वान् लोग और शहरी बच्चो के माँ-बाप रुढिवादी, अप्रगतिशील होते है। वे सारे राष्ट्र की प्रगति में बाधा डालेंगे। इसलिए शहर की शिक्षा पुराने ढग से अगर लोग चलाना चाहे तो उनकी इस इच्छा में बाधा नही डालनी चाहिए। लेकिन सरकार ऐसी पुरानी शिक्षा-पद्धति को मान्यता न दे। सरकार को चाहिए कि वह एक कानून स्टेटयुटरी बोर्ड बनावे जिसमें सब पक्ष के लोक सेवको के प्रतिनिधि हो। लेकिन ऐसे लोगो को चाहिए कि वे राजनीतिक झगडों से दूर रहे और लोक-शिक्षा का काम अपने हाथ में लें।

सरकार की नीयत आज इससे उल्टी है। ग्राण्ट के जोरो से वह सब तरह की लोक सस्थाएँ अपने काबू में ले रही है।

कम-से-कम लोक-शिक्षा का क्षेत्र शासन के प्रभाव से मुक्त रहना चाहिए। सरकारे ऐसे मुक्त शिक्षा प्रबन्ध को आर्थिक मदद जरूर दें, लेकिन किसी भी सस्था को सरकार अपनी ओर से ग्राण्ट न दे। अनुदान देने का अधिकार सर्व सेवा सघ जैसे लोक सेवको के स्वतन्त्र सघ को ही होना चाहिए। शिक्षा के जैसा पवित्र सेवा कार्य पूर्णतया शासन-मुक्त हो और गैर जिम्मेदार विद्वानो के हाथ में न जाय इतना तो तुरन्त होना ही चाहिए।

हृदय की बुद्धि पर विजय

यदि हृदय और बुद्धि में विरोध उत्पन्न हो तो तुम हृदय का अनुसरण करो, क्योंकि बुद्धि केवल एक तर्क के क्षेत्र में ही काम कर सकती है। वह उसके परे जा ही नहीं सकती। यह केवल हृदय ही है, जो हमें उच्चतम भूमिका पर आरूढ करता है। वहाँ तक बुद्धि कभी नहीं पहुँच सकती। हृदय, बुद्धि का अतिक्रमण कर, जिसे हम अन्तःस्फूर्ति कहते हैं उसे पा लेता है। बुद्धि से कभी अन्तःस्फूर्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अन्तःस्फूर्ति का कारण केवल ज्ञानोद्भासित हृदय ही है। केवल बुद्धि प्रधान, किन्तु हृदय-शून्य मनुष्य कभी स्फूर्तिमान नहीं बन सकता। प्रेममय पुरुष की समस्त क्रियाएँ उसके हृदय से ही अनुप्राणित होती हैं। एक ऐसा उच्चतर साधन, जिसे बुद्धि कभी नहीं दे सकती, अगर किसी ने पाया है, तो हृदय ने ही और वह साधन है, अन्तःस्फूर्ति। —स्वामी विवेकानन्द

उसने शील दान दिया
और शक्ति दान भी

नारी के शील-पूरित नेत्रों ने कृतज्ञता प्रकट की,

जब उससे उस महात्मा ने कहा—

तू कल्याणदात्री अग्नि है,

तू पुण्यसलिला गंगा है।

पुरुष ने कामना की राख से अग्नि को ढक दिया था।

और पुण्योदक को वासना के पात्र में भर रखा था।

जिस दिन वह पापाणी बना दी गई,

राष्ट्र के श्री-स्रोत सब सूख गये।

मूर्च्छित शक्ति को महात्मा ने आकर जगाया—

और राष्ट्र के श्री-स्रोत फिर हरे होने लगे।

अपने समुद्धार के पुण्यपर्व पर नारी ने जन-जन को

शील-दान दिया, शक्ति-दान दिया।

—वियोगी हरि

यशस्वी और मानवता के उपासक पत्रकार श्री चतुर्वेदीजी का यह भावपूर्ण पत्र, जिसमें एक पितामह की भावी आकाक्षाओं का मर्मस्पर्शी चित्र अकित है, निस्सदेह, हमारी बहन-बेटियो के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगा।—सपादक

प्रिय हरिभाऊजी

आपके महिला शिक्षा सदन, हटुंडी के विषय मे बहुत कुछ सुनता रहा हूँ—एक नैपाली कार्यकर्ता ने उसकी बडी प्रशसा की थी—और आपने भी आज्ञा दी थी कि कभी मै उधर हाजिर होऊँ, पर मै आ नही सका। इसके लिए लज्जित और क्षमा प्रार्थी हूँ।

स्त्री शिक्षा के विषय में मेरा ज्ञान अत्यल्प है और उस पर अधिकारपूर्वक कुछ भी लिखना मेरी योग्यता के बाहर की बात है। हाँ, एक विषय ऐसा है—'बालिकाओ को किस प्रकार का मानसिक भोजन दिया जाय?'—जिस पर मैंने कुछ विचार किया है, पर उस विचार को व्यवस्थित रूप देने के लिए कुछ समय चाहिये। इस समय पत्र के रूप में अटर-शटर तरीके पर, जो कुछ मन में आ रहा है, लिख रहा हूँ।

अभी उस दिन एम० ए० में पढने वाली सुशिक्षित परिवार की एक कन्या से मैंने पूछा "आपको कौन-कौन ग्रन्थकार पसद है?" उन्होने मोपासा का नाम खासतौर पर लिया। उस महान् फरासीसी कलाकार का मैं भी प्रशसक हूँ, यद्यपि उसकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी है, जिन्हें भारतीय दृष्टिकोण से अवाछनीय ही माना जायगा। मोपासा की कहानियो को पढना चाहिये और अवश्य पढना चाहिये, पर बुद्धि के परिपक्व होने पर और तटस्थ वृत्ति से।

खेद है कि मोपासा की कुछ कहानियाँ मुझे अश्लीलता की सीमा के निकट पहुँचने वाली लगी। मैंने उस छात्रा से तुर्गनेव, चैखव और गोर्की तथा प्रेमचन्द की कहानियो के पढने की सिफारिश की, पर मोपासा को पढने से मना नही किया।

तब से मैं इस प्रश्न पर बराबर सोचता रहा हूँ कि अपनी बहनो, बेटियो के लिए किस प्रकार का मानसिक भोजन दिया जाय?

अपने देश की लडकियो के लिए रामायण और महाभारत तो अनिवार्य्य बना ही देनी चाहिये, पर उसके साथ ही साथ देश की भिन्न भिन्न भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ उनको सुलभ कर देने की भी जरूरत है।

पाठ्यक्रम में जो ग्रन्थ रक्खे जाते है उनमें अच्छे पाठो को रखवाना आसान काम नही। जो महानुभाव इन पुस्तको को तैयार करते है, उनका मुख्य उद्देश्य रुपया कमाना होता है और आदर्शवादिता की बात भला वे क्यो सुनने लगे? हिन्दी जगत में रीडरबाजी की जो चोर बाजारी ३०-३० वर्ष से हो रही है, उसका अन्त करना आसान नही। यदि सरकार ने इस व्यापार को अपने हाथ में ले लिया तो भी बहुत दिनो तक

यह धांधली चलती ही रहेगी। इसलिए हम गैर सरकारी प्रयत्नो के प्रवल पक्षपाती है। सब से मुख्य प्रश्न यह है कि स्त्री शिक्षा के विषय मे हमारा दृष्टिकोण क्या है? हम किस प्रकार की समाज-व्यवस्था के पक्षपाती है? हम शहरी सस्कृति का निर्माण करना चाहते है या ग्रामीण सस्कृति का? एक बात तो तय है कि इस देश के लिए सब को एक लाठी से हाँकने की नीति सर्वथा हानिकारक ही सिद्ध होगी। विचारो की स्वाधीनता एक ऐसी चीज है कि उसको किसी सिद्धान्त की वलिवेदी पर हर्गिज हर्गिज वलिदान न करना चाहिए। इसके साथ ही हमें अपने दृष्टिकोण को सर्वथा व्यापक वनाये रखना है। हमें दरअसल मानव सस्कृति का निर्माण करना है।

अभी कुछ दिन पूर्व हमने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में एक लेख छपवाया था, जो चार पूज्य माताओ के विषय में था। वापू की माता, लैनिन की माता, क्रोपाटकिन की माता और जयिनी मार्क्स (कार्ल मार्क्स की पत्नी) और चारो माताओ के प्रति हमने अपनी श्रद्धाञ्जलि प्रकट की थी। सिद्धान्तो और मतभेदो के जजाल में हमें नही फँसना है। हमारा कर्तव्य तो यह है कि जहाँ से भी जो कुछ भी अच्छा मिल सके ले लें।

साम्यवाद के प्रवर्तक या प्रचारक कार्ल मार्क्स की पत्नी जयिनी मार्क्स का रेखा चित्र मैंने विशाल भारत में छपाया था और उसको ट्रैक्टाकार में भी प्रकाशित किया था। उसे पढ कर कुछ साधारण हिन्दी जानने वाली स्त्रियो की आँखो में आँसू आ गये और मैंने तब समझा कि सहानुभूति की कोई सीमा नही है। पतिव्रता जयिनी को गरीबी के कारण घोर सकट सहने पडे थे। मार्क्स ने एक चिट्ठी में लिखा था—

"पिछले पन्द्रह दिनो में मुझे नित्य प्रति ६-६ घटे दौडना पडा है, जिससे कही से ६ आने पैसे जुटा कर अपने वाल-वच्चो के तथा अपने पेट में कुछ डाल सकूँ।"

उनके कई वच्चो का देहान्त हो गया और उस समय की लिखी जयिनी मार्क्स की चिट्ठियाँ अत्यन्त हृदय-द्रावक हैं।

साम्यवाद से भले ही कोई सहमत हो या न हो, पर पतिव्रता जयिनी के त्याग तथा वलिदान की प्रशसा सभी को करनी पडेगी। मार्क्स-दम्पती का ८ वर्ष का इकलौता वेटा ऐडगर मन्द ज्वर से चल वसा था और उसकी हूक माता के हृदय में वहुत वर्षों तक व्याप्त रही। जयिनी ने उस वज्रपात के वीस वर्ष वाद लिखा था —

"यह तो मै नही कहूँगी कि घाव भर जाता है। घाव तो कभी नही भरता—खास तौर पर माँ के हृदय का घाव तो कभी नही भरता।" यदि मेरे पास साधन हो तो जयिनी मार्क्स का रेखाचित्र ट्रैक्ट के आकार में फिर से छपा कर लागत के मूल्य पर सव के लिए सुलभ कर दूँ।

कल ही मुझे वडे प्रयत्नो के वाद 'काकोरी के शहीद' नामक पुस्तक मिली और उसमें शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की माता के चित्र के दर्शन किये। उसमें एक चित्र वह भी था, जिसमें उनके पिताजी उनका (विस्मिल का) शव लिये वैठे हैं। उस चित्र को देख कर कँपकँपी आ गई।

और अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की माताजी तो स्वय दो वार हमारे घर पर पधारी थी और चौदह दिन तक उन्होने हमारे निवासस्थान को पवित्र किया था। आज हम लोग, जो स्वाधीनता की सुख सुविधाओ का भोग कर रहे है, क्या कल्पना भी कर सकते हैं उस माता की वेदना की जिसका एकमात्र पुत्र भारत की स्वाधीनता के लिए शहीद हो गया था और जिसे सत्रह वर्ष तक दोनो वक्त कोदो की खिचडी खाकर गुजर करनी पडी थी?

हमारी जिन माताओ, वहनो या लडकियो को दोनो वक्त सुस्वादु भोजन मिलता है, क्या वे कल्पना

कर मकती है उस माता की, जिसके चार वच्चे पहले जा चुके हो और पाँचवाँ चन्द्रशेखर आजाद इम प्रकार शहीद हो गया हो ?

अगर मै कोई प्रकाशक होता तो ऐसी माताओ की छोटी छोटी सचित्र जीवनियाँ प्रकाशित करता और सस्ते दामो में उन्हे सव के लिए सुलभ कर देता। वडे-वडे और कीमती ग्रन्थो को खरीदने का सुभीता कितनो को है? डाक्टर सुशीला नय्यर की वारह रुपये वाली पुस्तक (वापू के कारावास की कहानी) को कितनी वहनें मोल ले मकेंगी? निरन्तर वारह दिन उमका अध्ययन कर के उमका सक्षिप्त साराश मैंने एक लेख में दे दिया था और उसके रिप्रिण्ट ले लिये थे, जो पच्चीस रुपये में एक हजार पडे, यानी एक रुपये में चालीस। इस प्रकार पाँच नये पैसो में दो प्रतियाँ उस लेख की मिल सकती थीं!

क्या सुलभ साहित्य प्रकाशित करने वालो ने सच्चे सस्तेपन पर कभी गौर भी किया है? किसी की शिकायत करना वेकार है। यदि कभी मुझे मौका मिला तो दस वीस ट्रैक्ट छपा कर एक मिसाल उपस्थित कर देने की इच्छा अवश्य रखता हूँ।

किसी भले मानस ने वारह वरस दिल्ली मे रह कर भाड झोंकना सीखा था। मै भी वारह वर्ष अध्यापक रह चुका हूँ—और दिल्ली मे भी करीव करीव आधा भाड भी झोंक चुका—पर शिक्षा शास्त्र का क, ख, ग तो क्या अ, आ, इ, ई भी नही जानता। इसलिए शिक्षा विशारदो को कोई परामर्श देने का मुझे अधिकार नही। लडकियो को क्या पढाना चाहिए और क्या नही पढाना चाहिए? इस सवाल पर वहस करने के वजाय मै यह लिख देना वेहतर समझता हूँ कि मै मनीषी, मजु, कुमकुम और रेखा को—जिनमें पहली तीन मेरी वेवती है और चौथी पौत्री—किस प्रकार की शिक्षा दिलाना चाहता हूँ।

मैं परीक्षाओ का घोर विरोधी हूँ। मै यह नहीं चाहता कि मनीषी, मजु, कुमकुम और रेखा बी० ए०, एम० ए० पास करें। यदि किसीका कचूमर निकलवाना हो तो उसे परीक्षाओ के चक्कर में डाल दो। ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त किसी पूर्ण स्वस्थ लडकी के दर्शन मैंने अभी तक नहीं किये। और कालेजो की पढाई कितनी फालतू वन गई है!

जालधर, वनस्थली तथा हटूंडी इत्यादि में जो प्रयोग हुए है उनके वारे में मेरा ज्ञान अत्यल्प है। इसलिए उन पर कुछ भी सम्मति प्रकट करने का मुझे अधिकार नहीं। इस प्रकार के प्रयोग सैकडो की सख्या में होने चाहिए और निष्पक्ष भाव से उनके परिणाम जनता के सामने आने चाहिए।

मस्तिष्क के साथ साथ हृदय के विकसित करने की आवश्यकता है। हृदयहीन पढी लिखी औरतें देश के लिए अभिशाप ही सिद्ध होगी। उनके वजाय सहृदय किन्तु अशिक्षित महिला को अगले जन्म में माता के रूप में पाना मैं कही अधिक पसन्द करूँगा। मेरी माता वहुत थोडी पढी लिखी थी, पर रामायण का उन्होंने इक्कीस वार पारायण किया था। वल्कि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही तुलसीदास की रामायण पर ढाल लिया था और उसके अनेक अश उन्हें कण्ठस्थ थे। शिक्षा कम होने पर भी सस्कृति उनमें वहुत काफी थी। हमारे पिताजी ने पूरे पचपन वर्ष १८७५ से लेकर १९३० तक मुदर्रिसी की और उनकी औसत आमदनी दस रुपये महीने से ज्यादा नहीं थी। अपने चार वच्चो के पालन पोषण, शिक्षा, विवाह इत्यादि में उन्हें कितनी तपस्या करनी पडी, इसे मैं भी पूरी तौर पर नही जानता। घर से कही दूर न भटक कर मैं मनीषी, मजु, कुमकुम और रेखा के सामने अपनी माता का आदर्श रक्खूँगा। अवश्य ही मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि उनका दृष्टिकोण व्यापक हो। पर उसके लिए उच्च अँग्रेजी शिक्षा की जरूरत नही। हम लोगो का कर्तव्य है कि सव प्रकार का उच्च से उच्च साहित्य हम हिन्दी में ही उपलब्ध करा दें।

करुण रस द्वारा हृदय के विकास में जो सहायता मिलती है वह अन्य प्रकार से नही मिलती। जहाँ मै ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'सीता वनवास' पढने की सिफारिश करूँगा, वहाँ श्रीमती स्टो की 'टाम काका की कुटिया' पढने की भी। यदि कोई उत्साही प्रकाशक 'ससार की सर्वश्रेष्ठ सवा सौ स्त्रियाँ' नामक पुस्तक छपा दे तो वह भी पढाई जा सकती है।

चूँकि मै ग्रामीण सस्कृति के निर्माण के पक्ष में हूँ, इसलिए मै बुनियादी शिक्षा पद्धति के प्रयोग को अपनाने का आग्रह भी करना चाहता हूँ।

मेरे पूज्य पिताजी प्रत्येक पत्र में आशीर्वाद के तौर पर लिखा करते थे "खुश रहो और तन्दुरुस्त रहो।" उनकी पौत्रियो तथा प्रपौत्रियो के लिए मै इससे बढ कर और आशीर्वाद नही मानता। पर यदि मनीषी, मजु, कुमकुम और रेखा में से कोई आगे चल कर लिपस्टिक लगाना शुरू कर दे, ऊँची एडी के बूट पहने और ग्रेजुएट बनने की कोशिश करे तो मैं उसे रोकूँगा नही। उन्हें इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वे अपने नाना या बाबा को मूर्ख समझें। हाँ, इतना मै अवश्य चाहता हूँ कि इनमें से कोई अच्छी लेखिका अवश्य बन जाय और जब हटूंडी महिला विद्यापीठ की रजत-जयन्ती पर आप मुझसे लेख माँगें तो वह इतना बढिया लेख भेज सके कि आप उसे आशीर्वाद दें और मेरी पीठ ठोकें। उम्र और अकल तथा पद और साधना इन चारो में मुझसे बडे होने के कारण आपका इतना अधिकार तो है ही।

१९ नार्थ ऐवेन्यू, नई दिल्ली
२८-९-५७

विनीत
बनारसीदास चतुर्वेदी

साहित्यिको से

"आप स्त्री को उभारते क्यो हैं? क्यो उसमें उन विचारो को पैदा करने की चेष्टा करते है, जो उसमें नहीं है। आप तो उसे बार-बार दर्पण में देखने को ललचाते है, इस विचार से कि साहित्य के वर्णनो में जैसा-जैसा नाक-कान और आख बताये जाते हैं, वैसे उसके हैं या नहीं? चौबीस घटे नारी इसी धुन में भरमाई रहती है और हाथ में दर्पण लिए घूमती है। उसके हृदय में यह विचार ही उत्पन्न क्यो हो कि मेरे बारे में जैसा लिखा गया है, मै वैसी हूँ या नहीं। उसके बारे में आप जो भी लिखना चाहें लिखें, पर उसे विकारो की पुतली समझकर न लिखें।" —गाधीजी

विचार मुक्तावलि

श्रीभगवान

हजार वर्ष तक परतन्त्र रहने के पश्चात् यह देश अभी-अभी आजाद हुआ है। इतनी लम्बी अवधि तक परावलम्बी रहने के कारण देशी और विदेशी सभी विद्वान् इसकी असमर्थता, अक्षमता, निर्वीर्यता और आलस्यकारिता को ही समझते चले आए हैं और सतह पर देखने से इसके अतिरिक्त और किसी निर्णय पर पहुँचा भी नहीं जा सकता। पर अन्तर में जरा गहरे में उतर कर जिसने कुछ देखा है उसका दावा तो इससे विपरीत है। क्या सबलता और सक्षमता के रहते भी किसी ने हारना पसन्द किया है? क्या भरपूर शौर्य और संगठन के रहते भी कभी कोई पीछे हटा है? यदि इन प्रश्नों का उत्तर कोई "हाँ" में दे सकता है तो वह भारत की इस विचित्र परिस्थिति को सम्भवत समझ सकेगा।

कितने पिता अपने नन्हें से पुत्र से हारते नहीं देखे जाते। कितने पिता पुत्र को कंधे पर बिठा कर उसके मुख से यह सुन कर प्रसन्न नहीं होते—पिताजी देखो मैं तुमसे बड़ा हूं! यह तो प्रेम की बात हुई और कुश्ती में कुछ पहलवान नीचे से ऐसे पेच कसने के अभ्यस्त होते हैं कि विजय गर्वित अपने प्रतिद्वन्द्वी को दूर चारों खाने चित्त फेंकते हैं। सैनिक अभियान में पीछे हटने का नाटक करके शत्रु सेना को घेरे में ले लेना या उसे विषम स्थिति में डाल देना एक सर्व विदित सिद्धान्त है। पर भारत की आन्तरिक स्थिति को समझने के लिए—निम्नता की ओर जाने की अनिवार्यता को—उसके अन्तर में छिपी दूरदर्शितापूर्ण प्रेरणा को आत्मसात करने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण लुकमान का है।

लुकमान की कहानी काफी प्रसिद्ध है फिर भी संक्षेप में यहां उसका उल्लेख कर देना उपादेय ही सिद्ध होगा। लुकमान अपने समय का एक बहुत ही योग्य और प्रतिष्ठित विद्वान् हुआ है। विद्वान् तो और भी बहुत से हुए हैं, पर उसकी प्रतिभा ने सत् की सेवा के लिए एक बहुमूल्य नाटक खेल कर उसे संसार में अमर बना दिया। वह दासों के क्रय-विक्रय के दिन थे, लुकमान भी परिस्थितिवश क्रीतदास बन कर एक अमीर आदमी के घर पहुँचा। सन्त किसी भी रूप में आयें उनका सत्संग उद्धार ही करने वाला होता है। लुकमान का मालिक अमीर, घमण्डी और दुश्चरित्र था। उसकी आँख खोलने के लिए लुकमान ने जान बूझ कर उसकी आज्ञा की अवज्ञा की—जिस खेत में मालिक ने गेहूँ बोने को कहा था वहां जाकर उसने जौ बो दिए।

एक रोज जब मालिक खेत देखने गया तो उसमें जौ उगे हुए देख कर वह स्वभावत ही बहुत क्रुद्ध हुआ और घर आकर उसने लुकमान को बुरी तरह फटकारा—तू बड़ा गुस्ताख है, नालायक है। बड़ी विनम्रता से लुकमान ने कहा—"हुजूर क्या बात है? मुझसे ऐसा क्या कसूर हुआ?" मालिक ने क्रुद्ध होकर पूछा—"मैंने तुझ से उस खेत में गेहूँ बोने को कहा था या जौ?" लुकमान ने संजीदगी से जवाब दिया—'हुजूर मुझे खूब याद है आपने गेहूँ बोने की आज्ञा दी थी!" 'तो फिर तूने उसमें जौ क्यों बोए?" उत्तर में लुकमान ने आश्चर्य चकित मुद्रा से पूछा—"तो क्या उसमें गेहूँ नहीं उगे?" 'तूने बोया क्या था यह बता।' "हुजूर बोए तो मैंने जौ ही थे।" 'तो फिर उसमें गेहूँ कैसे उगते?"

अब असली बात का मौका आया देख लुकमान ने अपना हथियार सँभाला—एक अजीब सजीदगी भरे लहजे मे बोला—"हुजूर, यह तो मैंने आप से ही सीखा!" "मुझसे?" मालिक का पारा और भी चढ गया था, "मैंने तुझसे कब कहा था कि जौ बोने से गेहूँ पैदा होता है?" लुकमान बोला—"यह बात तो, सच है, आपने कभी नही कहा, पर गुस्ताखी माफ हो तो एक बात कहूँ! आपके जैसे ऐमाल है वह तो आप जानते ही है, फिर भी आप का ख्याल है कि आपको बहिश्त मिलेगा। मैंने सोचा, यदि ऐसे ऐमाल से बहिश्त मिल सकता है, तो आपके खेत में जौ बोने से जरूर गेहूँ पैदा होगा।" कुछ होनहार, यह बात उसको लग गई, उसकी आँख खुल गई, उसे होश आया और आगे चल कर वह एक भला आदमी बन गया।

यह कल्पना करना क्या कुछ कठिन होगा कि जिस ईश्वरीय शक्ति ने एकाकी लुकमान के द्वारा एक सिर फिरे आदमी का उद्धार किया वही शक्ति विशाल आयोजन के द्वारा समस्त राष्ट्र को लुकमान का रूप देकर एक दो व्यक्तियो को नही, एक दो जातियो को भी नही, किसी राष्ट्र विशेष को भी नही, प्रत्युत् इस समस्त मानव समाज को जो पशु-पक्षियो और स्थावर जगत् को भी अपने साथ लेकर सर्वनाशोन्मुख होकर खडा है बचाने और सन्मार्ग पर लाने का स्तुत्य प्रयास कर रही है! उत्साहमय शौर्य से ओतप्रोत परावलम्बन का वह प्रारम्भिक दृश्य और यह विचित्र-सा पटाक्षेप दोनो एक ही सूत्रधार की अर्थपूर्ण लीलाएँ है।

लुकमान का दासत्व नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से ही आवश्यक नही, उसकी वाणी में ओज लाने के लिए भी उपादेय हुआ। कितने ही लोग कितनी ही बार कितनी ही बातें करते है और असर नही होता। लुकमान की बात का असर हुआ तो क्यो? उसकी तपश्चर्या के कारण ही तो! भक्तिप्रिय इस देश की प्रलम्ब दासता का भी कोई अर्थ होना चाहिए। इस्लाम शिर्क को सबसे बुरा समझता है, हिन्दू अभिमान को! कर्तृत्व को, जो ईश्वरत्व का अग है, अपने ऊपर ओढ लेना या अपनी किसी प्रिय शक्ति पर आरोपित करना ही तो अभिमान है। और यही शिर्क है—ईश्वर का साथी मान लेना! अभिमान को तोडना आवश्यक था और वह खूब बारीक करके पीसा गया!

पृथ्वीराज चौहान जैसा सूरमा क्या कही हुआ है? अनेक बार अपने शत्रु को हराना, पकड कर छोड देना और फिर भूल जाना। सगठन का भी अभाव न था। दिल्ली और अजमेर का एकीकरण तो उसने किया ही। पर अभिमान कितना था? ढेर का ढेर राजपूती वीरता का गर्व! और इधर मुट्ठी भर हड्डियो वाला गान्धी अपने समय के सबसे बडे साम्राज्य को हटाता है और फिर भी एकदम निरभिमान! उसके साथी दूध की मक्खी की तरह उसे निकाल कर फेंकते हैं, पर क्या वह कहता है मैंने किया, मैं करूँगा! हाँ, एक बार वह चीखता अवश्य है, मेरी कोई नही सुनता। हुई न खूब बारीक पिसाई! पर प्रश्न यह है—क्या यह पिसाई, यह नम्रता आप लोगो तक पहुँची है?

काँपो नही! निश्चय ही वह चक्की अभी भी मौजूद है पर किसी की इच्छा ऐसी है कि अब किसी दूसरी तरह की चक्की, किसी दूसरी तरह की छलनी से काम लिया जाय! वह चक्की, वह छलनी है शिक्षा! तो क्या शिक्षा का अर्थ यह है कि मनुष्य निरभिमान बने? निरभिमानता का अथ निकम्मापन नही और न कायरता या बुद्धूपन ही है। निरभिमानी अपनी सीमित अहन्ता से निकलकर अनन्तता में जा पहुँचता है। चरवाहा जैसे अच्छे जल और अच्छी घास की ओर अपने गाय बैलो को ले जाता है, वैसे ही सच्चा शिक्षक अपने शिष्य के मन को उस सूत्र से जा मिलाता है जो अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति का, शान्ति और सम्पन्नत्व का मूलस्रोत है।

"विद्याददाति विनयम्"—अच्छा तो ऊँची उडानो से उतर कर किसी सुपरिचित स्थान पर आ पहुँचे। जैसा कि आप लोगो का ख्याल है विनय कोई अव्यावहारिक बात नही है। "विशेषेणनयति इति विनयम्।" ससृति की किसी भी परिस्थिति मे जो माग निकालने मे सहायता दे वह "नय" और जो शोभायमान रीति से आगे बढाए

वही "विनय" है। पर यह "विद्या" जो प्रतिवर्ष हजारो लाखो युवको को मशीन के पुर्जों की तरह ढाल कर बाजार में ला पटकती है क्या उस विनय को दे सकती है ? विद्या का जो रूप अग्रेजो के समय था लगभग वैसा ही अब भी चला आता है।

बहुत से सम्मेलन हुए, कमीशन भी बैठे, भाषणो और लेखो के द्वारा छोटे और बडे अधिकारी और शिक्षक सभी प्रचलित शिक्षा की कडी से कडी आलोचना करते चले आ रहे हैं पर यह शिक्षा है कि किसी की परवाह न करके स्थित-प्रज्ञ की तरह अपनी ही राह चली जा रही है। आज देश की नैतिक अवस्था इतनी दयनीय हो उठी है कि ऐसी शायद ही पहले कभी हुई हो। और इस सर्वव्यापी अनैतिकता का यह शिक्षा ही मूल कारण है। न जाने क्यो किसी में साहस नही होता कि इस शिक्षा को देश निकाला दे। निश्चय ही कुशिक्षित से अशिक्षित अधिक सरलता से अच्छा बन सकता है।

कोई गान्धी फिर उठे जो इन पुस्तको को फिकवा दे। तब स्वराज्य के लिए स्कूलो का बहिष्कार हुआ, आज शिक्षा की रक्षा के लिए ही इन पुस्तको और जीवन विहीन बहुत से विद्यालयो को हटाने की आवश्यकता है। कोई समय था जब गुरु लौकिक ज्ञान और धर्म के तत्वो को आत्मसात् करके शिष्य को जिस वस्तु की आवश्यकता होती देता था। जीवन का जो स्थायी अग है वह तो अध्यात्म-विद्या के द्वारा पूरा हो और लोक शिक्षा देश काल की अवस्था को देख कर निर्धारित हो। एम० ए०, बी० ए० का मोह छोड कर देश सीधी राह पकडे—शरीर तगडा, मन शुद्ध हो और आत्मा "सत्यम्, शिव, सुन्दरम्" के आलोक में विचरे।

स्त्री और पुरुप अपने में अपूर्ण हैं ऐसा मानने की आवश्यकता तो नही है पर आज की स्थिति में यह दोनो अधिकाशत एक दूसरे के पूरक के रूप मे ही पाये जाते हैं अतएव शिक्षा भी ऐसी हो जो इन पूरक गुणो के विकास और उनकी पूर्ति में सहायक हो। बौद्धिक प्रमाद के कारण शिक्षा पर विचार कम ही होता है और जो विचार होता है उसे क्रियान्वित नही किया जाता—क्रियान्वित करने का साहस, नवीन मार्ग पर चलने का अनुसधानमय उत्साह कही खो-सा गया है। धर्मान्वेपण, सत्यानुसन्धान, कर्तव्यरति, सर्वोत्सर्गीलता, शुद्ध बुद्धि, निस्पृह अनासक्ति, तल्लीनता आदि गुणो को अपने अन्दर पैदा करना होगा, उन्हें ईश्वर से मागना होगा।

महिला शिक्षा सदन हटुडी में रहने वाली आत्माएँ ब्रह्मचर्य आदि सद्गुणो से विभूपित होकर देशोपयोगी शिक्षा जहा प्राप्त करने मे लीन हो वहा ससार के कल्याण को लक्ष्य में रखकर साय प्रात सन्ध्या प्रार्थना के समय और आश्रम के पार्वत्य प्रान्त में भ्रमण करते हुए विश्व-विधाता से उन आवश्यक गुणो को अपने लिए, अपने भाई-बहनो के लिए, ससार में दूसरे देशों के लोगो के लिए प्रेमल गद्गद कठ से मागना न भूले। ध्यान रहे सच्ची शिक्षा चलते-फिरते मनन करते हुए होती है। जैसे विचार आते हैं वैसा ही अपना मन बनता है। इसलिए घूमते-फिरते, बात करते, भोजन और शयन के समय विचार ऊँचे अच्छे और सच्चे हो।

मेंहदी बाँटने वाले के हाथ स्वय ही रग जाते हैं। इसी तरह जो दूसरो का भला चाहता है, दूसरो के लिए कल्याण-कामना, प्रार्थना-साधना करता है उसका अपना भला तो हो ही जाता है। स्त्री-हृदय नैसर्गिक रूप में ही कोमल, प्रेमल, भावुक और भक्तिमय होता है और यदि उसके साथ सत्यता, सरलता और सर्वात्म-भाव की पुट और मिल जाये तो वात्सल्यमय ईश्वर के हृदय तक वह बडी आसानी से पहुँच सकता है। यदि इस आश्रम की, गिरि-शिखर के सान्निध्य में बसे इस सदन की एक भी कन्या अपनी तपस्या से, अपनी साधना से, अपनी भक्ति के बल से ईश्वर के दरबार तक जा पहुँचती है तो वह अपने देश के लिए, अपने इस ससार के लिए क्या कुछ न माग लायेगी? और यदि अनेक कन्यायें ज्ञान, भक्ति और चारित्र्य के साथ शुद्ध मन और स्वस्थ शरीर होकर इस मार्ग का अनुसरण करें तो यह स्थल ससार का एक महत्व-पूर्ण कल्याण-केन्द्र बन जायगा।

मंगल-वरदान

मंगलमय भगवान, मुदित मन दो मंगल-वरदान

मंगलमय यह सृष्टि तुम्हारी
मंगल मूरति सब नर-नारी
देव-दनुज सब मंगलकारी
तेरा अमिट विधान
मुदित मन दो मंगल वरदान

सत्य सुखद सब काम तुम्हारा,
शिव मंगलमय नाम तुम्हारा,
सुंदर मंगल धाम तुम्हारा
युग-युग का परिणाम
मुदित मन दो मंगल वरदान

अरुण-स्वर्ण-किरणें चमकाकर,
लता-विटप शुभ सौरभ लाकर,
विहग भ्रमर गा गीत मनोहर
करते शिव शिव गान
मुदित मन दो मंगल वरदान

—हरिभाऊ उपाध्याय

आज की तालीम

गोकुलभाई भट्ट

नवी कक्षा में पढनेवाले एक सुशील लडके के साथ अजमेर से जयपुर का रेल-सफर कर रहा था। आसल-पुर-जोबनेर से हमारी गाडी आगे चली। जासूसी कहानी पढने में लगे हुए इस लडके से मैंने पूछा—

"अब कौन-सा स्टेशन आयगा ?"

विद्यार्थी—"मुझे क्या मालूम ? ऐसे छोटे-छोटे स्टेशनो का ध्यान कौन रक्खे। अजमेर है, जयपुर है ऐसे स्टेशन ही स्टेशन है।"

मैं—"तो ये क्या स्टेशनिया हैं क्या ? निकम्मे हैं क्या ? क्या यहाँ पर या इन छोटे स्टेशनो के आसपास में कोई आदमी नही रहते ?"

विद्यार्थी—"रहते होगे। जगली लोग होगे। ऐसी जगहो पर कौन रहे ! और हमको उनका ध्यान भी क्यो रखना चाहिये ?"

मैं—"गाँव में रहनेवालो को जगली कहते हो और शहरो में रहनेवालो को इन्सान मानते हो। गाँव वाले आपको जगली कहें तो ?"

विद्यार्थी—"हाँ, वे शहरवालो को जगली कह सकते है, उससे शहरवाले थोडे ही जगली बनते हैं ?"

मैं—"तो भय्या ! तू गाँव वालो को जगली कह देगा तो उससे वे थोडे ही जगली बन जायँगे ! वे भी तो अपने जैसे इन्सान है, हैवान नही। तू, कभी गाँवो में नही गया क्या ? और तूने जयपुर जिले की भूगोल नही पढी क्या ? जयपुर जिले में सिर्फ जयपुर जैसे शहर ही शहर है क्या ? तू दुनिया की भूगोल तो याद करता है, नक्शे देखता है और तेरे घर के नजदीक जो गाँव हैं, उसका तुझे पता नही है।"

विद्यार्थी—"उससे हमे क्या मतलब ? हमें उस जानकारी से क्या लाभ होता है ?"

* * *

फिर से वह जासूसी कहानी पढने लगा।

* * *

यह आज की हमारी तालीम का एक सर्वसाधारण दृश्य है। हमारी आँखें खोलनेवाले अनेक किस्सो में से एक है।

जिस शिक्षा-प्रणाली ने हमें अपग बनाया, असलियत से दूर भगाया, मानवता से मुह मुडवाया, प्रकाश से तिमिर की दिशा में धकेल दिया उसको बदलने की बातें कई वर्षो मे होती रही हैं। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के बाद पूरी आशा की गई थी कि शिक्षा पद्धति में आमूलाग्र परिवर्तन हो जायगा। परन्तु परिस्थितिवश हम कुछ कर नही पाते है, यह हमारा दुर्भाग्य है।

सच्ची शिक्षा की दिशा में हमारे कदम जितने तेजी से बढेंगे, उतना ही हमारा पूर्णस्वराज्य का—सर्वोदय का—राष्ट्रपिता महात्मा गाधीजी का—सपना साकार होगा।

श्री अरविन्द का शिक्षा-दर्शन

व्यक्तित्व परिवर्तन की मूल प्रेरक शक्ति

इन्द्रसेन

राष्ट्रीय नेता के रूप में श्री अरविन्द का स्मरण सदा ही अत्यत जीवित-जागृत रूप में किया जाता है। परन्तु जैसा कि बाद के घटनाक्रम से पता चलता है, उनके जीवन का वास्तविक ध्येय उस मूल-प्रेरक शक्ति एव पद्धति की खोज करना था जो मानव के वैयक्तिक, राष्ट्रीय तथा जातीय जीवन का स्तर ऊचा उठा सके, उसे उन्नत और उदात्त कर सके। सुदीर्घ और गभीर आत्म-चिंतन एव अभीप्सा के द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि ये प्रेरक शक्तिया अपने स्वरूप में आध्यात्मिक है। वे ऐसी बहुत सी प्रेरक-शक्तियो का निरूपण करते हैं और कहते हैं कि उन्हे उत्तरोत्तर सक्रिय बनाने से व्यक्तित्व का रूपातर तथा समन्वय अधिकाधिक मात्रा में साधित किया जा सकता है। आज के युग में मन ही हमारी सामान्य चेतना है और शिक्षा के द्वारा हम इसीकी उन्नति और विकास का यत्न करते हैं और फिर इसकी क्षमताओ से जीवन को समृद्ध तथा सुसमन्वित करना चाहते है। किंतु चेतना के उच्चतर स्तरो की शक्तिया कही अधिक महान् हैं, जिन्हें श्री अरविन्द ने उच्चतर मन, सबुद्ध मन, बोधि-मानस, अधि-मानस और अति मानस के नाम दिये है। व्यक्तित्व को तथा सामान्य रूप से जीवनमात्र को उत्तरोत्तर समग्र बनाने की सच्ची कुजी इन्ही मे है और इन्हें विकसित करना ही व्यक्तित्व के एकीकरण में गभीरतापूर्वक लगी हुई शिक्षा का विशेष कार्य होना चाहिए। मन तो अधिक से अधिक अपनी क्षमताओ के द्वारा अहमूलक आवेगो की परस्पर विरोधी शक्तियो में कुछ जोड-तोड कर सकता है, पर न तो वह उनका रूपातर कर सकता है और न ही उनमें सुसगति ला सकता है।

इस प्रकार श्री अरविन्द व्यक्तित्व के एकीकरण के हमारे आदर्श को उसका सपूर्ण वास्तविक अर्थ प्रदान करते है। वे इसका विशिष्ट अर्थ बतलाते है तथा इसकी प्राप्ति का साधन प्रतिपादित करते है। श्री अरविन्द के शिक्षा-सबधी दर्शन की प्रधान शिक्षा यही है और यह स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति को जो साधारणत समग्र व्यक्तित्व के आदर्श के लिए कार्य कर रही है, उनकी यह एक अत्यन्त अभिनदनीय देन है।

मन के स्तर से उठकर चेतना के उच्चतर स्तरो को विकसित किया जाय तो कैसे? इसके लिए हमारा प्रधान साधन है उच्चतर चेतना के लिए सकल्प, और अभीप्सा, उसके सबध में हार्दिक प्रेम, आदर और आनन्दा-नुभूति। एक अग्रदर्शी आन्तरवृत्ति और प्रयत्न ही इस विषय का सार और मर्म है। साधारणतया हम अपने वर्तमान में आसक्त रहते है तथा प्राय अपने अतीत की घटनाओ में अत्यधिक ग्रस्त और खोये से रहते है। परन्तु वस्तुत हमारी चेतना भविष्य तथा उसकी अतर्निहित वस्तुओ के लिए होने वाली प्रबल प्रेरणा से सचारित और परिपूरित होनी चाहिए। विकास और उपलब्धि के सकल्प को उत्तरोत्तर एक जीवत सत्य बनते जाना चाहिए तथा हमारा चेतन एव अवचेतन मन उसीसे व्याप्त और ओतप्रोत हो जाना चाहिए। यही वह मूलवृत्ति और प्रेरक-शक्ति है जो व्यक्तित्व के ऊर्ध्वमुख विकास का सूत्रपात तथा सवर्धन कर सकती है।

इस वृत्ति के परिपूर्ण विकास को लक्ष्य में रखते हुए शिक्षा की एक नई योजना बनाने तथा उसे नई दिशा में

मोडने की आवश्यकता है। और यदि यह कार्य सपन्न हो जाय तो हम इस नए गुण के उदय की ओर जिसकी हमने एकीकृत व्यक्तित्व के रूप मे कल्पना की है, आशाभरी निगाहो मे देख सकते है।

व्यक्तित्व के इस नए गुण को एक क्रियात्मक आदर्श बनाने तथा इसे चरितार्थ करने का साधन प्रस्तुत करने के लिए श्री अरविन्द ने बहुत समय पूर्व एक शिक्षा-केन्द्र की स्थापना करने का विचार किया था और उनके महाप्रयाण के बाद एक सम्मेलन में, जो पाडिचेरी मे अप्रैल १९५१ में हुआ, उनके कार्य को जारी रखने के लिए तथा उनके एक अत्यत उपयुक्त स्मारक के रूप में श्रीअरविन्द अतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया गया था। श्री माताजी के तत्त्वावधान तथा पथ प्रदर्शन मे इस केन्द्र ने तब से पर्याप्त उन्नति कर ली है। यह केन्द्र शिक्षा-जगत् के सम्मुख एकीकृत व्यक्तित्व के आदर्श तथा इसकी चरितार्थता के मूर्त शैक्षणिक साधन को उपस्थित करने की आशा रखता है और इसीके लिए यह निरतर यत्नशील है।

O

कोई भी काम मनुष्य चरित्र के बिना सम्पन्न नहीं कर सकता, चाहे वह निजी हो अथवा राष्ट्र का हो। इस चरित्र का निर्माण केवल पुस्तको के पढने से या अच्छे शब्दो को सुनने से नहीं होता। उसके लिए एक ही उपाय है और वह है त्याग और निष्ठा के साथ छोटे से छोटे और बडे से बडे काम को अजाम देना और सच्चाई के साथ उसे पूरा करना। जहा कहीं भी आवश्यक हो निजी स्वार्थ को दबाकर सेवा भावना से तत्पर होकर समाज-कल्याण के काम में लग जाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब आपके जीवन में मनसा, वाचा और कर्मणा सचाई हो, अर्थात् आपके विचार, व्यवहार और आचार भीतर से और बाहर से समान हो। —राजेन्द्र प्रसाद

अनवर आगेवान

ऋग्वेद से मालूम पडता है कि प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था।—"ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम्" (अथर्ववेद ११।६।१८) इस कथन के अनुसार भारत की कन्याएँ ब्रह्मचर्य, चरित्र-निर्माण तथा ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करने के पश्चात् युवावस्था में स्वय पति का वरण करती थी। इतना ही नही, परन्तु वैदिक सस्कार-पद्धति में विवाह के अवसर पर जिन मन्त्रो का उच्चारण किया जाता है, उनमें से अनेक ऐसे है जिन्हे नववधू स्वय बोलती थी और यो भी स्त्रियाँ कविताएँ बनाती थी तथा मन्त्रो की रचना भी किया करती थी। ऋग्वेद के अनेक कवितामय सूक्तो का आविष्कार स्त्रियो ने किया था, जिसका उल्लेख इस प्रकार उपलब्ध है।

अगस्त्य ऋषि और उनकी पत्नी लोपामुद्रा ने एक सूक्त बनाया था। इस सूक्त में काम-शास्त्र की अत्यन्त उच्च कोटि की बाते भी है। (१।१७६ सूक्त)

प्रथम मण्डल १३६वे सूक्त के छठे और सातवे मन्त्रो की आविष्कर्त्री रोमशा या लोमशा है।

८वे मण्डल के ९०वे सूक्त की रचना अत्रि की पुत्री अपाला ने की है। इसमें सब सात मन्त्र है। सभी में इन्द्र की स्तुति है।

१०वे मण्डल के ८५वे सूक्त की आविष्कर्त्री सूर्या नाम की ऋषिका है। इसमें ४७ मन्त्र है, जो अनेकानेक ज्ञातव्य तथ्यो से भरे पडे है।

इसी मण्डल के ८६वे सूक्त की २, ४, ७, ९, १०, १५, १८, २२ और २३ मन्त्रो तथा १४५ और १५९ सूक्तो की रचयिता इन्द्राणी है।

इसी मण्डल के १०९वे सूक्त की आविष्कर्त्री ब्रह्मवादिनी और बृहस्पति-पत्नी जूह है।

इसी मण्डल का १५१ सूक्त कामगोत्रीय श्रद्धा, १५४वाँ सूक्त विवस्वान-पुत्री यमी और १८६वाँ सूक्त सर्पराज्ञी का बनाया हुआ है।

इस प्रकार प्राचीन भारत में अनेक विदुषी स्त्रियो का पता चलता है। गार्गी, मैत्रेयी, भामती, सरस्वती और लीलावती जैसी अनेक शास्त्र-निष्णात देवियो की चर्चा हमारे प्राचीन साहित्य में है, इससे स्पष्ट विदित होता है कि उन दिनो स्त्री-शिक्षा प्रचलित थी।

किन्तु यहाँ एक प्रश्न उठता है कि कन्याओ को शिक्षा किस प्रकार दी जाती थी ? बालको के साथ या स्वतन्त्र रूप से ? इसका कोई स्पष्ट उल्लेख कही नही मिलता। गुरुकुलो में लडको के प्रवेश का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। यह भी पता चलता है कि गुरुओ की कन्याएँ आश्रमो मे रहती थी, अन्य शिष्यो के साथ अध्ययन करती थी, पर जन साधारण अपनी पुत्रियो को गुरुकुलो में भेजते थे, इसका कोई प्रमाण नही।

फिर भी इसका सकेत मनुस्मृति के निम्नाकित श्लोक से उपलब्ध होता है —

पुराकल्पे कुमारीणा मोञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापन च वेदाना सावित्री वचन तथा।
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्पर ॥

अर्थात्—प्राचीन काल मे कन्याओ का उपनयन होता था, वे वेद पढती थी और गायत्री भी पढती थी, परन्तु उन्हे पिता, चाचा वा भाई ही पढाते थे, दूसरे नही।

इस प्रकार जन साधारण की कन्याओं की शिक्षा घर पर ही होती थी और उन्हे—अपवादो को छोड कर—गृह-शास्त्र, ललित कलाएँ, तथा धर्म-शास्त्र का अध्ययन कराया जाता था।

अत इस समय में स्त्री दो प्रकार की मानी गई है, जिसका उल्लेख वीर मित्रोदय (संस्कार प्रकरण प० ४०२) में मिलता है —

द्विविधा स्त्रियो ब्रम्हवादिन्य सद्योद्वाहाश्च।
तत्र ब्रम्हवादिनीनामग्नीन्धन वेदाध्ययन,
स्वगृहे भैक्षचर्येति।
सद्योवधूना तूपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुप—
नयनमात्र कृत्वा विवाह कार्य ॥

अर्थात्—स्त्रियाँ दो प्रकार की थीं—एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी सद्योवधू। जो ब्रह्मवादिनी थी, वे आजीवन अग्निहोत्र वेदाध्ययन करती थी। घर पर ही रह कर भिक्षा माँग कर निर्वाह चलाती और सन्यासिनी का त्यागमय जीवन बिताती थी। दूसरी सद्योवधू थी, जो प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण कर लेने के बाद तुरन्त ही विवाह कर लेती थी। इसी बात को 'आपस्तम्ब-धर्मसूत्र' (१-५ १-८) में, और 'हरित स्मृति' (२१।२०।२३) में भी विस्तृत रूप मे लिखा गया है।

इस प्रकार प्राचीन काल में स्त्रियाँ चाहे अपना सारा जीवन 'ब्रह्मवादिनी' के रूप में ज्ञानोपार्जन करने में बिता दें या किसी पुरुष के घर की गृह-लक्ष्मी बन कर सार्थक करे, उन्हे इस सम्बन्ध में संपूर्ण स्वतन्त्रता थी।

०

"हमारी बडी भारी गलती यह हुई कि हमने मनुष्य के सामने समाज को ज्यादा महत्त्व दे दिया है। मनुष्य को छोटा बनाकर समाज को बडा बना दिया है। फल यह हुआ है कि, इससे समाज मनुष्य की उन्नति का साधन न बनकर एक कठघरा बन गया है। यही हमारी निरुपाय दुर्बलता का कारण है। अब त्राण इसी में है कि हम मनुष्य को बडा बनायें—हाँ, मनुष्य को जिसमें अंतर्यामी निवास करता है।" —संत कागावा

शिक्षा की समस्या

डा० हरि रामचन्द्र दिवेकर

मनुष्य बदल रहा है, काल दौड रहा है और यह बदलने या दौडने की गति इतनी तेजी से बढ रही है कि कल का मानव आज अपने को पिछडा पा रहा है। समय की माँगें बढ रही हैं और उन माँगो को पूरा करने में कार्य-कर्ता पूरे नही पडते। इस प्रगतिक गति में सूझता नही कि क्या करना चाहिए? महात्मा गाधी जी के नाम पर या उनकी राह पर चलने के लिए जो सस्थाएँ निर्माण हुई, उनकी हालत तो इन दस पाच विगत वर्षों में और भी कठिन हो गई है। पराधीन भारत में इन सस्थाओ में जो शक्ति थी वह आज भारत स्वाधीन होने पर नही रही है। इन सस्थाओ के प्रमुख कार्यकर्ता या तो वर्तमान शासन रथ को खीचने में फंस गये है या शनै-शनै इस ससार से ही उठते जा रहे हैं और ये सस्थाए अपने को अनाथ-सी पा रही हैं।

कारण स्पष्ट है। पारतन्त्र्य के समय हमारे सामने एक ही लक्ष्य था। और वह था परकीय सत्ता को दूर करना और अपने हाथो में सत्ता लेना। उसके लिए जो काम करने पडे, जो भार उठाने पडे और जो कष्ट सहने पडे वे भिन्न प्रकार के थे। तब कुछ मिलाना था, अब उसे टिकाना है। उन दिनो में हमें कुछ खा डालना था, आज उसे पचाना है। उस समय कुछ उठाना था, आज उसे ढोना है। 'वर्धनाद्रक्षण श्रेय' के नाते मिलाने से टिकाना कठिन है। खाया हुआ पचाने को खाने की अपेक्षा समय भी अधिक लगता है। बोझ उठाने के लिए कुछ क्षण शक्ति केन्द्रित कर उसे ऊँचा उठा सकते हैं, पर उठाकर उसे उठाये रहना आसान नही है। स्वराज्य प्राप्ति का काम एक अधिकार प्राप्त करने का था, अब कर्तव्य पूरे करने का काम है। इसमें दीर्घ समय लगता है और इतने दीर्घकाल तक अपनी ताकत, अपना दम टिकाना टेढी खीर है। स्वराज्य तो मिल गया और चोटी के नेताओ में वह बँट भी गया। पर क्या वह उसी स्तर पर रहेगा या राष्ट्र के निम्नतम स्तर पर पहुँचेगा। अगर वह वहा तक न पहुँचा तो यह टिकना एक बडी समस्या है।

और भी एक कारण है। स्वराज्य हमें मिल गया, हमने लिया नही। हम उसे लेने की कोशिश कर रहे थे कि वह बम-सा हमारे सिर पर आ धमका। राष्ट्र नेताओ ने उसे झेल तो लिया पर अब ऐसा जान पडता है कि हम उसके बोझ के नीचे दबे-से जा रहे है। भार सिर पर आते ही गर्दन तो तन गई, हाथो ने भी कुछ सहारा दिया, पर अब साँस फूल-सा रहा है और पैर अपनेको खडे रखने में मजबूत नही पा रहे हैं। यदि इनमें ताकत पैदा न हुई तो ये लडखडाने लगेंगे और सिर पर का बोझ ढल कर लुढक जायेगा। इसलिए आज का प्रधान कर्तव्य इन पैरो को, समाज के निम्नतम स्तरो को, हमारे ग्रामो को और वहाँ के युवको को समर्थ करना है और यह सारा कार्य योग्य ग्रामीण शिक्षा के बिना नही होने वाला है।

आज शिक्षा का जो कार्य चल रहा है वह केवल नागरी जीवन को ही स्पर्श करता है। ग्रामीण जीवन उससे अछूता ही रहा है। शिक्षा का विचार या विस्तार करने वाले अभी उसी अग्रेजो की चलाई हुई शिक्षा में फँसे हुए हैं। अभ्यासक्रम, परीक्षापद्धति, शिक्षाविधि ज्यो के त्यो बने हुए है। शिक्षको के विषय मे जितना न कहें, उतना

ही भला है। उनमें न नैतिकता है, न जीवन के कुछ आदर्श उनके सामने हैं, न चारित्र्य के विषय में ही वे किसी नियम का पालन करते हैं। उनकी नजर रहती है केवल वेतन पर और चिंता रहती है वेतन वृद्धि की। तात्पर्य अर्थ के सिवा उन्हें सारी ही बातें या तो अनर्थक लगती हैं या निरर्थक। इस दशा में आगे आने वाले छात्रों से हम क्या अपेक्षा कर सकते हैं? कहना तो यही होगा कि अगर वे अधिक नहीं बिगडे हैं तो उनका श्रेय हमें नहीं, उन्हें ही है।

आज की शिक्षा में मानवता की शिक्षा बिलकुल नहीं दी जाती, न शुद्ध धर्म के सिद्धान्त, न नीति के नियम, न प्राचीन परपरा के विषय में महत्व, न अर्वाचीन विज्ञान के सदुपयोग। गुण सवर्धन की ओर तो ध्यान ही नहीं दिया जाता है। यह शिक्षा चेष्टा करती है पडित बनाने की, पर मानव बनाने का प्रयत्न नहीं करती। सत्य, करुणा, सहानुभूति, स्वय शासन, स्वय प्रेरणा इत्यादि की ओर ध्यान बिलकुल नहीं दिया जाता। फल यह हो रहा है कि छात्र परीक्षा का सार्टीफिकिट चाहता है, ज्ञान नहीं। उसका उत्साह, उसकी शक्ति, उसकी बुद्धि इत्यादि का योग्य विचार नहीं किया जाता, जिसके कारण देश के एक शक्तिशाली वर्ग का हम उपयोग नहीं कर सकते। और जब यही शक्ति, बुद्धि, उत्साह मार्ग न मिलने के कारण अयोग्य मार्ग से फूट निकलते हैं तो हम उसके लिए छात्रों को ही दोषी ठहराते हैं।

बहुत से शिक्षा शास्त्री अभ्यासक्रम क्या हो इस विषय के विचारों में ही फँस जाते हैं। मुख्य प्रश्न क्या पढाया जाय इसका नहीं है, पर सवाल है कैसे पढाया जाय और किनके द्वारा। धर्मनीति के सिद्धान्त केवल पाठ देने से नहीं पढाये जाते। वहाँ तो उनका आचरण शिक्षकों में देखना पडता है। शालाओं को घरों के बाहर नहीं रखना चाहिये, अपितु घरों में ही शालाए लानी चाहिये। अभ्यासक्रम एक न रखकर प्रतिछात्र उसका विचार करना पडेगा। प्रत्येक छात्र की शक्तियों का विकास कैसे हो, इसकी चिंता करनी पडेगी। यह काम अधकचरे, केवल दूसरा काम नहीं मिलता इसीलिए शिक्षा का काम करनेवाले स्त्री-पुरुषों द्वारा नहीं हो सकता। जिन्हें शिक्षा के प्रति अत करण से रुचि है, ऐसे ही चारित्र्यशील सद्गुणी शिक्षकों द्वारा यह कार्य हो सकता है। इसलिए शिक्षक ऐसे ही रखने पडेंगे। ये बातें होगी तो ही समाज के पैरों में ताकत बढेगी और आने वाली जिम्मेदारियाँ समाज उठा सकेगा।

●

"आचार्य वह जो अपने आचार से हमें सदाचारी बनावे।
"सच्चा व्यक्तित्व अपने को शून्यवत् बनाने में है।
"जीवन का रहस्य निष्काम सेवा है।
"सबसे ऊँचा आदर्श वह है कि हम वीतराग बनें।
"अतर्बाह्य नियमों का निश्चय ऋषि-मुनियों ने प्राय अपने अनुभव से किया है। ऋषि वह जिसने आत्मानुभव किया है।
"पुरुष वह जो अपने देह का राजा बनता है।
"सौन्दर्य आतरिक वस्तु होने से उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता।" —मो० क० गाधी

रामायण काल में स्त्री शिक्षा

डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास

रामायण के प्रमुख स्त्री-पात्रो की समीक्षा से यह स्पष्ट है कि विवाह से पूर्व उन्हें अपने घरो में समुचित शिक्षा मिल चुकी होगी। क्योकि उन्हें सभी धार्मिक कृत्यो में अकेले या पति के साथ सम्मिलित होना पडता था, अत उन्हें विवाह से पहले ही वैदिक और स्मार्त क्रिया-कल्पो की तथा उनमें प्रयुक्त होने वाले मत्रो की शिक्षा दे दी जाती थी। राम के यौवराज्याभिषेक के दिन कौशल्या अग्नि मे मन्त्रो-सहित आहुति दे रही थी। सीता को सन्ध्योपासन में तत्पर बताया गया है जबकि तारा मत्रो की जानकार (मन्त्रविद्) थी।

कर्मकाण्ड की शिक्षा पाने के अतिरिक्त कन्याए शास्त्रो, स्मृतियो और पुराणो का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करती थी। यह ज्ञान उन्हें अपने माता-पिता, ब्राह्मण अभ्यागतो तथा ऋषि-मुनियो से मिलता था। इस प्रकार से प्राप्त होने वाली उनकी शिक्षा सर्वांगीण होती थी। सीता अपने पिता के घर में ऋत्विजो, ब्राह्मणो, ज्योतिषियो और विद्वानो के सम्पर्क में आने के कारण पारम्परिक ज्ञान की अनेक शाखाओ मे पारगत थी। अपने समय के पौराणिक ज्ञान में वह विचक्षण थी। कैकेयी और तारा ने भी शास्त्र-ज्ञान का विशद परिचय दिया है।

कन्याओ को व्यावहारिक और नैतिक शिक्षा भी दी जाती थी। पत्नी-विषयक कर्त्तव्यो का उन्हें सुचारु रूप से बोध कराया जाता था। सीता को, जैसा कि उन्होने राम के साथ वन चलने का आग्रह करते समय कहा था, अपने माता-पिता से पत्नी के कर्त्तव्यो की समुचित शिक्षा मिल चुकी थी। उन्होने वही सदाचार और सयम का अभ्यास कर लिया था तथा सुख-दुःख को समान समझकर हर परिस्थिति में प्रसन्न रहने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। राजकुमारियो को राजधर्म की भी शिक्षा दी जाती थी, जिससे वे अपने राजकीय पतियो की सच्ची सहयोगिनी बन सकें। युवराज-पत्नी होने के नाते सीता राजधर्म में परिनिष्ठित थी (अभिज्ञा राजधर्माणाम्)। कई कन्याओ को सगीत-नृत्य आदि ललित कलाओ की भी शिक्षा दी जाती थी। रावण के अन्तःपुर की रमणिया वाद्य-यत्रो के प्रयोग में प्रवीण थी।

देवासुर-सग्राम में कैकेयी का अपने पति के साथ जाना यह सिद्ध करता है कि लडकिया सैनिक शिक्षा से वचित नही रखी जाती थी। घोर युद्ध में अस्त्र-शस्त्रो से जब महाराज का शरीर जर्जर हो गया और उनकी चेतना लुप्त हो गई, तब कैकेयी ने युद्ध-भूमि से दूर ले जाकर पति के प्राण बचाये थे। इससे सूचित होता है कि वह रथ-सचालन तथा प्राथमिक चिकित्सा से अवगत थी। शरीर से बलिष्ठ स्त्रियो का उन दिनो अभाव नही था। दशरथ के अश्वमेघ-यज्ञ में अश्व की बलि चढाने का काम रानी कौशल्या के सुपुर्द था, उन्होने तलवार के तीन वार करके घोडे का शिरोच्छेदन किया था। सचमुच वह एक शक्ति-सम्पन्न वीर क्षत्राणी रही होगी। लका में स्त्रियो से सशस्त्र पहरेदारो का काम लिया जाता था। सीता की राक्षसी पहरेदारिनें शस्त्रधारिणी महिला सैनिक थी।

कन्याओ के लिए विवाह अनिवार्य होने के कारण उनमें से अधिकाश वयस्क होते ही ब्याह दी जाती थी और 'सद्योवधू' कहलाती थी। शेष अल्पसख्यक लडकियाँ कौमार्य का पालन करती हुई अपना अध्ययन जारी रखती थी और 'ब्रह्मवादिनी' की सज्ञा पाती थी। सद्योवधुओ को प्रार्थना और यज्ञादि के लिए आवश्यक वैदिक मन्त्रो की शिक्षा दी जाती थी, जैसा कि कौशल्या, तारा और सीता के उदाहरण में पाया जाता है। ब्रह्मवादिनी कन्याए आजन्म अविवाहिता रहती और स्वाध्याय, यज्ञ और तपस्या में सलग्न रहती। स्वयप्रभा और वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी महिलाए थी।

प्रश्न होता है कि क्या उस युग में पुरुषो की तरह स्त्रिया भी आश्रमवासिनी बनकर शिक्षा प्राप्त किया करती थी। रामायण के अनुसार उस समय देश मे ऐसे कई आश्रम स्थापित थे, जहा सुशिक्षित तपस्विनिया धर्म-चर्चा और कर्मकाण्ड में निरत रहती थी। मेरुसावर्णि ऋषि की पुत्री स्वयप्रभा ऋक्षविल नामक गिर-दुर्ग के निकट अपने पिता के आश्रम मे रहती थी। स्वयप्रभा की एक प्रिय सखी भी थी—नृत्य-गीत-विशारदा हेमा। मय नामक दानव उस पर आसक्त हो गया था। उसकी मृत्यु के बाद हेमा को उसके द्वारा निर्मित ऋक्षविल का दुर्ग और प्रासाद मिल गया, जिसका प्रबन्ध हेमा की ओर से स्वयप्रभा करती थी। सीतान्वेषण करते समय हनुमान और उसके साथी वानरो का इस तेजस्विनी तापसी से परिचय हुआ था। स्वयप्रभा अब वृद्धा हो चली थी, फिर भी अनिन्दितलोचना, मनोहरनेत्रा थी। चीर और काली मृगछाला पहने वह सर्वज्ञा, नियताहारा, 'सर्वभूतहिते रता' तपस्विनी सदा धर्माचरण मे व्यस्त रहती थी, कोई और कर्त्तव्य-कर्म उसके लिए शेष नही रह गया था। मार्ग से भटके हुए वानरो का उसने स्नेहपूर्वक आतिथ्य किया था। हेमा भी नृत्य और गीत में प्रवीण होने के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी सुशिक्षित रही होगी और यह सर्वथा सम्भव जान पडता है कि मेरुसावर्णि के आश्रम में वयस्क अविवाहित कन्याओ को सामान्य और कला-विषयक शिक्षा दी जाती थी।

स्वयप्रभा से ही मिलता-जुलता उदाहरण वेदवती का था, जिसकी कथा उत्तरकाण्ड के १७वें सर्ग में वर्णित है। वेदवती के पिता ब्रह्मर्षि कुशध्वज थे। वह वेदाभ्यास (वेदो के स्वाध्याय और पाठ) में सदा सलग्न रहते थे। इसलिए उन्होंने अपनी पुत्री का नाम वेदवती रखा। वेदवती साक्षात् वाङ्मयी थी—वाणी की साकार प्रतिमा, उसके समस्त गुणो से विभूषित। पिता के अवसान के बाद वेदवती मिथिला राज्य में हिमालय के निकटस्थ एक आश्रम में ब्रह्मचारिणी का अनुशासनपूर्ण एव तपोमय जीवन बिताने लगी। कृष्ण मृगचर्म और जटाओ से युक्त वह ऋषियो की ही भाति सत्कार्य में लगी रहती थी (आर्षेण विधिना युक्ता)। इस विवरण से ज्ञात होता है कि राजकुमारी वेदवती को, अपनी पारिवारिक परम्पराओ के अनुरूप, एक आश्रम में वेदो और कर्मकाण्ड की उच्च शिक्षा मिली थी और बाद में उसे ऋषि-तुल्य पद प्राप्त हो गया।

अहिल्या भी आरम्भ में गौतम ऋषि के आश्रम में, एक धरोहर के रूप में, रखी गई थी (न्यासभूता न्यस्ता)। वर्षो बाद, अनुशासित और प्रशिक्षित किये जाने के पश्चात्, उसे उसके अभिभावको को लौटा दिया गया (निर्यातिता)। गौतम के चरित्र-बल तथा उनकी तप सिद्धि से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उनको अहिल्या 'पत्नी-रूप' में स्पर्श किये जाने के लिए भेंट कर दी। हो सकता है, गौतम के आश्रम में कन्याओ को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था रही हो। वहा दूर-दूर से माता-पिता अपनी पुत्रियो को वर्षो तक आश्रमवासिनी बना कर रखते थे और ऐसी कन्याओ का कभी-कभी उनके गुरुओ से विवाह भी कर दिया जाता था।

जैसा कि कबन्ध ने राम-लक्ष्मण को बताया था, पम्पा के निकट मतगाश्रम में शबर जाति की एक दीर्घजीवी तपस्विनी रहती थी, जिसने आश्रम के गुरुओ की प्रगाढ सेवा की थी और अब परलोक जाने से पहले राम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। वह एक वृद्धा, चारुभाषिणी, धर्मपरायण महिला थी। जाति से वर्ण-बाह्य

होने पर भी वह 'विज्ञाने नित्यमबहिष्कृता'—विज्ञान में बहिष्कृत नही थी, अर्थात् उसे परमात्मा के तत्त्व का पूर्ण ज्ञान था, पुरुषो की तरह उसके लिए भी, बिना किसी भेद-भाव के, समस्त ज्ञान के द्वार खुले थे। आश्रम के मतग महर्षि इहलोक से सभी चल बसे थे, जब ११-१२ वर्ष पूर्व राम चित्रकूट पर थे। उनकी मृत्यु के बाद आश्रम की दशा बिगड गई और उसमें अब अकेली शबरी रहती थी। राम ने उससे पूछा था कि तुमने अपने गुरुजनो की जो सेवा की है, वह क्या पूर्ण रूप से सफल हो गई है। राम ने कबन्ध के मुख से उन महात्माओ का प्रभाव सुन रखा था और अब उन्होने उस प्रभाव को प्रत्यक्ष देखने की जिज्ञासा प्रकट की। शबरी ने उन्हें मतगाश्रम के वे सभी दर्शनीय स्थान दिखाये, जिनसे उन दिवगत महर्षियो की स्मृति अब तक सजीव रूप से जुडी हुई थी—मेघ की घटा के समान सघन एव पक्षि-सकुल मतग-वन, प्रत्यक्-स्थली वेदी जहा वे (वृद्धावस्था के कारण) अपने कापते हुए हाथो में देवताओ को पुष्पो की भेंट चढाया करते थे, वह स्थान जहा उन्होने गायत्री-मन्त्र के जप से परिपूत अपने देह-रूपी पिंजर को मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्नि में होम दिया था, वृक्षो पर सूखने के लिए डाले गए उनके वल्कल-वस्त्र तथा उनके द्वारा निर्मित पुष्पो की मालाए। जटिला (जो कि सम्भवत शबरी का निजी नाम था) अब पूर्ण-मनोरथ हो गई थी—उसे राम के चिराभिलषित दर्शन हो चुके थे, उन्हें वह आश्रम के प्रभाव और महत्त्व से भी अवगत करा चुकी थी। अतएव अब उसने चीर और कृष्णाजिन के आश्रम-वेश में सज्जित हो, राम की आज्ञा लेकर, अपने आपको अग्नि में होम दिया। चित्त को एकाग्र कर वह सिद्धा सिद्धसम्मता तापसी उसी पुण्यशाली लोक को प्राप्त हुई जहा उसके गुरु—वे पुण्यात्मा महर्षि—पहले ही पहुच चुके थे।

सीता की शिक्षा-दीक्षा

इस प्रसग में हमें उस सामग्री का भी अध्ययन करना चाहिए, जो वाल्मीकि ने सीता की शिक्षा-दीक्षा के विषय में प्रस्तुत की है। सीता की शिक्षा-दीक्षा से तात्पर्य केवल यह नही है कि उन्होने किन-किन ग्रन्थो का अध्ययन किया अथवा किन-किन पाठशालाओ में शिक्षा पाई। वस्तुत शिक्षा-दीक्षा के अन्तर्गत उन सभी कारणो और परिस्थितियो का समावेश होता है, जो किसी व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होते है।

सीता राम से आयु में ७ वर्ष छोटी थी। विवाह के बाद सीता १२ वर्ष तक राम के साहचर्य में अयोध्या सुखपूर्वक रही और १३वें वर्ष में (जब राम ३० वर्ष के थे और वह २३ वर्ष की थी) अपने पति के साथ वन गई। चौदह वर्ष के वनवास-काल के आरम्भिक १२-१३ वर्ष राम और सीता ने दण्डकारण्य के आश्रमो में व्यतीत किये। लगभग ३५ वर्ष की आयु में सीता का रावण ने अपहरण किया और एक वर्ष तक उन्हें लका में वन्दी बनाकर रखा। उद्धार के पश्चात् सीता अयोध्या लौटी और ३६वें वर्ष में राजरानी बनी, किन्तु एक ही वर्ष के भीतर उनका परित्याग कर दिया गया। इसी समय उनके दोनो पुत्रो का वाल्मीकि के आश्रम में जन्म हुआ। यही उन्होने १६ वर्ष विताये। वाल्मीकि के शिष्यो के रूप में जब लव और कुश राम की कीर्त्ति का प्रसार कर रहे थे, तब सीता को अपने जीवन के ५४वें वर्ष में, अयोध्या के दरबार में उपस्थित होने का निमन्त्रण मिला। सम्भव था, राज-महिषी के रूप में उनकी पुन प्रतिष्ठा हो जाती, किन्तु मानसिक यातनाओ से उनका हृदय विदीर्ण हो चुका था। जन-समाज में शुद्धता का प्रमाण मागे जाने पर सीता का पति-निर्भर हृदय इस ठेस को सहन न कर सका और वह चल बसी।

सीता के उपर्युक्त सक्षिप्त जीवन-परिचय से ज्ञात होता है कि रामायण में सीता का मुख्यत विवाहोत्तर-कालीन जीवन ही चित्रित है। इस काल में उनकी शिक्षा-दीक्षा अशत उनके साधारण पति द्वारा और अशत उनके दीर्घ निर्वासनो द्वारा प्रभावित हुई। फिर भी पिता के घर उनका बाल्य-काल शिक्षा की दृष्टि से व्यर्थ नही गया

होगा। अवश्य ही उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया गया होगा। साक्षर तो वह निस्सन्देह थी। लंका में हनुमान द्वारा लाई गई अंगूठी पर अंकित राम-नाम को वह पढ़ और पहचान लेती है। साथ ही, उन्होंने कोई पद्यमयी नीति-कथा भी पढ़ी होगी और उसके बहुत-से अंश कण्ठस्थ भी किये होंगे। इसका प्रमाण हमें तब मिलता है, जब लंका-विजय के बाद हनुमान सीता की राक्षसी पहरेदारिनों को मार डालने का प्रस्ताव करते हैं और सीता उक्त नीति-कथा के दो श्लोकों को स्मृति से उद्धृत कर हनुमान को ऐसा करने से रोक देती हैं।

सीता को अशोकवाटिका में सम्बोधित करने से पहले हनुमान ने जो भाषा-सम्बन्धी सोच-विचार किया उससे विदित होता है कि सीता संस्कृत के दो रूपों—('मानुषी' और 'द्विजाति')—से सुपरिचित रही होंगी, किन्तु 'वानर-संस्कृत' (संस्कृत के अपभ्रंश दक्षिणी रूप) से सीता अपरिचित या अल्प-परिचित ही रही होंगी, अन्यथा हनुमान उन्हें अपनी मातृभाषा में ही सम्बोधित करते।

सीता के कौमार्य-काल में एक शान्तिपरायण भिक्षुणी ने आकर उनकी माता के सामने सीता के भावी वनवास की बात कही थी—

कन्यया च पितुर्गेहे वनवासः श्रुतो मया।
भिक्षुण्याः शमवृत्ताया मम मातुरिहाग्रतः ॥ २-२९-१३

डा० सरकार के मतानुसार यहां 'वनवास' का अर्थ 'बीहड़ जंगलों के कष्ट' नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि राम-सीता के वनवास का अधिकांश समय भिन्न-भिन्न आश्रमों में सुखपूर्वक बीता था। वस्तुतः यहां पर एक दीर्घ-दर्शिनी और बाल-मनोविज्ञान में प्रवीण तपस्विनी द्वारा सीता की आन्तरिक प्रकृति, रुचि और अध्ययन के क्षेत्र का—उनके प्रकृष्ट प्रकृति-प्रेम और आश्रम-जीवन के प्रति प्रगाढ़ अनुराग का—यथोचित अनुमान लगाया गया है। इस अनुमान की पुष्टि रामायण के अनेक स्थलों से होती है, विशेषकर जहां सीता राम से वन साथ चलने का आग्रह करती हैं। अपने भावी विकास के बारे में तपस्विनी के इस कथन से सीता बड़ी प्रभावित हुई होंगी, तभी तो १२-१३ वर्ष के राजकीय जीवन के बाद भी सीता बड़े उत्साह से उसका राम से उल्लेख करती हैं।

अपने पीहर में सीता को धार्मिक कृत्यों के सम्पादन की शिक्षा मिल चुकी होगी। विवाहोपरान्त ऐसे सभी कार्यों में वह राम को सक्रिय सहयोग देती थीं। अपने यौवराज्याभिषेक से पहले राम ने सपत्नीक नारायण के मन्दिर में जाकर पूजन और हवन किया था। राम के साथ हुए वार्त्तालापों में सीता ने प्रचुर व्यावहारिक ज्ञान और बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की है। वन में राम से देश-धर्म का पालन कराने के लिए सीता ने इन्द्र और तपस्वी का पौराणिक आख्यान बताया था तथा लंका में हनुमान को राक्षसियों के वध से रोकने के लिए व्याघ्र और रीछ की पौराणिक कथा सुनाई थी। यह सब उनकी पैतृक शिक्षा-दीक्षा का सूचक है।

अपने पातिव्रत्य-धर्म की पुष्टि में सीता ने सावित्री, रोहिणी, दमयन्ती, शची, अरुन्धती, लोपामुद्रा, सुकन्या, दमयन्ती और केशिनी जैसी पतिपरायण स्त्रियों का बार-बार उल्लेख किया है, जिससे पता चलता है कि बाल्य-काल में सीता को इन साध्वियों के पवित्र आख्यानों का श्रवण और मनन कराया गया होगा तथा इनके आदर्शों को अपने जीवन का लक्ष्य बनाने की प्रेरणा दी गई होगी। इसके अतिरिक्त सीता को यशस्वी ब्राह्मणों के मुख से यह श्रुति-ज्ञान भी प्राप्त हो चुका था कि परलोक में भी पत्नी का अपने पति से ही संगम होता है। विवाह से पूर्व माता से और विवाह के बाद सास से सीता को पत्नी-कर्त्तव्य-विषयक शिक्षा मिली थी।

इस वैवाहिक शिक्षा से सीता के स्त्रीत्व का विकास और परिष्कार हुआ। बारह वर्ष के पति-सहवास के बाद सीता हमारे सम्मुख एक तेजस्वी पत्नी, एक सच्ची 'सहधर्मचारिणी' के रूप में आती हैं, न कि पति की

गुडिया या दासी के रूप में। राम के वन-गमन के समय सीता अपने भावी कार्यक्रम का स्वयमेव निश्चय कर लेती हैं, सास या पति से परामर्श करने की उन्हें कोई अपेक्षा नही थी। जब राम ने उनसे यह प्रस्ताव किया कि तुम अयोध्या में ही भरत की आज्ञा में रहो, तब सीता ने उन्हें तीखा उलाहना दिया। पारिवारिक विषयो में ही नही, सार्वजनिक कार्यो में भी सीता ने राम के कार्यो की आलोचना की है। जब राम ने दण्डकारण्य में समस्त राक्षसो का सहार करने की प्रतिज्ञा की, तब सीता ने उन्हें स्मरण दिलाया कि आपको मुनि-धर्म का पालन करते हुए अकारण हिंसा से दूर रहना चाहिए। इन उदाहरणो का यह अर्थ नही है कि सीता केवल छिद्रान्वेषण करने वाली स्त्री थी। अपने पति के अलौकिक गुणो का वह सम्मान करती थी। जब राम ने शूर्पणखा के विवाह-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और सीता की रक्षार्थ खर की सेना को पराक्रमपूर्वक परास्त कर दिया, तब सीता का गुण-निर्भर हृदय अपने एकनिष्ठ और शूरवीर पति के प्रति प्रभूत आदर और अनुराग से परिपूर्ण हो गया था। मिथ्या-भाषण और परस्त्री-ससर्ग जैसे दोषो से मुक्त रहने के उपलक्ष्य में सीता ने राम का अभिनन्दन किया था। लका में हनुमान के समक्ष सीता ने अपने पति की उच्च शिक्षा का गर्व से उल्लेख किया था।

प्रतीत होता है कि विवाह के बाद अयोध्या में सीता राजप्रासादो में एकान्त-वास ही नही करती थी, अपितु अपनी सास की तरह ऋषि-मुनियो और वैदिक शिक्षालयो के सम्पर्क में भी आती रहती थी। राम-लक्ष्मण के आचार्य सुयज्ञ वसिष्ठ की पत्नी सीता की सखी थी। वन जाने से पहले सीता ने अपनी सखी को प्रचुर धन का उपहार दिया था। राम के साहचर्य में सीता को अपनी स्वाभाविक अभिरुचि के अनुसार वनवास विताने का अवसर मिला। नगर और राजदरबार के शिष्टाचारो तथा गृहिणी के बन्धनो और चिन्ताओ से दूर रह कर सीता ने प्रकृति की गोद में एक उन्मुक्त विहग की भाति केलि-क्रीडा और स्वच्छन्द विचरण किया। आश्रम-मण्डलो के सुभग और पावन वायु-मण्डल में तथा उनके निष्पाप निवासियो—प्रौढा मुनि-पत्नियो एव मुग्धा बालिकाओ—की सन्निधि में सीता की वनवास की मनोकामना पूर्णतया सन्तुष्ट हुई। प्रकृति-प्रेम और नूतन सस्कारो द्वारा प्रभावित सीता के नारीत्व का यह एक विलक्षण और अभिनव परिष्कार था।

बारह वर्षो के आश्रम-वास के पश्चात् ३४ वर्ष की आयु तक सीता पडिता बन चुकी थी, यद्यपि रावण की दृष्टि में वह पडितमानिनी ही नही, अपितु मूढा भी थी, क्योकि उन्होने राक्षसराज की राजमहिषी बनने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। हनुमान के साथ वार्त्तालाप में सीता ने स्त्रियो के गर्भाशय की शल्य-क्रिया किये जाने की ओर सकेत किया था (५।२८।६)। अवश्य ही हनुमान को सीता एक सुशिक्षित पडित महिला प्रतीत हुई होगी। इसीलिए उन्हें देखते ही हनुमान के मन में शिक्षा-सम्बन्धी उपमाओ का स्रोत फूट पडा—सीता उन्हें धूमिल स्मृति के समान, अभ्यास न करने के कारण शिथिल पडी विद्या के समान, व्याकरण के नियमो से रहित दुर्बोध वाक्यार्थ के समान तथा प्रतिपदा को पाठ करने वाले की क्षीण हुई विद्या के समान प्रतीत हुई। सीता स्वय एक पडिता के अनुरूप भाषा का प्रयोग करती हैं—"जिस प्रकार वेद-विद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मण की सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं केवल धरापति राम की धर्मपत्नी हू", "जिस प्रकार ब्राह्मण शूद्र को मन्त्रज्ञान नही दे सकता, वैसे ही मैं भी रावण को अपना अनुराग नही दे सकती।" यही नही, सीता उच्च शिक्षा की बारीकियो से सुपरिचित रही होंगी, तभी वह हनुमान द्वारा किये गए अपने पति की शिक्षा और उनके अगो के शास्त्रीय वर्णन को ठीक तरह से आक सकी। जब हनुमान ने आकर सीता को लका-विजय और रावण-वध का समाचार सुनाया, तब सीता ने उनकी विशेषताओ की तथा अष्टगुणभूषित आदर्श भाषण की जो प्रशसा की, उससे ज्ञात होता है कि ३५ वर्ष की अवस्था में सीता एक सामान्य विद्यार्थिनी के स्तर से बहुत ऊपर उठ चुकी थी और उन्हें अपने समकालीन आचार्यो के विशिष्ट ज्ञान का सम्यक् परिज्ञान हो गया था।

एक वर्ष के दु खद वियोग के बाद मीता अपने विजयी पति के माथ अयोध्या लौटी और पुन वधू-रूप में प्रतिष्ठित हुई। ३६ वर्ष की आयु में वह पति-प्रेम मे विभूषित हो राजरानी के पद पर अभिषिक्त हुई तथा प्रेम, यौवन, वैभव और विवाहित सौख्यो का अनुभव करने लगीं। किन्तु यह सुखमय स्थिति अल्प समय तक ही रही। राज्याभिषेक का समारोह समाप्त हुआ और वह गर्भवती बनी। दोहद-अभिलाषा के रूप में उनके मन में गगातट-वासी तपोनिष्ठ ऋषियो के पवित्र आश्रमों को देखने और उनमें रात-भर निवास करने की इच्छा जाग्रत हुई। पति की अनुमति से वह लक्ष्मण के साथ गगा-तट पर गई, जहा उन्हें मालूम हुआ कि उनका सदा के लिए परित्याग कर दिया गया है। लक्ष्मण ने उनको निकटवर्ती वाल्मीकि-आश्रम में अपना निर्वासन-काल बिताने का परामर्श दिया। लक्ष्मण के चले जाने पर आश्रम के कुछ मुनि-बालको ने मीता को रोते देख कर वाल्मीकि को सूचना पहुचाई। वाल्मीकि सीता को आश्वस्त कर अपने आश्रम में ले गए और उन्हें समीप ही तप करने वाली तापसियो को सौंप कर उन्होंने स्नेहपूर्वक उनका पालन करने का आदेश दिया।

इस प्रकार दो-तीन उथल-पुथल-भरे वर्षों के बाद मीता को चिरअभिलषित आश्रम-जीवन व्यतीत करने का पुन अवसर मिला। पर इस बार पति का प्रेम कहा था और उसे पुन पाने की आशा भी कहा थी! वाल्मीकि-आश्रम में सेवा, सहानुभूति और समादर की उनके लिए कमी नही थी। लगभग १६ वर्षो तक सीता इसी आश्रम में बनी रही। इस दीर्घ काल में उनका जीवन किस प्रकार बीता, इस पर रामायण में प्रकाश नही डाला गया है। अपने पुत्रो का लालन-पालन करने में, व्रत-उपवासों के अनुष्ठान में तथा पूर्व पति-प्रेम एव सम्मान की स्मृति में विषाद करते रहने में उनका अधिकाश समय चला जाता होगा। पुत्र-प्रसव के समय आश्रम की वृद्धा स्त्रियो ने राम के अग का सकीर्तन करके मीता को प्रसन्न करने की चेष्टा की थी। इस घटना के १२ वर्ष बाद जब एक बार शत्रुघ्न वाल्मीकि आश्रम में आये, तब वह लव-कुश के मुख से रामचरित का शास्त्रीय गायन सुनकर आत्म-विभोर हो गए थे। इस रामचरित में श्रीराम के पूर्व-चरित्र काव्यबद्ध किये गए थे। यह बहुत सम्भव जान पडता है कि मीता के दु खान्त जीवन ने ही वाल्मीकि को रामायण की रचना करने की प्रेरणा दी और मीता ने उनको राम के व्यक्तिगत जीवन और चरित्र की सभी मार्मिक बातें बताई। इस प्रकार अपने इस अन्तिम दीर्घ आश्रम-प्रवास में सीता एक अत्यन्त उदात्त एव मर्मस्पर्शी महाकाव्य की रचना में वाल्मीकि की सहयोगिनी बनी और अपने पति की स्मृति को, उनके लोकोत्तर चरित्र को, चिरस्थायी बनाने का हार्दिक सन्तोष पा सकी। वाल्मीकि-रामायण के अपूर्व करुण-रस का सम्भवत यही रहस्य है।

अपने जीवन के इस अन्तिम चरण में मीता को आश्रमवासियो के बीच अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। उन्हें ऋषि-मुनियो का कितना समर्थन प्राप्त था, इसका प्रमाण राम के अश्वमेध-समारोह से मिलता है, जहा वाल्मीकि और उनके आश्रम के आचार्यो और शिष्यो के साथ मीता भी उपस्थित थी। जिस परिषद् में वह अपनी पवित्रता की शपथ लेने आई, उसमें प्रख्यात ऋषि-मुनि एव विद्वान् मौजूद थे। ब्रह्म का अनुगमन करने वाली श्रुति की भाति जब मीता वाल्मीकि के पीछे-पीछे सभा-भवन में प्रविष्ट हुई, तब उन्हें देख कर परिषद् ने महान् जय-घोष किया। वाल्मीकि ने राम को तथा समस्त परिषद् को सम्बोधित करते हुए बडे भावोद्रेक के साथ सीता के प्रति किये गए अन्याय को दर्शाया, उन्हें पुन महिषी-पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव किया तथा सीता के शपथ ग्रहण करने की विधि पर प्रकाश डाला। समस्त उपस्थित मुनि-समुदाय ने इसका हार्दिक अनुमोदन किया। अपनी इहलीला समाप्त करने से पूर्व सीता ने भली-भाति जान लिया कि पति और आश्रमो की दृष्टि में वह निष्पाप हैं, और इन दो के प्रति अनन्य अनुराग ही तो उनके जीवन का अथ और इति था। सीता ने सफल-काम होकर इस लोक से प्रयाण किया।

कांटे कम से कम मत बोओ

यदि फूल नही वो सकते तो काटे कम से कम मत वोओ

है अगम चेतना की घाटी, कमजोर वडा मानव का मन,
ममता की शीतल छाया मे होता कटुता का स्वय शमन,
बाधाये घुल घुल वह जाती, खुल खुल जाते है मुदे नयन,
होकर निर्मलता से सुरभित बहता प्राणो का क्षुब्ध पवन,
सकट मे यदि मुसका न सको भय से कातर हो मत रोओ,
यदि फूल नही वो सकते तो काटे कम से कम मत बोओ।

हर सपने पर विश्वास करो, लो लगा चादनी का चन्दन,
मत याद करो, मत सोचो, ज्वाला मे कैसे बीता जीवन,
इस दुनिया की है रीति यही, सहता है तन वहता है मन,
सुख की अभिमानी मदिरा में जो जाग सके वह है चेतन,
तुम इसमें जाग नही सकते, तो सेज विछाकर मत सोओ,
यदि फूल नही वो सकते तो काटे कम से कम मत वोओ।

पग पग पर शोर मचाने से मनमें सकल्प नही जमता,
अनसुना अचीन्हा करने से सकट का वेग नही घटता,
सशय के किसी कुहासे में विश्वास नही पलभर रमता,
बादल के घेरे मे भी तो जयघोप न मारुत का थमता,
यदि विश्वासो पर वढ न सको, सासो के मुरदे मत ढोओ।
यदि फूल नही वो सकते तो काटे कम से कम मत वोओ।

—रामेश्वर शुक्ल 'अचल'

कालिदास कालीन नारी का आदर्श

सूर्य नारायण व्यास

महाकवि कालिदास भारतीय आर्य-सभ्यता के चरमोत्कर्ष-काल का प्रतिनिधि है। उसके पुरुष और नारी-पात्र अत्यत उदात्त, एव आदर्शशील-मर्यादा के उदाहरण है।

कवि की कोमलागी-कविता वाला अपने हृदय-पटल पर लावण्यलतिका, अनिन्द्य-सुदरी-शकुन्तला, सुदक्षिणा, इदुमति, रति, यक्षिणी, उर्वशी, मालविका आदि स्वीय-शोभा-भार-विनम्र ललनाओ का उदात्त-चरित्र-चित्र अकित कर उन पर आदर्श का अवर परिधान करा शील और मर्यादा की मान-भूमि पर इन्हे उपस्थित कर देती है। काव्य-रूप में भी उनके दर्शन कर समादर से हमारा मस्तक उनके समक्ष अवनत हो जाता है।

कवि की ये काव्य-लोक की सुदरिया अपने भारतीय-आदर्श एव मर्यादा से च्युत नही होती, यही उनकी विशेषता है। यद्यपि वे मृणाल-मृदुल है, विविध शोभा-शृङ्गार से सुसज्जित है और आधुनिकतम 'पेरिस' की शृङ्गार-भारावनत कृत्रिम-सौंदर्य-साधिकाएँ उनके सहज-सुलभ सौंदर्य-शृङ्गार के समक्ष नगण्य लगती है तथापि दो सहस्र वर्ष पूर्व की ये कालिदास की कुल-कामिनिया हमारे हृदय पर अपनी विशेप छाप छोडे विना नही रहती।

यक्ष की अनिन्द्य-सुदरी प्रिया भारत के तत्कालीन पेरिस अलका में जिसके भव्य-भवन सात मजिल से कम नही थे, साज सज्जा में सर्वोन्नत थे, उनके द्वारो पर माणिक-मोतियो की वन्दनवार झूलती थी, स्फटिक की दीप्तिमय फर्श जडी रहती थी, सगीत की स्वर-लहरी उनके गवाक्षो से वायु में विचरित होती थी, सुगधित सुरभि से वातावरण पुनीत होता रहता था, शुक-सारिकाएँ, हस, कपोत, मोर मनोरजन कर मन को मुग्ध किया करते थे, जब अपने केश-कलाओ में लवेण्डरो को लजाने वाली सुरक्षित-धूप भर कर नागिन सी बल खाते हुए कुतलो को हवा में सुखाया करती थी और मन-मिलिन्दो को अरमानो के साथ समेट कर बाँध लिया करती थी, तब कौन कह सकता है कि वह किसी आधुनिक सुदरी से कम हो सकती थी ? इसी तरह अपने सुदर-गौर मृदुल-चरणो पर सुदरता के साथ सजा कर महावर का उपयोग करती थी, उनके अधरो पर पश्चिम के विपैले लिपस्टिक नही, अधर-राग से अरुण राग-रग का अनुरजन होता था। पर वल्कल-वसना भरण-भूपित-वालाएँ अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से ही अपनी विशिष्ट मोहिनी रखती थी। चीनाशुक और कौशेय धारण करके तितलियो को भी लज्जित कर सकती थी। कालिदास ने ललनाओ के अलको से ले कर चरणो तक के शृगाराभरणो का जैसा सुदर एव यथार्थ-वर्णन प्रस्तुत किया है, वह विलासिता में विशेषता रखने वाले इस युग के वैभव को विस्मय में डाले विना नही रहता। इस पर भी वह वासना की विकृत-विपैली वायु से दूर रखता है और 'असक्त सुखमन्वभूत्'-आसक्ति-रहित सुखानुभव का आदर्श प्रस्तुत करता है।

कालिदास की साहित्य-सृष्टि में प्रमुख-महिला वर्ग की सुदक्षिणा, इन्दुमति, रति, दमयती, उर्वशी, शकुन्तला, मालविका, यक्षिणी, कुछ परिव्राजिकाएँ, सखी-प्रियवदा, अनसूया, ऋषि पत्निया तथा परिचारिकाएँ, महारानी आदि विशेष है। ये सस्कारवती, सुशिक्षिता, चरित्रशीला, सगीत, वाद्य, नृत्य, चित्र-कला प्रवीण, व्यवहार दक्ष,

शासन सचालन की क्षमता रखने वाली, नीति निपुण, उदारवाक्, आतिथ्य-परायणा है, भारतीय-आदर्श-मर्यादा की प्रतिनिधि नारी हैं।

कवि के काल में यह धारणा प्रभावित थी कि—'अर्थोहि कन्या परकीय एव' कन्याएँ 'पराया धन' हैं। बहुत ही कम कन्याएँ अविवाहित रहती थी। स्वय दुष्यन्त ने शकुन्तला की सहेलियो से पूछा भी था कि–'क्या तुम्हारी सखी तपस्विनी का जीवन बिता कर अविवाहित तो नही रहना चाहती ?' कवि की 'गौतमी' पात्रा एक आजन्म ब्रह्मचारिणी भी हैं ही। फिर भी उस समय लडकियो का विवाह अल्पवय में नही हो सकता था। पारस्परिक अभिरुचि को अवसर दिया जाता था, माता-पिता की अनुमति उपलब्ध की जाती थी और लडकी का चित्र भी लडके की स्वीकृति के लिए भेजा जाता था (प्रतिकृति रचनाम्य मालविका), विवाह के बाद परिवार में स्नेह एव सन्मान का स्थान प्राप्त होता था। विवाह के समय समारोह होते थे। नगर-बालाए फूल और खीलें बरसा कर अभिनदन करती थी। प्राय ब्राह्म, गाधर्व और स्वयवर द्वारा विवाह का विधान होता था। स्त्रिया व्रतोपवास भी करती थी। शकुन्तला ने सौभाग्य देव का व्रत किया था। महारानी धारिणी ने पुत्र की शुभ कामना के लिए व्रत रखा था। औशिनरी ने प्रियानुरजन व्रत किया था। बालिकाए स्वतन्त्र रह सकती थी, आश्रमो में वे युवको के साथ शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करती थी। किन्तु विवाहोपरान्त पर्दे की भी प्रथा प्रचलित थी। शकुन्तला यद्यपि दुष्यन्त के दरबार तक पहुँची थी, पर वह अवगुण्ठनवती थी। उन दिनो ऋषियो, कुलपतियो के आश्रमो में बालक-बालिकाओ की सहशिक्षा की व्यवस्था थी। वहा साधारण समाज से ले कर राजकुमार और राजकुमारियो की भी शिक्षा-दीक्षा होती थी। और स्वतत्र अरण्यो में रहने वाले आश्रमो में, जिनका सचालन आचार्यों-कुलपतियो द्वारा होता था, फिर भी वहाँ की शिक्षा केवल ज्ञान-विज्ञान-वेद-शास्त्र-कर्मकाण्ड तक ही परिमित नही थी। वहाँ राजकुमारो को शस्त्रास्त्र-सञ्चालन, शासन-कौशल की दीक्षा भी दी जाती थी। वहाँ से दीक्षिता होकर सीधी शकुन्तला दुष्यन्त की महारानी होकर रहने की क्षमता प्राप्त कर सकती थी। वहाँ सस्कार, चरित्र, जीवन के आदर्श व्यवहार का अध्ययन भी होता था। बागवानी, कृषि, गार्हस्थ्य का ज्ञान भी दिया जाता था। शकुन्तला का वृक्ष-लताओ से स्नेह, मृग-मोर आदि जीवो से वात्सल्य इसका प्रमाण है। जब दुष्यन्त से उसका गाधर्व विवाह सम्पन्न हो गया तो वह आचार्य कण्व के आने पर उनके समक्ष लज्जावश उपस्थित नही हुई थी। इसमें उसके शील और मर्यादा चरित्र निहित है। यक्ष के विषयासक्त हो जाने पर कर्तव्य-विमुखता के कारण उसे प्रिया से दूर एक वर्ष का विरह-दण्ड दिया गया था। इसी तरह दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के प्रति मोहासक्ति में एक आदर्श नरेश की नैतिकता को आघात लगता है, परन्तु वह शासक के स्थान पर पहुँचकर पुन उसे विस्मृत कर देता है और अपनी मर्यादा-कुशलता को प्रतिष्ठित कर लेता है, क्योकि कवि के पात्र विषयासक्ति से विमुख विद्या-रसिक रहे हैं (अनासक्तस्य विपर्यविधाना पार द्रश्वन)। इसी प्रकार उस समय पारस्परिक वार्तालापो में अन्य स्त्रियो की चर्चा वर्ज्य रहती थी (अनिर्वचनीय परकलत्रम्)। उस समय 'आजन्म शुद्ध' को ही महत्त्व प्राप्त होता था (सोहमाजन्म शुद्धानाम्)। इस प्रकार चरित्र, मर्यादा, शील-सस्कार का महत्त्व महाकवि कालिदास के काल में रहा है और यह भारतीय सभ्यता की आदर्श विशेषता रही है।

•

"जहा पुरुष-वर्ग असफल सिद्ध होता है, वहा स्त्री वर्ग विजय प्राप्त करता है और असत् को दूर भगाकर सत् की पुन प्रतिष्ठा करता है। जगत् में ईश्वर की इस शक्ति का प्रतीक नारी है, जिसका पावनतम और मधुरतम नाम "मा" है।" —डाक्टर ऐनी बेसेंट

शिक्षा और साहित्य

प्रभाकर माचवे

शिक्षा और साहित्य का सम्बन्ध प्राचीनकाल में क्या था, आज क्या है और आगे क्या होगा और होना चाहिए, इस विषय में विचार करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षा का आदर्श देश-काल-परिस्थिति के अनुसार बदलता रहा है। जमाने के साथ-साथ शिक्षक, शिक्षण और शिक्षार्थी का ध्येय भी बदला है। और भी कुछ है जो इन सब परिवर्तनों के बीच शाश्वत रहा है। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि शिक्षा का आदर्श बेहतर इन्सान बनाना है। जैसे खनिज द्रव्य खान से निकलते समय, कई और चीजो की मिलावट लिये हुए बाहर आता है, पर उस पर परिष्कार-सस्कार किये जाते है, आग में तप कर कुन्दन निखरता है, तराशा जाकर हीरा हीरा बनता है, बडी अग्निदीक्षा के बाद मामूली लोहा इस्पात बनता है। जन्मना मनुष्य कई पाशवी विकारो का पुलिन्दा होता है, वह अपने माता-पिता के शारीरिक और मानसिक सस्कार लेकर इस धरती पर आता है। परिवार-परिवेश, अडोस-पडोस, मुहल्ले-टोले, ग्राम-नगर-प्रान्त के सस्कार उस पर होते जाते है और इन्हीके बीच में वह शिक्षित भी होता रहता है। शिक्षा का एक औपचारिक रूप है स्कूल-कालिज, चटशाला-पाठशाला, विश्वविद्यालय आदि की नियमित शिक्षा। यह किताबी पढाई हुई। साथ ही उसकी और पढाई घर-बाहर होती रहती है वह नानी से कहानी सुनता है, वह मेले-ठेले में लोक-नाटच देखता है, लोकगीत सुनता है, दोस्तो से बहुत-सा सामान्य ज्ञान प्राप्त करता है। माली उसे बाग के बारे में, कुम्हार बर्तनो के बारे में और दूसरे कारीगर और चीजो की शिक्षा उसे केवल दृश्य रूप में देते जाते है। अगर वह गाँव में न रहा और शहर में बढा तो उस पर और तरह के सस्कार बचपन से पडने शुरू हो जाते है। वह सिनेमा के गाने गाता है, रेडियो सुनता है, अखबार की खबरे पढता है, नेताओ के व्याख्यान सुनता है। सक्षेप में, मनुष्य प्रत्येक क्षण, अपनी इन्द्रिय सवेदनाओ से कुछ-न-कुछ सीखता ही रहता है। जब तक उसकी चेतना जागृत है, उसके व्यक्तित्व का निर्माण अपने-अपने ढग से होता ही रहता है। इसमें दो तत्त्व कार्य करते है एक, उसकी अपनी इच्छा, दूसरे, उस पर परिस्थितियो के होने वाले बाह्य सस्कार। यह अन्दर और बाहर का द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। आदमी अपने-आप कुछ सीखता रहता है, कुछ बाहर की दुनिया उसे सिखाती रहती है। और फिर भी कुछ है कि वह सीख नही सकता, अनसिखा ही रह जाता है, या कि उसकी अपनी सीमाएँ है, उसके अध प्रबल आदिम विकार है कि सारी शिक्षा-दीक्षा का कवच फोडकर उसके मूलरूप में उसे ले आते है। यदि किसी जाति को बरसो तक शिक्षा न दी जाये, तो वह पुन बर्बरता की ओर लौट जाती है। इस प्रवृत्ति को जीवशास्त्र की भाषा में पुन मूल रूप की ओर लौटने की वृत्ति (atavism) कहते है।

मनुष्य जो एक जीव है, अपने-आप में अकेला है, उसमें जिज्ञासा-वृत्ति है। वह जानना चाहता है। शिक्षा का मूल यही है। वह सब कुछ जानना चाहता है। वह विष की परीक्षा भी करना चाहता है। वह निषिद्ध और विहित के लिए भी आकृष्ट होता है। यह उसके लिए बडी चुनौती और साथ ही बडी दुष्कर समस्या है। वह अपने ज्ञान के फल को चखकर ही 'पाप' नामक जाल की सृष्टि करता है, जिसमें स्वयम् ऊर्णनाभ या मकडे की तरह

फँसता जाता है। धर्मशास्त्र वही बनाता है, जब वे मुक्ति के साधन न रह कर बन्धन बन जाते हैं तो वही उन्हे जलाता है। वह धर्म और अधर्म की परिभाषाएँ बदलता जाता है। वह ज्ञान से विज्ञान की ओर बढने के भ्रम में कभी-कभी अज्ञान से और गहरे अज्ञान में बढता जाता है। इन सब बातो को ध्यान में रखकर यदि विश्व में शिक्षा के इतिहास की ओर देखें तो पता लगेगा कि सबसे पहली अकादेमियाँ या स्कूल गिर्जाघरो के साथ, मन्दिरो के पास आश्रम-गुरुकुल-विहार और मस्जिदो के सहारे मकतब हुआ करते थे। गुरु भी अधिकाश ऋषि-मुनि, सन्त-धार्मिक पुरुष, पीर और दाना, काजी और उस्ताद सूफी होते थे।

परन्तु युग बदले और शिक्षा और धर्म का जो निकट का सम्बन्ध था—'उपनिषद्' का अर्थ ही (गुरु के) निकट बैठना था, रामायण के वसिष्ठ या महाभारत के द्रोणाचार्य या भागवत के सादीपनी का जो उल्लेख आता है, योरप में तो मध्य युग में आते-आते हमारे यहाँ के ब्राह्म और क्षात्र विद्याओ के भेद की तरह से 'नाइट' (वीर) की सात विद्याएँ और 'स्कालर' की सात विद्याएँ भिन्न-भिन्न होती गई। शिक्षा का आधार और उद्देश्य केवल ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति या पारलौकिक न रह कर अधिकाधिक भौतिक बनता गया। मध्य युग में शिक्षित व्यक्ति का अर्थ था, जो राज दरबारो में बैठने लगे। बहुश्रुत, बहुपठित, बहुगुणी के अर्थ सामन्तो की मर्जी के अनुसार भिन्न थे। एक पाठी, द्विपाठी, त्रिपाठी, स्मरणशक्ति के चमत्कार दिखलाने वाले, समस्यापूर्ति करने वाले बडे लोग शिक्षित माने जाते थे। राजपुत्र और राजकन्याएँ द्यूत-अक्ष क्रीडा, धनुर्विद्या, अश्वविद्या के साथ-साथ चित्रबन्ध और 'काकु' की रचनाएँ करती। उपवन-विनोद और उद्यान-क्रीडाओ के कई वर्णन विस्तार से सस्कृत ग्रन्थो में मिलते है। परन्तु एक ओर ब्राह्मण ने जहाँ 'अर्थ' को छोडकर (या दूसरे शब्दो में केवल 'अर्थ' के लिए ही) शब्द ज्ञान, तोता-रटन्त और घोखने पर जोर दिया—जटापाठी-घनपाठी वैदिक ब्राह्मण बने—तुकाराम ने लिखा 'घात केला शब्द ज्ञानें। अर्थं लोपिली पुराणें॥', कबीरादि सन्तो ने 'जप-माला-छापा-तिलक' की निन्दा की, तुलसी ने कहा कि "दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। वेद पढइ जिमि बटु समुदाई॥"—आचार की मरुबालुराशि में विचार-स्रोत सूख गये। तब क्षत्रियो के मनोविनोद का साधन बनी साहित्य-शिक्षा, राजा-नवाब ी कवित्त-सवैये, दोहे-बरवै लिखने लगे, शायरी करने लगे। माण्डवगढ की महारानी रूपमती की फारसी कविता या जेबुन्निसा की शायरी इसी युग की निर्मिति है। शिक्षा में साहित्य निरा 'रीति-शृंगार' बन गया।

देश में जब पर-चक्र आये तब इस शिक्षा का बहुत कम उपयोग हुआ। यह शिक्षा केवल बाह्य थी। इसने हमारी नैतिक चेतना को विकसित कहाँ किया था? जब अँगरेज इस देश में एक हाथ में तराजू और वणिकोचित वाग्विलास लेकर आये, तो मेकाले ने चाहा कि इस देश में क्लर्को की फसलें जल्दी उगें। बाबू इँग्लिश का खाद डाला गया। देखते-देखते डेढ सौ बरस में शिक्षा के मान बदल गये। विलायत से लौटे हर आदमी का भाव बढने लगा। सारा शिक्षा का साँचा-ढाँचा पाश्चात्य बन गया। लेकिन पश्चिम में भी इसके बारे में सब शिक्षा-विशेषज्ञ एक राय नही थे। वहाँ दो विचारधाराओ का सघर्ष था, जो कि अब इस महायुद्ध के बाद बहुत स्पष्ट और तीखे रूप में सामने आया है—एक लोकराजवादी, दूसरा एकतन्त्र या तानाशाही। जाहिर था कि दोनो के सोचने में बडा फर्क था। लोकराज में शिक्षा का मकसद था हर व्यक्ति का विकास। उसमें की प्रस्तुत शक्तियो को प्रेम और सहार से जागृत करना। उसकी बुद्धि और चेतना को सर्वतन्त्र सब दिशाओ में खिलने, खुलकर खेलने को अव-सर प्रदान करना। मस्तिष्क, हृदय और हाथ तीनों का सन्तुलित किन्तु सहज-सर्वांगीण प्रफुल्लित होना। इससे उलटे एकतन्त्रवादी देशो ने हिंसा के तरीको की चिन्ता न करके, अपने नागरिको को एक ही विचार के, एक ही राज्ययन्त्र के पुर्जे बनाने के लिए, सब तरह से प्रयत्न किये। हिटलर का नारा था—स्त्रियो के लिए "किण्डर, किचन, चर्च!" (बच्चे, रसोईघर और गिर्जा!)। और बच्चो के लिए—"एक जनता, एक राज, एक नेता।"

परिणाम यह हुआ कि सोचने की स्वतन्त्र शक्ति उनमें स्थगित हो गई। और सारा जिज्ञासा-समाधान, ज्ञानार्जन, वाद्य का अन्तर, पर परिणाम नाजी दल के नेताओं द्वारा निर्णीत होने लगा। अन्य एकतन्त्रवादी देशों में, यथा सोवियत रूस में जहाँ मार्क्सवाद ही एकमात्र दार्शनिक विचार-पद्धति के नाते सिखाया जाता है, यह पाया गया कि छात्रों की अन्य विचारधाराओं, देशों और व्यक्तियों की जानकारी नहीं के बराबर होती है। राष्ट्राभिमान बहुत अच्छी चीज है, परन्तु उसका अतिरेक किस सीमा तक जा सकता है, इसके प्रचुर उदाहरण हमें पश्चिम में मिले हैं।

यदि इससे यह न मान लिया जाय कि शिक्षा के क्षेत्र में लोकराजवादी देशों में सब कुछ आदर्श है। अमरीका में विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता और पापाचार की ओर कैशोर्य में बढ़ती हुई प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ पढ़ने को मिलता है। तात्पर्य केवल राज्यपद्धति एकतन्त्रीय या प्रजातन्त्रीय हो जाने से शिक्षा के आदर्श में कोई बड़ा परिवर्तन घटित हो गया हो, ऐसा नहीं लगता। सुदूर पश्चिम के देशों की बात छोड़ दें तो हमें अपने देश में बड़ा ही परस्पर विरोधी दृश्य इस क्षेत्र में दिखाई देता है। इस 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' वाली स्थिति ने अराजक जैसा दृश्य समुपस्थित है। सिद्धान्ततः हम यों कहें कि चूंकि हमारे राष्ट्रमानस के नेताओं और दिशादिग्दर्शकों के मन में भावी भारत के परस्पर विरोधी नक्शे हैं, तस्वीर कुछ यों बनती है

(१) एक विचार है कि—पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति के बाद देश भारी उद्योग, यन्त्र-समृद्धि और विज्ञान के साधनों से अधिक सन्नद्ध बनेगा, अतः वैज्ञानिक शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण पर जोर दिया जाय। पालिटेक्नीक स्कूल, यन्त्र विशारदों को वजीफे मिलें, इञ्जीनियर और पैदा हों। तो, दूसरी ओर हमारे कई नेता चाहते हैं कि शिक्षा नगर केन्द्रित न होकर ग्राम केन्द्रित हो, चरखे और तकली को आधार बनाकर बुनियादी शिक्षा दी जाय। विकेन्द्रीकरण निश्चित रूप से होगा और इस कारण से खादी और हस्तोद्योगों पर बल दिया जाय।

(२) एक मत है—चूंकि भावी भारत यन्त्राश्रित होगा, अतः देश में आणविक शस्त्रास्त्रों की रिसर्च भी जरूरी है। वैज्ञानिक शिक्षा के साथ सैनिक, वायुयान आदि चालन की शिक्षा से ऐसे सैनिक-शिक्षा भी जरूरी है। दो विरोधी राष्ट्र गुटों के तनाव के बीच में हम हैं, यह कैसे भूल सकते हैं। दूसरा मत है कि राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के आदर्शों से अनुप्राणित और अनुप्रेरित देश में शस्त्रास्त्रों का निर्माण या सहार अस्त्रों की दौड़ में भाग लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः सैनिक-शिक्षा अनिवार्य न हो, इतना ही नहीं बल्कि मारक अस्त्रों की शिक्षा जीव दया, अशोक के आदर्श वाले देश में बन्द कर दी जाय। इस दूसरी बात को हास्यास्पद न समझा जाय। दुनिया में जो शपथबद्ध शान्तिवादी, क्वेकर इत्यादि हैं वे दुनिया भर के सभी देशों में एक भी सैनिक न रहे ऐसा चाहते हैं।

(३) जो बात भारी यन्त्रशास्त्र, शोषण पर आश्रित मण्डियों वाले अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र-राजनीति पर आश्रित शिक्षा के बारे में या सैनिक-शिक्षा के बारे में सही है, वही धार्मिक शिक्षा के विषय में भी सही है। इस विषय में भी देश में दो मत हैं—एक मत उन लोगों का है जो धर्म को व्यक्तिगत रुचि का विषय मानते हैं, अतः एक लौकिक (सेक्युलर) राज्य में धार्मिक शिक्षा की सार्वजनिक बाध्यता आवश्यक नहीं समझते। और सचमुच में जहाँ-जहाँ भी अनिवार्य धर्म-शिक्षा है वह बहुत कुछ नाम की ही रह गई है। मैं एक ईसाई मिशनरी कालेज में पढ़ा, जहाँ 'बाइबिल क्लास' अनिवार्य होती थी, परन्तु न पढ़ाने वाले न पढ़ने वाले इस विषय में गम्भीर थे। श्रद्धा का अभाव दोनों ओर था। मैं नहीं जानता कि मालवीयजी के हिन्दू विश्वविद्यालय में गीता-पाठ अनिवार्य है अथवा नहीं, और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में लड़कियों के लिए बुर्का आदि बाह्याचार और लड़कों के लिए खास पोशाक शायद अनिवार्य हो, किन्तु धर्म-शिक्षा की विद्या का क्या हाल है? दोनों विश्वविद्यालयों के अध्यापकों-विद्यार्थियों से मैं कई बार मिला हूँ। साम्यवाद-समाजवाद को यदि नास्तिक विचारधारा माना जाय, तो उनका जोर दोनों क्या सभी विश्वविद्यालयों के वातावरण में काफी मात्रा में है। तो फिर दूसरे मत वाले जो कुरुक्षेत्र या

तिरुपति विश्वविद्यालय, या अन्य कई गुरुकुल और भारतीय विद्यापीठो में प्राचीन सस्कृति के पुनरुज्जीवन, सब पढाई सस्कृत के माध्यम से हो (या अन्नामलाई विश्वविद्यालय की खोजो के अनुसार सस्कृत-पूर्व प्रोटो-अर्यन द्राविड मोहेजोदाडो-आस्ट्रिक-ब्राहुई जैसी किसी अब तक अपरिवर्तित शुद्ध तमिप में हो), या कि नव शब्द निर्माण शुद्ध वैदिक और पाणिनीय धातु-प्रत्ययो से किया जाय, या कि देश के भावी बालक केवल महर्षि दयानन्द प्रणीत वेद-भाष्य सीखें, या हिन्दी के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा और देवनागरी के अतिरिक्त कोई अन्य लिपि न सीखें इत्यादि-इत्यादि विचारपद्धतियो पर आग्रह करते है, तो वे सब क्या अनैतिहासिक नही हैं ? धार्मिक-शिक्षा का एक रूप वह क्यो न हो कि 'सर्व धर्म समभाव' सिखाया जाय ?

सक्षेप में, शिक्षा नगर केन्द्रित हो या ग्राम केन्द्रित, उसमें यान्त्रिकता पर बल दिया जाय या हस्त उद्योगो पर, सैनिक-शिक्षा और धार्मिक-शिक्षा अनिवार्य हो अथवा न हो, हमारा आदर्श प्राचीन सस्कृति के पुनर्सम्भव का हो या भावी निर्माण में अधुनातम बनने का, शिक्षा की मूल धुरी श्रद्धा हो या प्रज्ञा—इन विषयो के बारे में हमारे देश के विचार-निर्माताओ और मनीषियो में ऐकमत्य नही है। अत परिणाम यह होता है कि जब साहित्य की शिक्षा का प्रश्न आता है तो उसमें भाषा और भाषा द्वारा किये जाने वाले सौन्दर्य-बोध आदि सूक्ष्म वृत्तियो के उन्नयन का प्रश्न है—विश्वविद्यालयो में घोर अनैश्चित्य है। एक मत उन लोगो का है जिनका बस चले तो देश की सब प्रादेशिक भाषाएँ मिटाकर वे सबको अनिवार्य रूप से सस्कृत पढाकर छोडें, दूसरी ओर वैसे ही दुराग्रही है, जो चूकि प्रादेशिक भाषा और राष्ट्रभाषा को इतना सक्षम नही पाते, अत व्यावहारिक सुविधा के लिए अनिवार्य बुराई के नाते अँगरेजी को ही रखना चाहते है, शायद कम-से-कम १९९० ईस्वी तक। तीसरी ओर वे लोग है कि वे प्रादेशिक भाषाओ का विकास नही चाहते और कहते हैं कि जैसे उर्दू 'हिन्दी की शैली' ही घोषित की गई, वैसे पञ्जाबी और गुजराती को हिन्दी की बोलियाँ बना दिया जाय। और चौथा मत उन दुराग्रहियो का है जो स्तालिन के 'नैशनैलिटीज' के थीसिस के आधार पर देश को जितने टुकडे हो सके उनमें विखण्डित करना चाहते हैं। हिन्दी भाषी प्रदेश में भी दो राजकीय भाषाएँ बनें—हिन्दी और उर्दू। मातृभाषाओ और जनपदीय उप-भाषाओ के नाम पर हिन्दी प्रदेश के मिथिला, भोजपुर, अवध, व्रजमण्डल, राजस्थान, मालव, निमाड, बुन्देलखण्ड इत्यादि अनेक खण्ड बनें—कुछ स्थानो में तो यह भी नारा उठा है कि शिक्षा का माध्यम भी ये बोलियाँ हो।

कोई भी सिद्धान्त जब अतिवाद की शरण लेता है तो हास्यास्पद बन जाता है, उसमें का व्यावहारिक पक्ष विलुप्त हो जाता है। सत्य यह है कि सप्रति विश्व के ज्ञान-विज्ञान के विषय में जितनी पाठ्यपुस्तके और सामग्री भारत के बाहर विदेशी भाषाओ में उपलब्ध है, यथा जर्मन, रूसी, अँगरेजी आदि—उतनी हमारी भाषाओ में (जिनमे हिन्दी भी शामिल है) नही है। इसका उत्तम प्रमाण यह है कि हमारे विद्वान् अपने ग्रन्थो में सारे हवाले, सन्दर्भ, उल्लेख, उद्धरण विदेशी ग्रन्थकारो के देते है। चाहे इतिहास हो या अर्थशास्त्र, भौतिक विज्ञान हो या रसायन, जीव-विज्ञान हो या महोविज्ञान, सब ओर यह हमारी परमुखापेक्षा बराबर बनी हुई है। तब किसी भी बोली या प्रादेशिक भाषा का यह आग्रह कि सारी पढाई बिना अँगरेजी या अन्य विदेशी भाषाओ के सहारे उसी भाषा में की जा सकेगी—यह कैसे व्यवहार्य है। यदि हमें विश्व के राष्ट्रो के समकक्ष, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर, उन्नत शिर चलना है तो विदेशी भाषाओ के ज्ञान से हम सर्वथा अपने-आप को काटकर या बचाकर चल नहीं सकते। बल्कि विदेशी भाषाओ का पठन-पाठन और भी विस्तृत प्रमाण पर हमें बढाना होगा। और इसका अर्थ यह नही होगा कि हम अपनी भाषाओ को अनाथ और अविकसित छोड देंगे।

शिक्षा और साहित्य की गति-विधि इस प्रकार से बहुमुखी होगी। हमें व्यक्ति को श्रेष्ठतर बनाना है, अधिक चरित्रवान, बलवान, मेधावान और निर्भय बनाना है, परन्तु प्राचीन काल के घोर व्यक्तिवाद की भाँति

यह कार्य केवल किसी निर्जन आश्रम, उच्च वर्ण या सामन्त-सम्राट् के राजप्रासाद तक सीमित नही होगा। व्यक्ति की उन्नति के साथ-साथ समाज को भी उन्नत करना है। इसीको एक शब्द में कहा गया—'सर्वोदय'। अपनी मातृभाषा की उन्नति के साथ-साथ राष्ट्रभाषा की उन्नति करनी होगी। साहित्य की शिक्षा निरी रीतिकालीन यानी शास्त्र-बद्ध, पौस्तक और जीवन से कटी हुई नही होगी। शिक्षा और साहित्य ये साधन है व्यापकतर, वृहत्तर, जीवनोन्नति के। कल्याण राज्य में यही आदर्श होगा और वह लादा नहीं जायगा—नियम-कानून वनाने से, निषेधाज्ञाओ से, विद्यार्थियो पर आँसू गैस वरसाने मे या अध्यापको की राजनैतिक विचारधारा की ऐकान्तिक अन्ध आज्ञाकारिता (कनफर्मिज्म) के आधार पर छँटनी से नही साध्य होगा। व्यक्ति-व्यक्ति में वह अन्दर मे जागना होगा। वही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और समाज-स्वातन्त्र्य की प्रथम शर्त है। यदि विद्या यह स्वातन्त्र्य नही जगाती तो सर्टीफिकेटो पर छपा 'सा विद्या या विमुक्तये' एक निरा वेलवूटा है, वेजान निरर्थक मन्त्र!

●

"एक वहुत ही वडा दोष मैंने वहनो में यह देखा है कि वे अपने विचार सारी दुनिया से छिपाती हैं। इससे उनमें दभ आ जाता है। और दभ उन्हीं में आ सकता है, जिनमें असत्य घर कर बैठता है। दभ-जैसी जहरीली चीज इस जगत में मैं दूसरी कोई नहीं जानता। और जब हिन्दुस्तान की मध्यम वर्ग की स्त्री में, जो सदा ही दवी हुई रहती है, दभ आ जाता है तब तो वह कनखजूरे की तरह उसे कुतर-कुतर कर खा जाता है। वह पग-पग पर वही करती है जो उसे नापसद है, और ऐसा मानती है कि उसे करना पडता है। वह जरा समझ ले तो मालूम हो जाय कि इस ससार में किसी से दवने का उसके लिए कोई कारण नहीं है।"

—मो० क० गाधी

विदेशिनी

विष्णु प्रभाकर

जब दो नारियाँ मिलती हैं तो आवश्यक नही कि पुरुषो की चर्चा करे, पर जब दो पुरुष मिलते है, तो अनिवार्य रूप से किसी-न-किसी प्रकार नारी उनकी चर्चा का विषय बन जाती है। विशेषकर उसके चरित्र के बारे में वे पूरी जानकारी रखने का दावा करते है। वे फतवे देते है और ऐसा प्रगट करते है कि जैसे वे वैज्ञानिक है और उनकी प्रयोगशालाओ में सफेद चूहे न होकर नारियाँ है।

उस दिन स्थानीय विश्वविद्यालय के दो युवा प्राध्यापक, दो-तीन स्थानीय लेखक और पत्रकार मिले तो तुरन्त नारियो की चर्चा करने लगे। उनमें से कई लम्बी-लम्बी विदेश यात्राएँ कर चुके थे और वे रस ले-लेकर अपने-अपने अनुभव सुना रहे थे। उनकी दृष्टि में नारी कभी पुरुष के समकक्ष नही हो सकती थी। इस प्रयत्न में वह बुद्धिमती तो क्या होती, नारी भी नही रही।

उनमें जो लेखक थे पूछ बैठे, "तो क्या रह गई है ?"

"मात्र शरीर।"

"निस्सन्देह आधुनिक नारी मात्र शरीर है, जो प्रसाधन के बल पर रूप और यौवन का आकर्षण बनाये रखने में जीवन खपा देती है।"

दूसरे प्राध्यापक बोले, "यदि वह ऐसा न करें तो पुरुष की आँखो में धूल नही झोक सकती।"

लेखक ने मुस्करा कर कहा, "दोस्तो ! मैं आपकी राय से सहमत हूँ। पुरुष को चकमा देने में वह असाधारण रूप से दक्ष है। कभी-कभी तो वह पुरुष को इस प्रकार मूर्ख बनाती है और स्वय ऐसी सुगमता से बच निकलती है कि हमें काठ मार जाता है।"

इस मुहावरे के असाधारण प्रयोग पर प्राध्यापक कुछ चौके। जो सबसे अधिक नारियो के सम्पर्क मे आने की डीग मार रहे थे, वे बोले, "क्यो, क्यो, क्या किसी कोमलागी ने तुमको लूट लिया है ?"

मित्र कहने लगे, "उसने क्या किया इसका निर्णय तो आप ही कर सकते है। आपके अनुभव मे वृद्धि हो इसलिए वह कथा मै आपको सुनाये देता हूँ—

"उन दिनो मै की राजधानी में ठहरा हुआ था। कई बार मै वहाँ जा चुका था पर समारोहो की चकाचौंध में मुझे किसीके विशेष सम्पर्क में आने का अवसर नही मिला था। नाच-रग में ही वे दिन बीत जाते थे। यह ठीक है कि तब मेरी हड्डियो की मज्जा तक में आनन्द थिरक उठता था, पर जिसे टिकाऊ आनन्द कहते है उसका अनुभव तो मुझे इसी बार हुआ था। मुझे वहाँ लगभग दो महीने ठहरना पडा। एक शानदार होटल में राज्य की ओर से सब प्रबन्ध था और मेरी प्रार्थना पर एक दुभापिये की व्यवस्था भी कर दी गई थी।

वह दुभापिया एक युवती थी। मै आज भी विश्वास से नही कह सकता कि सुन्दरी थी या नही, पर निर्विवाद रूप से उसमें जादुई आकर्षण था। मै उसे तन्वगी और तनुकेशी अवश्य कहूँगा। उसकी कटि अत्यन्त क्षीण, कन्धे पुष्ट और वक्षस्थल उभरा हुआ था। उसकी काली विनोदपूर्ण आँखें मेरी सबसे बडी कमजोरी थी। वह अक्सर बात-बे-बात पर हँस पडती और तब उसके मोती जैसे सफेद छोटे-छोटे, एक जैसे दाँत मेरे वक्ष में चमक उठते।

कुछ औरतें होती हैं जिनकी सुन्दरता भले ही वह विवादास्पद हो, परेशान करने वाली होती है। वह उन्ही में थी। मै उसका वास्तविक नाम नही बता सकता परन्तु सुविधा के लिए उसे मारिया कहूँगा। मारिया दिन के खासे बडे भाग में मेरे साथ रहती थी। एक क्षण के लिए भी मैंने उसे कुपित होते नही देखा, बल्कि हर क्षण वह मुस्कराती ही रहती थी और इस बात का बराबर ध्यान रखती थी कि मुझे कभी किसी प्रकार की असुविधा न हो। उसकी आश्चर्यजनक कुशलता पर मैं चकित था।

मेरा काम कुछ ऐसा था कि मैं एक स्थान पर नही टिकता था। वह भी मेरे साथ घडी की सुई की भाँति निरन्तर गतिमान रहती थी। ठीक दिये हुए समय पर मैं उसके आगमन की पदचाप सुनता और निश्चित समय पर वह मुस्कराती हुई विदा लेती

आश्चर्यजनक बात तो यह है कि मैंने कभी यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि वह कहाँ रहती है, क्या करती है, वह विवाहित है या अविवाहित। सच तो यह है कि उसने कभी अवसर ही नही दिया। उन्ही दिनो अचानक एक ऐसी बात हो गई कि मैंने मन-ही-मन कुछ अनुमान कर लिये और फिर तो पूछने का प्रश्न ही नही रहा।

उस दिन मैं कुछ अस्वस्थ था और अपने कमरे ही में काम कर रहा था। मारिया पास ही बैठी पुस्तकों और चार्टों के सहारे मेरे प्रश्नो का उत्तर देने का प्रयत्न कर रही थी। कही दूर वसन्तकालीन पिघलती हुई बर्फ की बूदें टप-टप कर गिर रही थी

माफ करिये मैं यह बताना भूल गया कि कुछ दिन के लिए मैं राजधानी के पास एक गाँव में चला गया था, जहाँ मैं कभी-कभी झीगुरो की झनकार भी सुन सकता था। वे गाँव, हमारे गाँवो जैसे नही थे। आधुनिक विज्ञान की सभी सुविधाएँ वहाँ प्राप्त थीं। इसीलिए जहाँ एक ओर मैं बर्फ की बूदो और झीगुरो का प्राकृतिक सगीत सुन सकता था वहाँ टेलीविजन पर अत्याधुनिक कलापूर्ण नृत्य भी देख सकता था।

इस पर मुझे मारिया जैसी तन्वगी का साहचर्य भी प्राप्त था। मुझे समझाते-समझाते वह बिल्कुल पास आ गई। उसकी साँसो की सुगन्ध से मैं उत्तेजित हो उठा। तभी सहसा उसने अपना कालर ठीक किया और शरारत भरी विनोदपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा, कहा, "क्या तुम नही समझते कि आगे आने वालो का जीवन हम लोगो की अपेक्षा अधिक सुन्दर और सुविधाजनक होगा ?" मैंने दृष्टि उठा कर पूछा, "क्या मतलब ?"

"मतलब ! क्या तब तक युद्ध समाप्त नही हो जायेंगे ? विज्ञान सहारक न रहकर मनुष्य के सुख का साधन न बनेगा ? क्या मृत्यु हमारे लिए रहस्य रह जायगी ? क्या नक्षत्र मण्डल "

वह उज्ज्वल भविष्य के पूर्ण-विश्वास से बोल रही थी जैसे वह उसके नेत्रो में चमक उठा हो। मुझ पर एक नशा-सा छाता चला गया। मैं फुसफुसाया, उठा और मैंने कहा, "मेरा जीवन तो जैसा आज मनोरञ्जक और आनन्दपूर्ण है वैसा उनका न होगा। तुम्हारे पास रहने से अधिक सुख किसी को क्या मिलेगा !" वह एकाएक हँस पडी, "धन्यवाद प्रिय मित्र ! आप अतिशय उदार है।" कहते-कहते वह मेरे बिल्कुल पास आ गई और बिना किसी झिझक के उसने मेरा हाथ दबा दिया

एक क्षण के लिए कम्पायमान मैं उस स्पर्श की सुरभि-गन्ध से विमूढ होकर उसकी आँखो को देखता बैठा रहा। वे इतनी सुन्दर थी कि बखान नही किया जा सकता। उस दिन मेरे मन में नई आशा का अकुर फूटा। मुझे महसूस हुआ कि मारिया के भीतर जो नारी है वह मेरे पुरुष से दूर नही है। भीतर जो झिझक थी वह एकाएक तिरोहित हो गई और उस दिन विदा के समय मैंने उसे एक बहुमूल्य उपहार भेंट दिया।

वह विनोदपूर्ण शरारत से मुस्कराई और धन्यवाद के साथ उसने उस उपहार को स्वीकार कर लिया। तब वह समूचा वातावरण मेरी दृष्टि में तरुणी की भाँति नाच उठा

सोचता हूँ काश कि यही अन्त हो जाता पर यह तो प्रारम्भ था। ऐसा प्रारम्भ जो पथिक को सम्मोहित करके मञ्जिल को पास खीच लेता है। अब मैं नियमित रूप से उपहार देकर अपना प्रेम प्रगट करने लगा। वह सादे ढग से और लजायी-सी मुस्कराहट से बराबर उन्हे स्वीकार करती गई। उसने एक बार भी परोक्ष या अपरोक्ष रूप से विरक्ति प्रगट नही की। विदा के समय का उसका स्नेह-प्रदर्शन कभी कोमलता लिये होता था तो कभी जोशोखरोश। यह सब उसके लिए तो नितान्त स्वाभाविक था पर मैं निरन्तर उसमें डूबता चला गया।

मैं अक्सर चिन्तायुक्त बेचैनी से सोचने लगा। मैं अनुभव करता था कि उस तन्वगी के मुह से निकले एक-एक शब्द को मैं प्रेम करता हूँ, उसकी पोशाक की प्रत्येक सलवट को, सरसराहट को, उसकी एक-एक बरौनी को प्रेम करता हूँ और वह प्रेम इतना गहरा है कि शीघ्र मैं उसकी जुदाई बर्दाश्त न कर सकूगा

आप सोचते होगे कि उसकी क्या अवस्था थी।

वह पूर्वत विनोदपूर्ण शरारत से मुस्कराती। पूर्वत वह एक स्नेहिल साथी की तरह मेरी देखभाल करती। मुझे नये-नये स्थानो पर ले जाती, बहस करती और कभी मुझे उदास देखती तो तुरन्त नाट्यगृह अथवा आपेरागृह में मेरे लिए व्यवस्था करती। जिद करके मुझे वहाँ बैठा आती

मुझे लगा जैसे मुझे इस नियम की जटिलता को भग करना चाहिए, जैसे मुझे पहल करनी चाहिए

मैंने उस दिन उसे अब तक के उपहारो में सबसे मूल्यवान् उपहार भेंट किया। ऐसा करते समय उसके हाथ की उँगली मेरी उँगलियो से छू गई। वैसे हम हाथ मिलाते थे, पर तब उस उँगली को जरा-सा दबाने में मुझे जो सुख मिला उसका बखान न कर सकूगा, पर उसके शरारती नयन पूर्वत चमक उठे थे। उसने एक बार शायद अस्वीकृति सूचक कुछ कहना चाहा, पर फिर धन्यवादपूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। उसने कहा, "मैं तुम्हे कैसे धन्यवाद दू ? तुम क्यो इतना कष्ट उठाते हो ? क्यो ?"

"क्योकि मुझे आनन्द मिलता है।"

"ओह, तुम कितने अच्छे हो, कितने भले "

"लेकिन तुमसे अच्छा नही, तुमसे भला नही "

सहसा उसके मुख पर एक भाव आया। वह कुछ बेचैन-सी हुई। आह, यही तो मैं चाहता था। आनन्दातिरेक से मैंने उसका हाथ दबा दिया और सहसा द्रुतगति से वह कमरे से बाहर निकल गई और मैं उसकी आकस्मिकता से अभिभूत विमूढ-सा खडा रह गया। आगे बढ कर उसे पकड न सका।

अगले दिन सूचना मिली कि वह आ न सकेगी। अचानक किसी काम से उसे बाहर जाना पडा है। तभी एकाएक मुझे भी देश से सूचना मिली कि शीघ्र लौटू। मेरा हृदय इन परिवर्तनो को बर्दाश्त करने को तैयार नही था। लेकिन विधि का विधान

प्रबन्ध करने में कई दिन लग गये। मैंने उसे आग्रहपूर्वक सन्देश भिजवाया कि जाने से पूर्व किसी भी तरह मिल सके तो कृतज्ञ होऊँगा।

वह एरोड्रोम पर आई। वही मारिया वही छरहरी, पुष्ट कन्धो और विनोदपूर्ण काली आँखो वाली मारिया। वह सदा की तरह शरारतपूर्ण मुस्कराहट से जगमगा रही थी। उसने बहुत ही बढिया पोशाक पहनी थी और वसन्त ऋतु की उस सुहावनी प्रभात में और भी सुहावनी लग रही थी। उसने मुझे देखते ही हाथ फैला दिये। मैंने उसकी पकड की उष्णता को महसूस किया। मैंने किसी तरह फुसफुसाकर कहा, "बहुत आवश्यक काम से जाना पड रहा है। शीघ्र लौटूगा।"

ओह् धन्यवाद! इस वार मेरे साथ ठहरना।

मारिया

हाँ कमल कमल तुम वहुत भोले हो।

और उसने मेरा हाथ दवा दिया।

और मैं जैसे प्रेम के अतल में डूव गया।

अच्छा विदा—उसने कहा और उसी उष्ण दृढता से अपना स्नेह प्रदर्शन किया। फिर एक काफी वडा सुन्दर पैंकेट मेरे हाथो में थमा कर कहा, "मेरी ओर से तुच्छ भेंट।"

मैं तो तव था ही नही, फुसफुसाया, "मारिया यह सव "

"कुछ नही, कुछ भी नही, समझो इसमें मेरा चित्र भी है।"

"मारिया।"

"कमल "

उसने फिर हाथ दवाया और शरारतपूर्ण मुस्कराहट मे अपनी आँखें मेरी आंखो में डालते हुए कोमल स्वर में कहा—"समय हो गया। विदा "

"विदा "

सवसे विदा लेकर मैं उड चला, पर मेरा हृदय तो वही रह गया था। जितनी देर देख सका उसे देखता रहा। फिर घायल पक्षी की तरह सीट में धुस गया। ओह् मारिया मारिया क्या यह वसन्त ऋतु वियोगिनी के रूप में नही गा रही है!

घर आकर सवसे पहले मैंने वह पैंकेट खोला। सहसा समझ न पाया। उसमें वे ही सव उपहार थे जो समय-समय पर मैंने उसे दिये थे। साथ में एक चित्र था जिसमें हूवहू वही विनोदपूर्ण आँखो वाली मारिया थी। उसके साथ था एक वलिष्ठ कन्धो और अस्त-व्यस्त वालो वाला, हृष्ट-पुष्ट युवक और उन दोनो को घेर कर खडे थे तीन सेव-से गुदगुदाये, फूल से सुन्दर, शैशव की प्रतिमूर्ति वालक

पत्र में लिखा था—

प्रिय कमल,

सदा तुम्हारी याद आती रहेगी। वुरा न मानना, तुम्हारे उपहार लौटा रही हूँ। अशिष्टता तो यह है पर इसमें दुर्भावना नही है। तुम भोले हो। नहीं जानते कि मुक्त-व्यवहार वासना के कारण नही होता वल्कि इस कारण हो पाता है कि उसमें वासना नही होती। तुमने मुझे गलत समझा

चित्र में तुम मेरे प्रिय पति और हमारे प्राणधन वच्चो को देखोगे और मुझे विश्वास है कि उनकी दीर्घायु की प्रार्थना करोगे। मेरे लिए तुम्हारा यही उपहार मुझे चाहिए। मेरे देश में वार-वार आना।

अपने महान् सुन्दर देश के लिए मेरी, मेरे पति की शुभकामनाएँ। अपने लिए हम दोनो का प्यार।

तुम्हारी

विदा विदा प्रिय मित्र, विदा

पूरा पत्र पढने से पूर्व ही मुझे काठ मार चुका था। मैं पूछता हूँ—इसके अतिरिक्त क्या कुछ और भी हो सकता था?

स्तम्भित-चकित उन मित्रो ने इस प्रश्न को जैसे सुना ही नही। उन्हे भी काठ मार चुका था।

प्रयत्न करने पर केवल एक प्राध्यापक एक वडा-सा 'एँ' कह सके थे।"

गद्य गीत

विहग!

मेरे हृदय में अखिल ब्रह्माण्ड है तू यही अपना नीड बना।
हरी दूब के मखमली तख्ते और उज्ज्वल आत्मा मे खिली हुई
कुसुम-क्यारियो से अपने मस्तिष्क को मुअत्तर कर,
वात्सल्य सी गहरी छाया देने वाले घने पेडो पर अभय हो
अपना साम्राज्य स्थापित कर और अमी रस के भरे पक्के
प्रेम रूपी फलो का आस्वाद ले।

यहा न दुनिया का गम है, न आहो की ऊष्ण हवा।
पाप की कालिमा से परे पुण्य की प्रतीक अनिर्वचनीय
शान्ति यहा सिद्ध के साधन की तरह स्थित है।

नौ रसो की माधुरी चखी हुई मै प्रेम से तेरी
परिचर्या करूगी, शिकारी के भयकर जाल से तुझे बचाऊगी,
गले मे मणि-मुक्ताओ की बहुमूल्य माला पहिनाऊगी
और पैरो में सोने की पैंजनिया।

भय न खा, आ! मेरे हृदय मे आ—
मै, सैयाद को फटकने भी न दूगी!!

—दिनेशनन्दिनी

युग की माँग

दुर्गाबाई देशमुख

महिलाओ को शिक्षा देने या न देने का प्रश्न अब विवादास्पद नही रहा। महिलाओ और लडकियो की शिक्षा को अब सर्वसम्मत रूप से स्वीकार किया जा चुका है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ज्यो-ज्यो सामान्य शिक्षा के लिए सुविधाओ का विस्तार होगा, लडकियो की शिक्षा की समस्या का भी स्वत समाधान हो जायगा।

जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषो और महिलाओ की समानता को दृष्टि में रखते हुए, हम गलती से शैक्षणिक क्षेत्र में उन दोनो की आवश्यकताओ को एक-सा समझ लेते है, जिससे अनेक समस्याए उठ खडी होती है। महिलाओ की शिक्षा-सबधी आवश्यक समस्याओ पर प्रकाश डालने का यहा प्रयत्न किया गया है।

पहले मै यह स्पष्ट कर देना चाहती हू कि सेक्स के आधार पर महिलाओ के पक्ष या विरोध में मेरा कोई सुझाव प्रस्तुत करने का इरादा नही है। परन्तु महिलाओ और लडकियो की शैक्षणिक आवश्यकताओ की परीक्षा करने पर हम इस परिणाम पर पहुचते है कि व्यक्ति के शैक्षणिक क्षेत्र का चुनाव करते समय, उसकी विशेष अभिरुचि किस विषय की ओर है, इस वैज्ञानिक सिद्धात को हमने महिलाओ के विषय में लागू नही किया। दूसरे, शिक्षा जीवन से सबधित होनी चाहिए—इस वैज्ञानिक सिद्धात को यद्यपि हमने सामान्यत सिद्धात रूप में स्वीकार कर लिया है, परन्तु लडकियो और महिलाओ की शिक्षा पर इसका भी प्रयोग नही किया।

हमारे देश में एक लडकी की शिक्षा उतनी अच्छी प्रकार सपन्न नही हो पाती, जिस प्रकार एक लडके की शिक्षा। अधिकाश सामान्य स्थितियो में विवाह, प्रसूति, घर और बच्चो की देखभाल से लडकी की शिक्षा में बाधा पडती रहती है। दूसरी स्थितियो में महिलाओ के परित्याग और वैधव्य जैसी समस्याओ मे भारतीय महिलाओ की शिक्षा की दिशा में विभिन्न प्रकार की कठिनाइया सामने आती है। इस प्रकार लडकियो की विवाहपूर्व और विवाहोत्तर शैक्षणिक आवश्यकताओ को हम दो भागो में बाट सकते है। हमारी कोई भी योजना, जो इसे ध्यान में नही रखती, महिलाओ और लडकियो में शिक्षा के प्रति विशेष उत्साह उत्पन्न नही कर सकती।

प्रथम पचवर्षीय आयोजना में महिलाओ की शिक्षा के लिए एक विशेष विभाग की स्थापना की गई थी, और विभिन्न शैक्षणिक आवश्यकताओ के अनुरूप लडकियो को विभिन्न आयु-समूहो में बाटा गया था। ये स्कूल जाने योग्य लडकियो के समूह है, अर्थात् ५ से ११ साल के आयु-समूह की लडकिया, ११ से १६ साल के आयु-समूह की लडकिया, इस आयु से ऊपर की लडकिया, जो विवाहित होती है और जिन्हें अपने परिवारो की देखभाल करनी पडती है, और इससे भी बडी उम्र की विवाहित लडकिया, जिन्हें अपनी आजीविका के लिए कोई काम-धन्धा सीखना पडता है। इसके अतिरिक्त, सामान्य रूप में महिलाओ की सामाजिक शिक्षा की समस्या भी है।

प्रथम पचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत, सन् १९५०-५१ में प्राइमरी और मिडिल स्कूलो में शिक्षा पाने वाले कुल विद्यार्थियो में २५ ६ प्रतिशत लडकिया थी, उच्च माध्यमिक कक्षाओ में यह प्रतिशत १३ ९ थी और कालेजो तथा विश्वविद्यालयो में १२ ४। १९५४-५५ तक इन अनुपातो में क्रमश १ ५, २ १ और १ २ प्रति-

शत की वृद्धि हुई, जिसे सतोषजनक नही कहा जा सकता। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना की समाप्ति तक इसमें १ प्रतिशत और वृद्धि की आशा की जाती है जो कि बिलकुल नगण्य है। राज्यो की आयोजनाओ में भी लडकियो की शिक्षा को विशेष महत्त्व नही दिया गया। द्वितीय आयोजना के अध्ययन से ऐसा पता चलता है कि लडकियो के शिक्षा-विस्तार के मार्ग में निम्न बाधाए है (१) सार्वजनिक उपेक्षा, (२) महिला शिक्षिकाओ की कमी (१९५३-५४ में प्राइमरी और माध्यमिक स्कूलो में नियुक्त समस्त शिक्षको में केवल १७ प्रतिशत महिला शिक्षिकाए थी), (३) लडकियो के स्कूलो का पर्याप्त सख्या में न होना। निस्सदेह, ये कठिनाइया लडकियो की शिक्षा के मार्ग में बाधाएँ हैं, परन्तु अधिक गौर से निरीक्षण करने पर पता चलता है कि सगठन और प्रबन्ध-सबधी इन कठिनाइयो के अतिरिक्त भी और बहुत सी कठिनाइया हैं।

विभिन्न शैक्षणिक योजनाओ में विभिन्न आयु-समूहो की लडकियो और महिलाओ की आवश्यकताओ को ध्यान में नही रखा गया। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना में जिन कठिनाइयो का निर्देश किया गया है और उनके समाधान के जो उपाय सुझाये गए है, वे ११ वर्ष के आयु-समूह की लडकियो पर ही लागू होते है। लडकियो की प्राइमरी से ऊपर तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षा की योजना तभी सतोषजनक रूप से बनाई जा सकती है, जबकि भारतीय परिवार के ढाचे को, ११ वर्ष से ऊपर की आयु-समूह की लडकियो की परिवार में स्थिति को तथा परिवार में उनके द्वारा सपन्न किये जाने वाले कार्यो को पूर्णत ध्यान में रखा जाय।

इसके बाद लडकियो की माध्यमिक स्तर से ऊपर की शिक्षा की समस्या हमारे सम्मुख आती है। जिस प्रकार हम उन लडको को, जिनकी शिक्षा के प्रति विशेष अभिरुचि होती है, उच्च शिक्षा या व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए नही रोकते, उसी प्रकार जिन लडकियो का शिक्षा के प्रति विशेष रुझान है, उन्हें भी हमें उच्च शिक्षा ग्रहण करने से नही रोकना चाहिए। परन्तु हमें तो बहुसख्या का खयाल रखना है, और यही पर आयोजना की असफलता दृष्टिगोचर होती है। स्वय आयोजना के लिए माध्यमिक शिक्षा-प्राप्त ऐसी लडकियो की आवश्यकता है जो कि अध्यापन, नर्सिग, स्वास्थ्य-निरीक्षण, ग्राम-कल्याण सेवाओ इत्यादि के लिए पूर्णत प्रशिक्षित हो। यदि आयोजना के लिए आवश्यक कर्मचारी-वर्ग-प्रशिक्षण की दृष्टि से देखा जाय तो आयोजना के अन्तर्गत शिक्षा-सबधी योजनाओ में पर्याप्त सख्या में लडकियो को उचित प्रकार की शिक्षा देने की कोई व्यवस्था नही है। गृह-विज्ञान, समाज-कल्याण, अध्यापन, नर्सिंग, मिडवाइफरी, दस्तकारी और ललित कलाओ के क्षेत्र में हमें बहुत बडी सख्या में प्रशिक्षित महिलाओ की आवश्यकता है और हमारा अनुभव यह बताता है कि इन क्षेत्रो में प्रशिक्षण देने के लिए हमें कम से कम माध्यमिक शिक्षा प्राप्त लडकिया भी नही मिल पाती।

११ वर्ष से ऊपर की उन लडकियो के लिए जो सामाजिक या आर्थिक स्थितियो के कारण, इच्छा होते हुए भी, स्कूलो में नही जा पाती, उन्हें हमें विशेष सुविधाए प्रदान करनी होगी और ऐसे उपाय खोजने होगे जिससे इन लडकियो की शिक्षा की व्यवस्था घर पर या ऐच्छिक सस्थाओ में हो सके और उन्हें बाहरी उम्मीदवारो के रूप में माध्यमिक परीक्षाओ में बैठने की अनुमति प्राप्त हो। ऋतु-सबधी और ग्राम-परिवारो की व्यावसायिक आवश्यकताओ को दृष्टि में रखते हुए ११ वर्ष के आयु-समूह की लडकियो के पाठ्य-क्रम और समय-विभाग में भी परिवर्त्तन करना होगा।

महिलाओ की शिक्षा सबधी एक और समस्या यह है कि शिक्षित महिलाओ का प्रतिशत बहुत कम है और जो महिलाए कुछ श्रेणियो तक अध्ययन कर पाती है वे शिक्षा-क्रम के जारी न रहने से पुन अशिक्षा के गर्त्त में जा गिरती हैं। ऐसी महिलाओ को शिक्षा के अभाव में कोई आर्थिक लाभ का कार्य भी नही मिल पाता। इनमें से कुछ उत्साही महिलाए इस अवस्था में भी अपना अध्ययन जारी रखना चाहती है ताकि वे न केवल अपना भरण-पोषण कर सकें अपितु अपने बच्चो का भी भली प्रकार पालन-पोषण कर सकें और उन्हें उच्च शिक्षा दे सकें। इस

प्रकार की महिलाओं के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त ऐच्छिक संस्थाओं का संगठन करना होगा, जहा पर विशेष पाठ्यक्रम की व्यवस्था हो। सामान्य शिक्षा के साथ-साथ किसी काम-धन्धे का प्रशिक्षण उनके लिए बहुत उपयुक्त होगा। इस कार्यक्रम के सफल संचालन के लिए अतिरिक्त समय के स्कूलो, आवास-स्थानों और छात्र-वृत्तियो की व्यवस्था की जानी चाहिए।

उन महिलाओं के लिए जो कालेजों और विश्वविद्यालयों में पूरे समय न पढ़ कर अपना अध्ययन जारी रखना चाहती है, कुछ विशेष सुविधाए प्रदान करनी होगी। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने "नौकरी-पेशा विद्यार्थियों" के लिए प्रातः और सायकालीन कालेज खोलने के पक्ष में जो तर्क प्रस्तुत किये है, वे महिलाओं की शिक्षा पर भी पूर्णतः लागू होते है। इससे शिक्षा-स्तर में किसी प्रकार की न्यूनता का भय नहीं है। इन महिलाओं के लाभ के लिए मानव-शास्त्र और समाज-शास्त्र के विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जा सकती है। राज्य सरकारो और विश्वविद्यालयों को ऐसी सुविधाए प्रदान करनी चाहिए जिससे अधिकाधिक संख्या में महिलाए बाहरी उम्मीदवारों के रूप में परीक्षाओं में सम्मिलित हो सकें। प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे भी इसकी सिफारिश की गई थी, परन्तु दुर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों में ऐसी सुविधाए प्रदान नहीं की गई और ऐसा मालूम हुआ है कि उस समय जो थोडी बहुत सुविधाए थी वे भी वापस ले ली गई है। अगर ऐसा है, तो यह महिलाओं की शिक्षा के मार्ग में एक बड़ी भारी बाधा है।

आयोजना में कहीं भी लडकियो और महिलाओं की शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा पर बल नहीं दिया गया। बहुत सी महिलाए कृषि, दस्तकारी और ग्रामोद्योग के विभिन्न धन्धो में लगी हुई है, परन्तु उन्होंने अपने विशेष क्षेत्रो में जो दक्षता प्राप्त की है, वह परीक्षा और गलती के लम्बे तरीके के माध्यम से निरीक्षण या अभ्यास पर आधारित है। इन महिलाओं को वैज्ञानिक ढग से व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे वे अपने काम-धन्धे में विशेष निपुणता प्राप्त कर सकें। जापान के उदाहरण को दृष्टि में रखते हुए, शहरी क्षेत्रो में काम करने वाली लडकियों को छोटी-छोटी मशीनो पर काम करने की शिक्षा देनी चाहिए, जो कि लघु उद्योगो के विकास के कारण बड़ी लोक-प्रिय हो रही है। हमारे देश में भी विभिन्न समाज-कल्याण-सगठनो में इसका श्रीगणेश किया गया है जहा महिलाए माचिस फैक्ट्रियो में, खिलौना बनाने वाली फैक्ट्रियों में, पेंसिल उद्योगों में और मशीनो के पुर्जे बनाने वाले उद्योगों में अत्यन्त सफलतापूर्वक काम कर रही है। सैद्धांतिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। अब तक महिलाओं को सिलाई और कसीदाकारी की ही अधिकतर शिक्षा दी जाती रही है। इनके प्रशिक्षण के लिए संस्थाए भी बहुत-सी खोली गई है, परन्तु अब इस कलात्मक काम की न इतनी माग है और न प्रशंसा ही। शिक्षा-विशारदों को चाहिए कि वे महिलाओ की वास्तविक आवश्यकताओं को अनुभव करते हुए उनके लिए विभिन्न कला-कौशल-सबधी कार्यों का आयोजन करें।

इस प्रकार हम देखेंगे कि महिलाओ की शिक्षा पुरुषो की शिक्षा से बहुत भिन्न नहीं है, क्योंकि इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और इसकी अपनी समस्याए और प्रश्न है। महिलाओं की शिक्षा के लिए एक व्यापक और क्रियात्मक योजना बनाई जानी चाहिए और इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या माध्यमिक शिक्षा आयोग की तरह एक महिला शिक्षा आयोग की स्थापना की जानी चाहिए, तभी सुसम्पन्न और सुशिक्षित भारतीय महिलाए राष्ट्र-पुनर्निर्माण के कार्यक्रम में सहायक सिद्ध हो सकेंगी।

बालशिक्षा में माँ का कर्तव्य

कृष्णा मेहता

प्राचीन समय में अधिकतर बाल शिक्षा का भार माता पिता पर ही निर्भर होता था। तभी मे मा अपने आचार विचार का ध्यान रखती थी। प्राचीन समय की स्त्रिया समझती थी कि उन्हें देश की रक्षा के लिए शूरवीर तथा सेवक पैदा करने है तथा बनाने है। कितने महान विचार थे उनके ! उन्ही विचारो का प्रभाव बालको पर भी पडता था। जब बच्चे मा की गोद से निकलते थे उसी समय मे मा के चरित्र की छाप उन पर पडी होती थी जो प्राय जीवनभर उनका साथ छाया की तरह देती थी।

आज यह सब स्वप्न क्यों ? क्या हमारे देश की अधिकतर महिलाये सन्तान के प्रति कम ध्यान देने लगी है या घरेलू कठिनाइया अधिक बढ गई है अथवा अधिक सन्तानोत्पत्ति के कारण बच्चो की ओर समुचित ध्यान नही दे पाती। कुछ न कुछ कमी तो अवश्य है जिसके कारण माता की गोद की शिक्षा जो कि बच्चो को नाना प्रकार से दी जाती—यथा कभी लोरियो के द्वारा तो कभी कहानियो के द्वारा और अधिकतर अपने जीवन चरित्र द्वारा दी जाती थी—आज अलभ्य है।

मेरा सर्वदा विचार रहा है कि बाल शिक्षा मा की गोद मे ही आरम्भ होती है और होनी चाहिए। बालक के जन्मते ही मा को समझना चाहिए कि देश के प्रति उस पर एक बडा भारी दायित्व आ पडा है, उसकी लेशमात्र भी उपेक्षा का अर्थ है देश के प्रति अन्याय, क्योकि उसी को तो देश के लिए शूरवीर तथा चरित्रवान बालक बालिकाओं को जन्म देना है जो देश के लिए भार न बन कर एक अनमोल वरदान सिद्ध हो।

आज की मातायें बच्चो पर बहुत कम ध्यान देती है। बच्चा जब कुछ सुनने समझने लगता है अपनी क्रीडाओ तथा अपनी गति विधियो के द्वारा अपने मन के भाव प्रकट करता है तो उसकी इन बातो पर कदाचित ध्यान नही दिया जाता परन्तु बच्चा मा की हर बात को ध्यान मे देखता है, सुनता है और उसकी नकल की पूर्ण चेष्टा करता है। उदाहरणार्थ, बच्चो के अन्दर झूठ बोलने की आदत को ही ले लीजिये। जब बालक कुछ बातें छिपा कर की जाती देखता है—यथा पडोस का बहाना करके मा का सिनेमा जाना, घर में होनेवाली किसी ऐसी वस्तु को जो बालक को देने योग्य न हो छिपा देना, घर में अधिक परिवार होने के कारण गुप्त रूप से बालक को कुछ खाने आदि की वस्तु देकर यह बताना कि किसी अन्य को नही बताना आदि तो बस यही से बच्चो को छिप कर कुछ करने की प्रेरणा मिल जाती है, जिसको न मा समझ सकती है और न बच्चा ही जान पाता है।

कभी बच्चा अनजाने ही कोई वस्तु स्कूल मे या सडक मे पडी हुई उठा लाता है और आकर मा को दिखाता है, परन्तु मा कार्य व्यस्त होने के कारण उस पर ध्यान नही देती है। 'रख लो' मात्र कह देती है। उन्ही सब बातो मे मा की अज्ञानता टपकती है और यही से बच्चा का विनाश आरम्भ हो जाता है। बच्चा समझने लगता है कि जो भी वस्तु मुझे कही मे मिले उसे रख लेना मेरा अधिकार है। यदि उसी समय बच्चे को समझा दे कि इस प्रकार प्राप्त वस्तु पर तेरा कोई अधिकार नही, यह देश की वस्तु है (और इसी प्रकार हर पक्ष पर उसे समझाना

आवश्यक है ताकि वह भले और बुरे में अन्तर कर सके) तो निश्चय ही बालक की प्रवृत्ति किसी उच्चतम भावना की ओर ही परिलक्षित होती। निश्चय ही, सत्य और उचित बातें ही बच्चे के सामने रखे जाने से उत्पन्न, असख्य कठिनाइयों का सामना करके ही बच्चों का चरित्र निर्माण सम्भव है और तदुपरान्त जब वह बाल क्रीडाओं, स्कूल-कालेजो तथा जीवन-यात्रा में प्रवेश पायेगा तो उसके मन पर मा के अनमोल सदुपदेश, सदाचार तथा सद्भावनाओं का अमिट प्रभाव होगा और वह देशभक्ति, सेवा भाव तथा त्याग की भावनाओं से ओतप्रोत भारत मा का सच्चा लाल सिद्ध होगा।

स्कूल आदि में शिक्षा कैसी होनी चाहिए ? यह आज ज्वलन्त समस्या है। सबके अपने अपने विचार है। इसलिए जहातक बालशिक्षा का प्रश्न है वह ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षा के साथ साथ ही बालक हर तरह की अन्य योग्यतायें भी प्राप्त कर ले, ऐसे विचार उसके मन में उत्पन्न हो कि देश का सुयोग्य नागरिक उसे बनना है, देश के हित में ही उसका जन्म हुआ है, देश उसका और वह देश का है, देश की इज्जत उसकी अपनी इज्जत है, देश का हित ही ससार में सर्वोपरि है तथा अन्य सामाजिक हित उसके सम्मुख गौण है। साथ ही उसे भरोसा होना चाहिए कि जब वह स्कूल से निकले कुछ न कुछ ऐसा हुनर उसके हाथ में हो जो उसे इधर उधर न भटकाये जिससे उसकी भावनाओं को ठेस पहुचे।

देश के विद्वानो का काम है कि इन सब बातो के लिए कोई युक्ति निकाले ताकि आधुनिक शिक्षा में उन्नति दिखाई दे।

●

"कोई भी काम करो तो उसे मन लगाकर, विवेक-पूर्वक, परहित को ध्यान में रखकर करो। व्यर्थ की बातें न करो। दूसरों के काम में दखल मत दो। अपने वाक्-चातुर्य से कमजोरिया छिपाने का प्रयत्न न करो। अपने हृदय में बसने वाले परमात्मा की उपासना करो। धैर्य और नीति से कभी विचलित न होओ। जैसे योद्धा किसी क्षण भी आज्ञा पाते ही युद्ध में जाने को कटिबद्ध रहता है, ठीक वैसे ही मृत्यु का बुलावा आने पर उसके लिए तैयार रहो। हृदय को सच्चा और प्रसन्न रखो। दूसरो का सहारा तुम्हें क्यों चाहिए ?"

—मार्कस ओरेलियस

स्त्री शिक्षा का उद्देश्य

मुकुट बिहारी वर्मा

स्त्री-शिक्षा की दिशा में हमारे यहा निरन्तर प्रगति हो रही है, अनेक नई-नई सस्थाए सामने आ रही है, यह हर्ष की वात है। किन्तु स्त्री-शिक्षा की कोई दिशा निश्चित हो गई हो, ऐसा नही मालूम पडता। या तो पूर्व-निश्चित दिशा में ही बढा जा रहा है, या हर वात में पुरुषो की दिशा को ही ग्रहण करने की स्पर्द्धा है, इसीका स्वाभाविक परिणाम है कि पहले जहा स्त्रियो की शिक्षा के लिए अलग सस्थाए होती थी, अब पुरुषो के साथ-साथ ही स्त्रियो के भी बढने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। दिल्ली का लेडी हार्डिंज मेडिकल कालेज जो पहले केवल स्त्रियो की डाक्टरी पढाई के लिए सुरक्षित था, अब उसमें स्त्रियो के साथ-साथ पुरुष भी डाक्टरी की पढाई कर सकेंगे। पढाई जब एक ही हो, साथ ही पुरुष और स्त्री को दुनिया के हर क्षेत्र में सहकर्मी बनाने में आपत्ति न हो बल्कि प्रोत्साहन दिया जा ।, तब यह अस्वाभाविक और अनुचित भी नही। सहशिक्षा यानी पुरुष-स्त्री की एक ही जगह साथ-साथ पढाई से उनकी अलग-अलग सस्थाओ में अलग-अलग पढाई पर होनेवाला खर्च ही नही बचता, अलग-अलग लगनेवाली शक्ति भी एक ही जगह केन्द्रित होने से ज्यादा अ तरकारक हो जाती है।

वर्त्तमान स्थिति में उपर्युक्त क्रम को रोका नही जा सकता, न उसका विरोध ही किया जा सकता है। लेकिन फिर भी यह तो सोचा ही जा सकता है कि मानव-विकास के लिए क्या यही इष्ट स्थिति है, या इसमें कोई परिवर्तन अपेक्षित है? और इस बारे में कोई निर्णय करने से पहले हमें सोचना होगा कि प्रकृति ने सृष्टि-रचना में पुरुष-स्त्री को बिल्कुल एक-सा न बनाकर क्या हमें कोई सकेत नही दिया है? प्रकृति ने ही जब उन्हें एक-सा नही बनाया, बल्कि एक-दूसरे का पूरक बनाया है, तो शिक्षा ऐसी क्यो न हो जो पुरुष-स्त्री दोनो को एक-दूसरे का पूरक बनने में सहायक हो? जीवन-सघर्ष के लिए स्पर्द्धा आवश्यक होते हुए भी यह तो सोचना ही चाहिए कि कहा स्पर्द्धा हितकर है और कहा हानिकर। इस दृष्टि से देखें तो, सोचने की बात है, क्या आज की शिक्षा स्त्रियो को केवल पुरुष की प्रतिस्पर्द्धिनी बनने की ही प्रेरणा नही कर रही? अगर इसीसे सृष्टि-विकास का उद्देश्य सिद्ध होता हो तो इस क्रम को आगे बढने से हर्गिज नही रोकना चाहिए, लेकिन ऐसा न हो तो आख मीचकर इस पर चलने के बजाय ऐसा क्रम अवश्य सोचा जाना चाहिए जो सृष्टि-विकास के उद्देश्य को सिद्ध करने में सहायक हो।

जहा तक स्त्रियो के हर वात में पुरुष की स्पर्द्धा का सवाल है, हमारे विचार में, उसका कारण स्त्रिया अभी-तक जो काम करती आ रही है उन्हें हलके दर्जे के और पुरुष जो काम करते आ रहे है उन्हें ऊचे दर्जे के मानना है। भौतिकवाद बढता जा रहा है और अर्थ से हर चीज का महत्व आका जाने लगा है। अर्थोपार्जन या कमाई चूकि पुरुष का काम रहा है, समाज में उसको ऊँचा स्थान मिलने लगा है, स्त्रियो के कामो से जाहिरा अर्थोपार्जन नही होता इसलिए वे नीची मानी जाने लगी और इस स्थिति ने ही उन्हें पुरुषो के काम अपनाने तथा हर वात में पुरुषो की प्रतिस्पर्द्धिनी बनने की प्रेरणा की। दरअसल देखा जाय तो स्त्रियो का काम किसी तरह पुरुषो के काम से हीन नही है। इस दृष्टि से वह पुरुषो के काम से अधिक महत्वपूर्ण भी कहा जा सकता है कि पुरुष की बाहरी प्रवृत्तियो

को स्त्री के शासन में निष्कपट और निर्वाध विश्रान्ति मिलती है। यही नही, सृष्टि-विकास के लिए पुरुष से स्त्री को जो देन मिलती है, सन्तति के रूप में स्त्री उसे धारण ही नही करती बल्कि कष्ट उठाकर और अपने पर अकुश लगाकर उसका पालन-परिवर्द्धन करती है और उसे अपनी निरन्तर देखभाल तथा प्रेमपूर्ण खिलाई-पिलाई से दुनिया में टिक सकने लायक बनाती है। दु ख यही है कि पैसे को ही सब कुछ समझने की दौड में इस बुनियादी बात की उपेक्षा होती जा रही है, जिसका ही परिणाम है कि हमारी शिक्षा भी परस्परपूरक की जगह प्रतिस्पर्द्धापूरक बन रही है। विचारकों का काम है कि इस स्थिति पर विचार करें और प्रतिस्पर्द्धा के बजाय परस्परपूरकता की भावना पुरुषों और स्त्रियो में पैदा हो ऐसी शिक्षा-पद्धति को लाने का प्रयास करें। स्पष्ट ही इसके लिए हमारी सामाजिक धारणाएं भी बदलनी होंगी और यह बात गले बिठानी होगी कि सभी एक ही काम करेंगे तो दूसरे काम कौन करेगा, इसलिए किसी काम को दूसरे काम से छोटा या बडा न समझकर सभी को महत्वपूर्ण समझा जाय और शिक्षा का उद्देश्य यही हो कि उससे मन विकसित हो तथा हरएक काम को अधिक अच्छाई से करने की प्रेरणा मिले। ऐसा होने पर ही यह स्पष्ट होगा कि स्त्रियो के काम कम महत्वपूर्ण नही है और तब स्त्री-शिक्षा की दिशा ऐसी होगी कि शिक्षा पाकर स्त्रिया अपने काम छोडकर पुरुषों का पदानुसरण करने के बजाय अपने कामो को और अधिक अच्छी तरह करेंगी तथा ससार को—सृष्टि को—अधिक उन्नत बनाएंगी।

शारदा बनो!

बहनों को तो गहरा अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि सारा सामाजिक कार्य उनके हाथ में है। इस हालत में आक्रमणकारी शक्ति स्त्रियों में आनी चाहिए, सरस्वती की तेजस्विता आनी चाहिए। यह अल्प अध्ययन से नहीं होगा। आत्मज्ञान होना चाहिए। आज जो स्कूल में सिखाते हैं, वह ऊपर-ऊपर का, बाहरी ज्ञान सिखाते हैं। यह ठीक है, वह भी ज्ञान होना चाहिए। परन्तु ताकत देने वाली दूसरी चीज है, उसका अध्ययन करना चाहिए। बहनो को देखकर मैंने बहुत बार कहा है कि अध्यात्मनिष्ठ बनो, तब पुरुषों को दुरुस्त करने की शक्ति स्त्रियों में आयेगी। —विनोबा

नया आदमी

निज को ढूढो मिल जाएगा, अपना और पराया ।
एक वार फिर खोजो, मानव क्या है, क्यो है आया ?
उचित नही है आत्म-ज्ञान को सँकरी गली दिखाना ।
छल-छन्दो का वाध वाधकर झूठे स्वप्न सजाना ।।

ढूढो अर्थ नये जीवन का छोड शव्द की माया ।
एक वार फिर खोजो, मानव दानव की क्यो छाया ?

नये मूल्य है, नये माप है, लेकिन टूटा ढाचा ।
यदि मानव को नया वनाना है तो वदलो साचा ।
सुखमय जीवन नही साध्य है, वह साथी साधन का—
जीने का जो रग खेलता, वही काव्य फागुन का ।।

डूवी मानवता कहती है, 'जिन खोजा तिन पाया ।'
एक वार फिर खोजो, जीवन क्या है, क्यो है काया ?

निरुद्देश्य को कहना होगा, विन देखे चलते हो ।
अव रहस्य को भी वतला दो, तुम केवल छलते हो ।
सत्य नही जादू है, जो सिर पर ही चढ कर वोले ।
और कल्पना, जव प्रयास करती, तव पथ को खोले ।।

जो अभेद है, वह न भेद है, और न है प्रतिछाया ।
एक वार फिर खोजो, मनु के वेटे ने क्या पाया ?

जुगो-जुगो की जमी वर्फ पर पाव फिसलता जाता ।
जो रुक जाता, वह मर जाता, चले वही वढ जाता ।
श्रम के तन पर लगा पसीना, देखो सिद्धि यही है ।
युग अव झूठे स्वप्न देखने को तैयार नही है ।।

अव भविष्य को नही चाहिए गत गौरव, जो गाया ।
एक वार फिर खोजो, मानव मरकर फिर कव आया ?

—मेघराज 'मुकुल'

व्यक्तित्व की असीम शक्यताएं

श्री अरविन्द आश्रम का अनुभव

इन्द्रसेन

आधुनिक समय में मनोविज्ञान ने मनुष्य के दृष्टिकोण को विशेष रूप से प्रभावित किया है। जीवन के लगभग हर क्षेत्र में शिक्षा, साहित्य और कला ही नही बल्कि उद्योग, व्यवसाय और युद्ध में भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो की उपेक्षा नही की जा सकती। किसी व्यक्ति को जीवन में व्यवसाय के रूप में क्या काम करना चाहिए, यह मनोविज्ञान की एक वृहत् शाखा का विषय है। इस विज्ञान से क्रियात्मक लाभ उठाने के लिए अनेक राज्यो में सरकार की ओर से प्रयोगशालाएँ बनी हुई हैं और विशेषज्ञ, परीक्षक और परामर्शदाता नियुक्त है। इस विज्ञान का आधारभूत तथ्य यह है कि हर धन्धे और पेशे में विशेष शारीरिक, मानसिक और नैतिक योग्यताओ की आवश्यकता है और कार्यकुशलता और सफलता की दृष्टि से उनमें केवल उन्ही व्यक्तियो को जाना चाहिए जिनमे वे योग्यताएँ हो। बिना सोचे-विचारे किसी धन्धे को जीवन-कार्य के तौर पर स्वीकार नही कर लेना चाहिए। ऐसा करने से ही जीवन में असामञ्जस्य तथा सकट पैदा हो जाते हैं। इसलिए इस विज्ञान ने सभी पेशो का मनोवैज्ञानिक विश्लेपण तैयार किया है और व्यावहारिक युक्तियाँ निकाली है जिनसे व्यक्तियो की योग्यता को जानकर उन्हे उपयुक्त पेशे के लिए परामर्श दिया जाता है।

परन्तु भारतीय अध्यात्मवाद एक नई ही दृष्टि उपस्थित करता है और वह श्री अरविन्द आश्रम में क्रियात्मक रूप में देखने को मिलती है। यहाँ आप देखेंगे कि जो पहले प्रोफेसर था अब बढईघर का अध्यक्ष है या घरो में जा-जाकर बिजली के फ्यूज लगाता है, जो फौज में सार्जेण्ट था अब स्कूल का अध्यापक है तथा जो अध्यापक था वह मकानो की मरम्मत करवा रहा है। सभी प्रकार के ऐसे चिन्त्य तथा अचिन्त्य सम्बन्ध आपको देखने को मिलेंगे। दर्शको को इसमें आश्चर्य होता है और उनमें से अनेक यह जानने का यत्न करते है कि इसमें वास्तविक विचार क्या है ?

अध्यात्मवाद और व्यावसायिक मनोविज्ञान में अतर वस्तुत यह है कि जहा व्यावसायिक मनोविज्ञान मन तथा शरीर और उनकी शक्यताओ को जाचता है वहा अध्यात्मवाद आत्म को प्रेरित, जाग्रत और परिचालित करना चाहता है। मन और शरीर की शक्यताए सीमित है परतु आत्मा विशाल है और मन और शरीर को नई प्रेरणा देकर उनमें नई शक्यताओ को भी प्रकट कर सकती है। इसलिए आश्रम में काम पूर्व अभ्यास अथवा योग्यता के आधार पर ही नही दिया जाता। यहा आशा यह की जाती है कि साधक अपने आपको असीम दिव्य शक्ति की ओर खोले, सदा नमनशील रहे और नए सामर्थ्यों के उद्भूत होने के लिए प्रतीक्षावान रहे। इसलिए काम के सबध में साधक की यह वृत्ति नही होती कि "अमुक काम तो मैं नही कर सकूगा, उसकी तो योग्यता मुझमें नही, वह मैंने पहले कभी किया ही नही।" इसके विपरीत उसकी वृत्ति होती है अथवा होनी चाहिए "जो कुछ मुझे करने को दिया जायगा उसे मैं पूरे समर्पण से करूँगा, यदि आज वह नही हो पायगा तो कल परसो अथवा अतरसो सर्वशक्तिमान भगवान् की कृपा और प्रेरणा से जरूर सभव हो जायगा।" भारतीय सस्कृति ने अपनी एतद्विषयक

धारणा को इन शब्दो में "यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि" खूब बलपूर्वक व्यक्त किया है। वास्तव में इस दृष्टिकोण, इस भाव में ही विशेषता है। वह यह कि आप अपने आपको सीमित स्वीकार करते हुए असीम शक्ति के प्रति खोलते हैं, उसके लिए अभीप्सा करते है। इस अभीप्सा की सत्यता और स्थिरता से एक सबध स्थापित हो जाता है जो सारे व्यक्तित्व में एक प्रकार की स्वाभाविकता को जाग्रत करता है और उससे उपेक्षित, दमित तथा प्रयोजनीय पूरक शक्यताए प्रकट होती हैं।

व्यावसायिक मनोविज्ञान की पहली मान्यता ही ऐसे विकास के लिए बाधा है। यदि आप यह मानते है कि आपकी शक्यतायें स्थिर और निश्चित है और उन्हें आपने परीक्षणो द्वारा जान लिया है तो आप उन्हें ही विकसित करना चाहेंगे, नई शक्यताओ की सभावना से ही इन्कार कर देंगे। यह दृष्टिकोण नवीनतम मनोवैज्ञानिक खोज से भी अशुद्ध ठहरता है, क्योकि मनोविज्ञान उत्तरोत्तर अनुभव करता जाता है कि अभी हम मानवी व्यक्तित्व को बहुत कम जानते है, हमें इसके बारे में हठ से कुछ भी नही कहना चाहिए।

अध्यात्मवाद के दृष्टिकोण के क्रियात्मक फल इस विषय के लिए आश्रम-जीवन की विशेष देन है। जो कविता से कोसो दूर प्रतीत होते थे उन्होने कविता करने की प्रेरणा अनुभव की और खूब सफल कविता लिखी। जो अव्यावहारिक बुद्धि सेवी थे उन्होने अच्छी कार्य कुशलता पैदा की। आश्रम जीवन इस प्रकार के अनेक दृष्टात उपस्थित करता है। अवश्य ही, यह हमारे आधुनिक विज्ञानवाद के लिए विशेष विचारणीय है।

●

"मेरे खयाल से तो जैसे विधुर अपनी पत्नी के मरने के बाद विधुरपन की कोई निशानी शरीर पर नहीं रखता, वैसे ही विधवा को भी बाहरी चिह्न रखने की कोई जरूरत नहीं है। जिस बहन ने आत्मा के अमर होने की दृष्टि से विचार किया है, वह दृष्टि तो ठीक है, पर ऊँची कहलायेगी। मैं तो सिर्फ न्याय की दृष्टि से विचार कर रहा हूँ। तब भी हृदय में से जवाब निकलता है कि विधवा को अपने वैधव्य की सतत् रक्षा करने की इच्छा हो, तो भी उसे बाहरी निशान रखने की बिल्कुल जरूरत नहीं है।" —मो० क० गान्धी

डॉ० सत्यप्रकाश

राजस्थानी चित्रकला का ध्रुव बिन्दु है नारी। राजस्थानी चित्रकला की प्रत्येक उपशैली में नारी को एक प्रकार मे अंकित न करके विभिन्न प्रकार मे अंकित किया गया है।

राजस्थान की चित्रकला यहा की त्रिगुणात्मक भूगोल संबंधी विशेषता के साथ-साथ नारी की त्रिगुणात्मक भावना को अपने में स्थान देती रही है। यहा, कही तो नारी शृगार की प्रतिमा है, कही वीरबाला का रूप लेकर धधकती हुई चिता में अपने को आत्मसात करती दीख पडती और कही वह भक्ता के रूप में 'मैं तो गिरधर के सग नाचूगी' भावना को व्यक्त करती हुई दिखाई देती है।

राजस्थानी चित्रकला में इन्ही तीन भावनाओ की साक्षात मूर्ति बन कर नारी कलाकारो की भावना का विषय बन गई है।

राजस्थानी चित्रकला भारतीय चित्रकला की नौ उप-शैलियो का सामूहिक नाम है। यह उप-शैलिया राजस्थान के भूतपूर्व राज्यो के नाम पर अस्तित्व में आई। विभिन्नता में एकता के दर्शन करना भारतीय संस्कृति का ध्येय रहा है। उसी की पुष्टि यहा की कला, नौ विभिन्न शैलियो के सामूहिक नाम मे राजस्थानी चित्रकला के रूप में करती है। राजस्थानी चित्रकला की यह नौ उप-शैलिया जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, नाथद्वारा, कोटा, बूदी, अलवर और जैसलमेर उप-शैलिया कहलाती है। लगभग इन सब उप-शैलियो के चित्रो में नारी का अकन हुआ है। कही तो नारी भगवान कृष्ण की अर्द्धागिनी के रूप में उपस्थित होती है, कही वह यशोदा के रूप में कृष्ण की माता का प्रतिनिधित्व करती है और कही वह राजा की रानी के रूप में प्रस्तुत है। राजस्थानी चित्र-कला में नारी नायिका भेद के सभी रूपो में प्रदर्शित की गई है। जयपुर कलम के चित्रो पर मुगल शैली के चित्रो का पूर्ण प्रभाव है। इन चित्रो की प्रारम्भिक कृतियो में धार्मिक पात्र भी मुगलो की सी पोशाक पहिने है। नारी को मलका जैसी पोशाक पहिनाई गई है।

इन चित्रो में नारियो के अधर मोटे पर ललाई लिये हुए, नेत्र काजलयुक्त एव मादकता पूर्ण, मुख यौवन की आभा की छाप लिये हुए तथा खिचे हुये समस्त अवयव। स्त्रियो की वेणी कमर तक झूलती हुई तथा उनका प्रत्यग आभूषणो के भार से लदा हुआ। नारियो की पोशाक घाघरो और लूगडी को स्थान देती है पर घाघरे राजसी ठाठ लिये हुए है। घाघरो पर मोती टके है तथा लूगडी में सुहावना रग है। स्त्रियो के पैरो में जूते है, वे सब काम-दार है। कुछ रग चटक रगो को स्थान देते हुए तथा कुछ स्याह कलम के है। रगो की समानता तथा स्वर्ण के चमकते आलेखन इन चित्रो में देखते ही बनते है।

जयपुर शैली के राजस्थानी चित्रो में रागरागिनी बारहमासा तथा कृष्ण राधा उपाख्यानो के आधार पर नारी रूप का चित्रण हुआ है।

जयपुर शैली के चित्रो के समान अलवर शैली के चित्रो में भी नारी की आकृति का चित्रण प्रभावपूर्ण है।

इस शैली के चित्र, जहा तक आकृति का सवध है, जयपुर के समान ही हैं। परन्तु चित्रो में स्त्रियो की मुखाकृति सुन्दर होती हैं, वेणी उठी हुई होने के साथ-साथ गोलाकार होती है। नारी का रूप लावण्यता लिये हुए है।

राग-रागिनी तथा कृष्ण राधा सवधी चित्रो में भी नारी के रूप का अकन वहुत सुन्दर हुआ है। पर ऐसे चित्र वहुत अधिक सख्या में नही बने। इन चित्रो में रग सयोजन अच्छा हुआ है। नारी रूप जव से नायिका के माध्यम से चित्र में स्थान पा गया है तव से नारियो के वाल खुले न होकर, जूडे में वधे प्रदर्शित हैं। नारियो का चेहरा गोल तथा भरा हुआ है, उनके होठ मोटे तथा रक्तिम है पर उतने लाल नही हैं जितने कि जयपुर शैली के चित्रो में। नेत्रो में कृत्रिमता नही, उनमें सम्पूर्ण स्वाभाविकता है। नारी का कद नाटा सा है और वस्त्राभूषणो में रग की प्रखरता है। घाघरा-लूगडी के अलावा कही कही साडी भी पहिनाई गई है। घावरो का रग अधिकतर आसमानी तथा सुनहरा काम किया हुआ है। साडिया अधिकतर वारीक हैं तथा उनपर गोटे का उलटा भाग वडे स्वाभाविक ढग से प्रदर्शित किया गया है।

जोधपुर का क्षेत्र मरु भूमि होने पर भी कला के क्षेत्र मे महत्व का रहा है। यहा से सवधित मारवाडी या जोधपुर शैली की, राजस्थानी चित्रकला, भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक विशेष स्थान रखती है। नारियो की आकृति का अकन यहा वारहमासो, राग-रागिनियो एव केशवदास की कृतियो के चित्रण में हुआ है। इसके अतिरिक्त ढोलामारू के चित्रो में सखीहो में नारी की आकृति कही-कही स्थान पा गई है।

इन चित्रो में नारी की आकृति वहुधा लम्वी है। वस्त्राभूपण इनमें कही पूरे मुगल ढग के तो कही राजस्थानी ढग के है। नारियो की आकृति के अकन में ललाट निकला हुआ, वालो की लटें कपोलो तक लटकती हुई तथा ललाट के दोनो ओर पहियो के रूप में खिंची होती हैं। नेत्र वडे तथा ऊपर की ओर उठे हुए तथा कानो को छूते हुए दीख पडते हैं। होठ लाल तथा मुस्कानयुक्त है। गरदन अक्सर लम्वी है। नारिया नख-शिख शृगार की मानो प्रतिमूर्ति दीखती है। चित्रो में लाल व पीले रग के साथ साथ सुनहरा काम भी देखने को मिलता है।

जयपुर तथा जोधपुर के चित्रो की तरह वीकानेर शैली के चित्रो में भी नारियो की आकृतियो पर मुगल शैली की छाप है। यहा की चित्रकला जोधपुर के वहुत ही निकट है। लालगढ में वने दीवालो पर के चित्र सभी बीकानेर शैली के चित्र है। इन सव चित्रो तथा अन्य चित्रो में नारियो की वेप-भूपा सुनहरे रग की है। सुनहरी वुदकिया घाघरे पर भी वनी दिखाई दी है।

जैसलमेर की चित्रकला में नारी का चित्रण कुछ भिन्न हुआ है। उसमें नारी का मुख दुर्वल है पर सुन्दरता लिये हुए है। नेत्र कटाक्षयुक्त तथा यौवन से युक्त शरीर देखने को मिलता है। कटि क्षीण, भुजायें दुर्वल तथा अगुलिया भी पतली पतली हैं। नारी की प्रतिमा इन सव चित्रो में फारसी शैली के चित्रो में चित्रित नारी से होड करती हुई साक्षात् नजाकत का रूप लिये हुए है।

इससे विलकुल विपरीत हाडोती शैली के चित्रो में नारी का अकन राजस्थान की परम्परा के अनुकूल है। यहा के चित्रो में नारी वीरागना होते हुए भी लावण्ययुक्त सौन्दर्य लिये हुए है।

कोटा शैली की विशेषता ही नारी सौन्दर्य पर निर्भर है। कोटा शैली के चित्रो में अग प्रत्यग का आलेखन, नख-शिख वर्णन की दृष्टि से वहुत अनुपम हुआ है। रावा कृष्ण की लीला में नारी की आकृति का वहुत सुन्दर अकन किया गया है।

वूदी के चित्रो में राग-रागिनिया, नायिका भेद, ऋतु, मास तथा कृष्णलीला के चित्रो में भी नारी का वडा मनमोहक अकन है। स्त्रियो के अकन में अधरो की अरुणाई देखते ही वनती है। नेत्र अर्धोन्मीलित, अधरो पर मुस्कान, नासिका छोटी, मुख की आकृति गोल तथा ग्रीवा नीचे की ओर कुछ दवी हुई यहा के चित्रो की विशेपता

है। वेणी पृष्ठ भाग से नीचे तक झूलती है। वस्त्रों में घाघरा काला रंग लिये तथा लूगड़ी चुनड़ी के रूप में अधिक-तर प्रदर्शित हुए हैं। अलंकारों का प्रयोग तो प्रायः सभी अंगों पर किया गया है।

उदयपुर शैली की राजस्थानी चित्रकला में नारी का प्रदर्शन रामायण, बिहारी सतसई, भागवत, पृथ्वीराज रासो आदि चित्रों में हुआ है। यहां के चित्रों में नारी सरलता की साक्षात् प्रतिमा सी है। अमरसिंह के बाद से तो मुगल छाप वेष भूषा आदि पर पड़ी सिर्फ़ पर स्त्री अपने राजस्थानी गौरव को संजोती हुई सी दीख पड़ती है। उनकी आंखें मछली की सी, नाक लम्बी तथा वेश-भूषा राजस्थानी, आभूषण सभी आवश्यक अंगों पर तथा वेणी कमर से नीचे लटकती दीख पड़ती है। नारियां चित्रों में लम्बी बाहुओं तथा लम्बे कलेवर को स्थान देती हैं। उनके घाघरे पांवों को पूरी तरह ढकते हैं। नाक गोल तथा कटि क्षीण व अधर मुड़े हुए होते हैं। लूगड़ी छोटी तथा घाघरे के चारों ओर लिपटी हुआ करती है।

नाथद्वारा, उदयपुर के निकट होने पर भी अपने से सम्बन्धित चित्रकला को उदयपुर की चित्रकला से विभिन्न रूप में देने में सफल हुआ, यह विचारणीय बात है। यहां के चित्रों में स्त्रियों की आंखें बड़ी, अधर मोटे, कलेवर छोटा तथा शरीर पुष्ट होता है। यशोदा का ही चित्रण यहां स्त्री के रूप में हुआ है। चित्र को देखने से ही शरीर की स्थूलता तथा भावों में वात्सल्य रस की प्रधानता दृष्टिगोचर होने लग जाती है। भगवान की भक्ति से सम्बन्धित चित्रों में नारी का अंकन बहुत ही कम हुआ है और हुआ भी है तो वह यशोदा को कृष्ण जी को ताड़ना करते हुए तथा अन्य इसी प्रकार से। (कुछ चित्रों में दर्शकों की भीड़ में नारियों का अंकन किया गया है। स्त्रियों की पोशाक बहुत सादी तथा धार्मिक भावना से ओतप्रोत है।)

राजस्थान की किशनगढ़ शैली के चित्र सबसे महत्वपूर्ण ढंग से नारी के रूप का अंकन करते हैं। इन चित्रों में नारी का रूप जिस ढंग से प्रदर्शित हुआ है वैसा अन्य नहीं हुआ है। चित्रों के विषयों में राग रागिनी तथा श्रीकृष्ण की शृंगारिक लीलायें हैं। नारी का अंकन ही यहां की कला को परखने की कसौटी है। गीतगोविन्द की शृंगारिक भावनायें चित्रकार ने अपनी तूलिका द्वारा बड़े अनुपम ढंग से अंकित की हैं।

नारियों के चित्रण में बिखरे हुए केश स्कन्धों तथा कटि प्रदेश तक छाये दिखलाये गए हैं। ललाट उन्नत है तथा शरीर फूल से सुसज्जित है। लम्बी नथ लटकती हुई तथा आंखों में काजल, अलंकार किये हुए भृकुटी ताने हुए नेत्र कटाक्ष करने की मुद्रा में, इन चित्रों की विशेषता है। वस्त्रों में राजस्थानी वेशभूषा का प्रयोग है तथा मुख और हाथों पर सभी आवश्यक आभूषण बड़े सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किये गए हैं। रेखाओं द्वारा वालों की सलवट तथा सीने के जाल से चुनरी का सुशोभित होना यहां के चित्रों की विशेषता है। नारी इन चित्रों में कवि के शब्दों में 'कनकलता सी कामिनी' का साक्षात् रूप है।

इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला की विविध उप-शैलियों के नारी का अंकन कई तरह से हुआ पर इतना होते हुए भी हमें विविधता में एकता के दर्शन होते हैं और वह एकता है सौन्दर्य के भाव की। यह भाव अलग-अलग उप-शैलियों के चित्रों में, अपने अपने ढंग से प्रदर्शित किया गया है। यह प्रयास हमारी भारतीय संस्कृति में निहित तत्वों के अनुरूप ही है।

●

"मुझे सुमाताएँ दे सको तो मैं तुम्हें एक महान् जाति बना सकता हूँ।"
—नैपोलियन बोनापार्ट

शोभालाल गुप्त

समाज में नारी का क्या स्थान हो, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न के सही उत्तर पर समाज का सुख, शान्ति और समृद्धि निर्भर करती है। हमारा समाज स्त्री और पुरुष दोनो से मिल कर बना है। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष के स्वभाव में कुछ अन्तर अवश्य रखा है, किन्तु यह शारीरिक भेद दोनो की मौलिक एकता को प्रभावित नही करता। शरीर जड है, किन्तु उसमें निवास करने वाली आत्मा चेतन है। स्त्री-शरीर में और पुरुष-शरीर में एक ही आत्मा निवास करती है। *आत्मा के गुण समान है, लिंग भेद केवल शारीरिक है। आत्मा को* यह भेद स्पर्श नही कर सकता। इस मौलिक तथ्य के आधार पर हम स्त्री और पुरुष के अधिकारो में कोई भेद नही कर सकते। न पुरुष किन्ही विशेष अधिकारो का दावा कर सकता है और न स्त्री को किन्ही विशेष अधिकारो से वञ्चित किया जा सकता है। स्त्री और पुरुष की समानता को हमें हर हालत में स्वीकार करना होगा।

इस विश्व के प्रत्येक प्राणी में कोई-न-कोई विशेषता होती है। पुरुष में अपनी विशेषताएँ है। पुरुष में शारीरिक सामर्थ्य अधिक होता है और स्त्री इस दृष्टि से थोडी निर्बल होती है। किन्तु जहाँ तक बौद्धिक और मानसिक गुणो का सम्बन्ध है, दोनो समान स्तर पर खडे हो सकते है। यह भी हो सकता है कि कुछ विशेष गुणो में स्त्री पुरुष से बाजी मार ले जाय। स्त्री और पुरुष एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। वे एक दूसरे की पूर्ति करते हैं। वे एक रथ के दो पहिये हैं। एक पहिया बडा और दूसरा छोटा हो तो रथ ठीक प्रकार से नही चल सकता। अत स्त्री और पुरुष को विकास का समान अवसर मिलना चाहिए।

प्राचीन काल में हमारे देश म स्त्री-पुरुषो को समान दर्जा प्राप्त था। भारत के प्राचीन विधि निर्माता मनु महाराज ने कहा है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान किया जाता है, वहाँ देवता निवास करते है। भारत के प्राचीन इतिहास में ऐसी अनेक नारियो के नाम मिलते है, जिन्होने अपनी ज्ञान-साधना और तपस्या के बल पर समाज में पूजनीय स्थान प्राप्त किया। अनसूया और अरुन्धती, गार्गी और मैत्रेयी, सीता और सावित्री, रुक्मिणी और सत्यभामा आदि का हम आज भी आदर और श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं और उनसे प्रेरणा लेते है। प्राचीन वैदिक काल में स्त्रियो को सास्कृतिक विकास का पूरा अवसर प्राप्त था और विचार और कार्य की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। भारतीय सस्कृति और परम्परा में स्त्री को पुरुष से कभी नीचा नही समझा गया। रामचन्द्र जी को यज्ञ करना हुआ और तब सीता वनवास में थी तो सीता की स्वर्ण प्रतिमा को रख कर यज्ञ सम्पन्न किया गया।

किन्तु समय के परिवर्तन के साथ स्त्रियो के दर्जे में भी परिवर्तन हुआ। सामन्ती युग में स्त्रियो की स्वतन्त्रता छिन गई। पुरुष स्त्री को अपनी वासना पूर्ति का साधन समझने लगा। धीरे-धीरे स्त्रियाँ ज्ञान प्राप्ति के साधन से वञ्चित हो गई। उन्हे घरो की चारदीवारी में कैद रखा जाने लगा। उन्हे असूर्यम्पश्या बना दिया गया। जन्म से लगा कर मृत्यु तक उन्हे परवशता की जञ्जीरो में जकड दिया गया। यह विधान किया गया कि बालपन

में उन्हें पिता के आधीन, युवावस्था मे पति के आधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहना चाहिए। पुरुष ने यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि वह चाहे जितनी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है। धर्म की सारी मर्यादाएँ स्त्री के लिए थीं। पुरुष सब तरह से सर्वतन्त्र स्वतन्त्र था। पति के मरने पर स्त्री का धर्म था कि वह उसके शव के साथ चिता पर जीवित जल जाय। इसको सती प्रथा का नाम दिया गया। किसी-किसी उदाहरण में यह पति-पत्नी के आदर्श प्रेम की निशानी हो सकती थी, किन्तु धीरे-धीरे उसने रूढि का रूप धारण कर लिया और उसमें बलात्कार का तत्त्व भी जुड गया। हिन्दू समाज में विधवाओ की दयनीय दशा हो गई। उन्हें घर के भीतर दासी का-सा जीवन बिताना पडता। बाल-विवाहों की सख्या बढी और जो स्त्रियाँ छोटी उम्र में विधवा हो जाती, उनका जीवन दूभर हो जाता। राजस्थान में तो कन्या का जन्म भीषण अभिशाप माना जाता था। राजपूतो में कन्या को जन्म के साथ ही खाट के पाये नीचे दबा कर मार डाला जाता था। दास-प्रथा का भी बोलबाला हुआ। राजा-महाराजा और सामन्तो के यहाँ दहेज के रूप में दास-दासी भी दिये जाते थे। दास-दासी के शरीर पर उनके मालिको को सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त था। पर्दा-प्रथा ने स्त्रियों की शक्ति को हर प्रकार से कुण्ठित कर दिया। स्त्रियो की माल-असबाब में गिनती होने लगी। मानव-समाज के आधे भाग को पगु बना दिया गया। कोई आश्चर्य नही कि उसके साथ ही समाज पतन की ओर अग्रसर हुआ। सामाजिक उत्पीडन ने अनेक स्त्रियो को पतन के मार्ग पर जाने के लिए बाध्य किया। आर्थिक दुरवस्था का शिकार होकर अनेक नारियाँ अपने शील को बेचने के लिए विवश हुई।

स्त्रियों के साथ हीन व्यवहार करने के लिए कुछ लोग धर्म-शास्त्रो का सहारा लेते हैं। पश्चिमी देशो में पोप-पादरियों ने धर्म के नाम पर स्त्रियो को हीन दर्जा दिया। स्त्री-स्वतन्त्रता के एक प्रबल समर्थक जार्ज ब्राडबर्न ने कहा था—"महानुभाव, आप यह सिद्ध कर दीजिए कि आपकी बाइबिल स्त्रियो की गुलामी का समर्थन करती है, कि आधी मानव जाति शेष आधी मानव जाति की सम्पूर्ण अधीनता में रहनी चाहिए तो मैं मानवता के लिए सबसे अच्छा काम यही समझूगा कि दुनिया भर की तमाम बाइबिलो को इकट्ठा करके उनकी होली जला डालू।" भारत में पण्डे पुरोहितो ने भी वही काम किया। स्त्रियो की हीन दशा को प्रमाणित करने वाले स्मृतियों के प्रमाणो के बारे में गान्धीजी ने लिखा था "यह दु ख की बात है कि स्मृतियो में ऐसे अश मौजूद है, जिनका वे लोग आदर नही कर सकते जो स्त्री स्वातन्त्र्य के समर्थक हैं और जो स्त्री को मानव जाति की माता मानते हैं। स्मृतियो में परस्पर विरोध है। इस पर से एक ही युक्तिसगत निष्कर्ष निकलता है कि जो अश ज्ञात और स्वीकृत नैतिकता के विरुद्ध है, वे स्मृतियो में बाद में घुसेडे गये है और उन्हे स्वीकार नही किया जा सकता।"

कुछ लोग स्त्री को अबला कहने का दुस्साहस करते है। उन्हें गान्धीजी ने बडा कटु उत्तर दिया है। गान्धीजी ने लिखा है "स्त्री को अबला कहना एक घोर अपराध है। यह स्त्री के प्रति पुरुष का अन्याय है। यदि शक्ति से अभिप्राय पाशविक शक्ति से है तो निश्चय ही स्त्री पुरुष की अपेक्षा कम पाशविक है। किन्तु यदि शक्ति से अभिप्राय नैतिक शक्ति से है तो स्त्री पुरुष से कही अधिक श्रेष्ठ है। स्त्री अहिंसा के क्षेत्र में पुरुष से ज्यादा साहस दिखा सकती है। आत्म-बलिदान करने में स्त्री पुरुष से हमेशा आगे रहेगी। स्त्री को यह भान नही होता कि वह अपने पति पर कितना सद्प्रभाव डाल सकती है। अनजाने वह अपना असर डालती रहती है। किन्तु उसे अपनी शक्ति का भान होना चाहिए। यह चेतना उन्हें शक्ति प्रदान करेगी और मार्ग दिखाएगी। अहिंसा के वातावरण में स्त्री अपने को निर्बल, निस्सहाय और पराश्रित समझ ही नही सकती। स्त्री जब पवित्र होगी, तो वह निस्सहाय नही हो सकती। पवित्रता से उसको शक्ति मिलेगी।" अन्याय और अत्याचार को मिटाने के लिए स्त्री ने दुर्गा और काली का रूप धारण किया है। वह सिंहवाहिनी और खड्गधारिणी बनी है। समाज में सुख और शान्ति की स्थापना

के लिए उसने सरस्वती और लक्ष्मी का रूप धारण किया है। शक्ति, ज्ञान और ऋद्धि-सिद्धि की प्रतीक नारी अबला कैसे हो सकती है?

पश्चिम में स्त्री को समानता और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में स्त्रियों की समानता को स्वीकार करने में कोई विशेष अड़चन पेश नहीं आई। राजनीतिक क्षेत्र में हमारे संविधान ने वयस्क मताधिकार स्वीकार किया है। उसके अनुसार स्त्रियों को भी मत देने का अधिकार मिल गया है। हमारा संविधान राजनीतिक अधिकारों के मामले में जाति, धर्म और लिंग का कोई भेद नहीं करता। स्त्रियाँ विधान मण्डलों में प्रवेश कर सकती हैं और देश के शासन कार्य में हिस्सा बँटा सकती हैं। आज अनेक स्त्रियाँ ऊँचे-ऊँचे पदों पर काम कर रही हैं। उन्होंने राज्यपाल, राजदूत और मन्त्री जैसे पदों को सुशोभित किया है। स्त्रियों के सामाजिक और साम्पत्तिक अधिकारों को स्वीकार करने वाले अनेक कानून बनाये गए हैं। अब एक पत्नी के जीवित रहते पुरुष दूसरा विवाह नहीं कर सकता। विधवा को अपने पति की सम्पत्ति से वञ्चित नहीं किया जा सकता। लड़के की भाँति कन्या को भी अपने पिता की सम्पत्ति में से हिस्सा देने की व्यवस्था की गई है। स्त्री का सम्बन्ध विच्छेद का अधिकार स्वीकार कर लिया गया है। स्त्री देश की शिक्षण संस्थाओं में ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकती है और डाक्टर, वकील, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ आदि किसी भी पेशे को अपना कर समाज की सेवा कर सकती है। स्त्रियों के बन्धनों को तोड़ने में जिन समाज-सुधारकों ने योग दिया है, उनमें राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। महात्मा गान्धी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में स्त्रियों की शक्ति का उपयोग किया। उनको पर्दे से बाहर निकाला, उनमें आत्म-विश्वास पैदा किया और उनसे विदेशी कपड़ों की दुकानों और शराब की दुकानों पर धरना दिलवाया। भारत की स्वतन्त्रता में स्त्रियों ने कम महत्त्वपूर्ण भाग नहीं लिया और उसीका यह परिणाम है कि आज स्त्रियाँ समाज में पुरुषों के बराबर कन्धा भिड़ा कर आगे बढ़ रही हैं।

पश्चिम में स्त्रियों को स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त हुई। किन्तु उन्होंने इसका ठीक सदुपयोग नहीं किया। स्त्रियों ने पुरुषों के अवगुणों का अनुकरण करना शुरू कर दिया। वासनाओं को खुली छूट दे दी। उन्होंने उच्च नैतिक मापदण्ड की स्थापना नहीं की। इससे पश्चिम के सामाजिक जीवन में एक कुण्ठा उत्पन्न हो गई है। स्त्रियों के जीवन में एक तीव्र असन्तोष दृष्टिगोचर हो रहा है। भारतीय स्त्रियों को पश्चिम का अन्धानुकरण नहीं करना है। स्त्रियों को ज्ञान अर्जित करना है। स्त्रियों को अपने घर को सँभालना है और सामाजिक जीवन में भी हिस्सा लेना है। उन्हें स्वास्थ्य और सफाई के नियम जानना चाहिए। उन्हें शिशु संगोपन की कला आनी चाहिए। बालक के भविष्य की असली निर्माता उसकी माता ही होती है। हम स्त्री को घर की चारदीवारी में कैद रखने की भूल नहीं कर सकते। समाज के लिए ऐसे अनेक काम हैं, जिनको स्त्रियाँ ही अच्छी तरह कर सकती हैं। परित्यक्त बहनों और निराश्रित बच्चों को स्त्रियों से अच्छा और कौन सँभाल सकता है? हमको स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वे अपनी गृहस्थी का भलीभाँति सञ्चालन कर सकें। किन्तु हम उनके लिए सामाजिक क्षेत्र के द्वार भी बन्द नहीं करेंगे। हमारे देश में स्त्रियों को कानूनी समानता मिल गई है, किन्तु उनमें उचित शिक्षा का अभी अभाव है। स्त्रियों में निरक्षरता पुरुषों से कहीं अधिक है। अतः देहातों और शहरों में हमको स्त्रियों में नई चेतना और जागृति पैदा करनी होगी, ताकि वे वास्तव में स्वतन्त्रता और समानता का उपभोग कर सकें। स्त्रियों को अपने चारित्रिक और नैतिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए हमेशा जागरूक रहना होगा। नैतिकता और चरित्र बल की आधार शिला पर समाज की उन्नति का महल खड़ा किया जा सकेगा।

शिक्षा में मानसिक स्वास्थ्य विधि

प्रोफेसर ईश्वरचन्द्र शर्मा

वहुत से व्यक्तियो का विचार है कि स्वास्थ्य की वात, चाहे वह शरीर सम्वन्धी हो अथवा मन सम्वन्धी केवल रोग ग्रस्त व्यक्तियो के लिए ही उपयोगी है, किन्तु इस प्रकार की धारणा मिथ्या तथा भ्रामक है। जिस प्रकार कोई हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ शरीर वाला व्यक्ति शक्तिशाली स्वास्थ्य के कारण आसानी से रोग ग्रस्त नही होता, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य वाला व्यक्ति मानसिक रोगो से वचा रहता है। अत वचाव के दृष्टिकोण से मानसिक स्वास्थ्य का होना निश्चित रूप मे लाभदायक है। जव हम यह कहते है कि स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य को वनाए रखना अत्यावश्यक है तो इसका अभिप्राय यह नही समझना चाहिए कि हमारा शारीरिक स्वास्थ्य उपेक्षणीय या अवाछनीय है। इसके विपरीत मानसिक स्वास्थ्य वनाए रखने के लिए शारीरिक स्वास्थ्य न केवल आवश्यक ही है, अपितु अत्यन्त अनिवार्य है। जव तक शरीर स्वस्थ न होगा, कोई भी मानसिक क्रिया सुचारु रूप से नही की जा सकती। महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव में कहा है —

"शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्।"

धर्म को सफलतापूर्वक चलाने के लिए, सवमे प्रथम साधन शरीर है। अर्थात शरीर स्वस्थ न हो तो कोई कार्य ठीक तरह से सम्पन्न नही किया जा सकता है। मानसिक स्वास्थ्य की शारीरिक उपाधियाँ अभी तक सुनिश्चित नही की जा सकी है, किन्तु काफी सीमा तक विद्वानो ने इस विषय में खोजें की है।

'मानसिक स्वास्थ्य विधि' का क्षेत्र वहुत ही विस्तृत है, अत वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न विज्ञानो से सहायता लेती है। जो विज्ञान किसी भी दृष्टिकोण से मानसिक स्वास्थ्य को वनाए रखने में सहायता देता है उसका 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' पूर्णतया उपयोग करती है। मनोविज्ञान तथा शरीर विज्ञान दोनो ही 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' के नियमो पर पर्याप्त प्रकाश डालते है। इसी प्रकार समाज विज्ञान (Sociology), जीव-रसायन-शास्त्र (Bio-chemistry), चिकित्सा-मनोविज्ञान, जीव-शास्त्र, कीटाणु-शास्त्र (Bacteriology) तथा शिक्षा-विज्ञान (Pedagogy) इत्यादि 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' को सहायता देते है।

इसमें कोई सन्देह नही कि 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' छोटे-मोटे मानसिक रोगो का उपचार भी करती है, किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य हमारी उत्तम शक्तियो की खोज करके, उनकी वृद्धि करना तथा हमारे जीवन को अधिक उपयोगी वनाना है। अत एक ओर तो 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' हमें मानसिक रोगो से वचाती है और दूसरी ओर यह हम सवका मगल करती है। नि सन्देह 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' केवलमात्र सिद्धान्त नही है और न ही उसका उद्देश्य केवल मानसिक स्वास्थ्य को समझना मात्र ही है, वल्कि उसका उद्देश्य तो वास्तविक रूप में स्वास्थ्य की रक्षा और वृद्धि करना है। अत मानव के जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक 'मानसिक स्वा थ्य विधि' हमारे जीवन में व्यावहारिक दृष्टि से अत्यन्त ही लाभप्रद है। जहा तक शिक्षा का सम्वन्ध है, 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' शिक्षा के उद्देश्य

की पूर्ति में भी सहायक होती है। शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य तो पूर्णतया निश्चित नही किया जा सकता, किन्तु उसका तात्कालिक उद्देश्य मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखना है। श्री न्यूमैन ने अपने 'विश्वविद्यालय की धारणा नामक निबन्ध में शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है-- "जिस प्रकार चिकित्सालय का उद्देश्य टूटे हुए शारीरिक अग की पूर्ति कर देना है, उसी प्रकार विश्वविद्यालय का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करना है।" शिक्षा शिशु की साधारण वृद्धि तथा उन्नति के उद्देश्य को पूरा करती है, मानसिक स्वास्थ्य विधि का भी ठीक यही उद्देश्य है। आधुनिक युग में, शिक्षा शिशु के विकास में, उसके समाज के प्रति उपयोगी बनाने के उद्देश्य से सहायता देती है और उसको सामाजिक कर्त्तव्य पालन करने के योग्य बनाती है। इसी प्रकार 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' भी हमें उपयोगी जीवन व्यतीत करने की कला सिखाती है। अत इन दोनो ही का (शिक्षा तथा मानसिक स्वास्थ्य विधि) एक लक्ष्य है।

जन साधारण प्राय व्यावहारिक जीवन मे विज्ञान पर निर्भर नही रहते है, उनका जीवन उनके साधारण ज्ञान के आधार पर चलता है। वैज्ञानिक रीति या विधि प्रत्येक क्षेत्र में धीरे-धीरे अपनाई जाती है। हमारे स्वास्थ्य के विषय में भी मनुष्य की प्रकृति ने इसी नियम को लागू किया है। मनुष्य ने व्याधियो से निवृत्ति प्राप्त करने के लिए असख्य साधनो का प्रयोग किया है। वह भी समय था जबकि मानसिक तथा शारीरिक रोगो को, देवताओ का प्रकोप अथवा भूत प्रेतो का प्रभाव समझा जाता था। इसी कारण प्रत्येक रोग का उपचार जादू तथा टोने से किया जाता था। मानव का ज्ञान ज्यो-ज्यो बढा उसने यह अच्छी तरह समझ लिया कि किसी भी रोग को दूर करने के लिए जादू व टोना का व्यवहार नितान्त मूर्खतापूर्ण है। इसके बाद वे 'रसायन' के चक्कर में फस गये। मध्य काल में लोगो को रसायन विद्या पर विश्वास था। प्राय प्रत्येक व्यक्ति, जो कि खर्च कर सकता था, अपनी पृथक् रसायनशाला रखता था। वास्तव में आधुनिक रसायनशास्त्र की उत्पत्ति उस तथाकथित रसायन विद्या से ही हुई है। पहले-पहल तो लोगो का विचार था कि रसायन विद्या का उद्देश्य लोहे को सोने में परिवर्तित करना है, किन्तु धीरे धीरे वैज्ञानिको ने यह सिद्ध किया कि रसायन विद्या का उद्देश्य प्रकृति की शक्तियो को मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए उपयोग में लाना है। जब इस उद्देश्य से रसायन विद्या में खोजें की गईं तो रसायनशास्त्र की सहायता से तथा औषधियो के प्रयोग से रोगो का निवारण करने के लिए चिकित्सा विज्ञान (Medical Scierce) इत्यादि का आश्रय लिया गया। अत मनुष्य ने अन्त में स्वास्थ्य के लिए विज्ञान का प्रयोग किया। 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य को बनाए रखने की प्राकृतिक विधियो का उपयोग करना है। क्योकि विज्ञान हमें प्राकृतिक मार्ग दर्शाता है इसलिए 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' में हमें प्राकृतिक मार्ग ही सहायता दे सकता है। शिक्षा में स्वास्थ्य विधि का इतिहास हमें दो मुख्य बातें बतलाता है। प्रथम यह कि 'स्वास्थ्य-शिक्षा' वह शिक्षा है जो कि शिशुओ को प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक रीति से दी जाय। शिक्षा के इतिहास के अध्ययन से हम मनुष्य की प्रकृति के विकास को पूर्णतया समझ पाते है। इस अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि व्यक्ति की शिक्षा प्रत्येक अवस्था में उसकी प्रकृति तथा आवश्यकताओ के अनुकूल होनी चाहिये। जो शिक्षा व्यक्ति की प्रकृति तथा उसकी प्राकृतिक आवश्यकताओ के प्रतिकूल होगी, वह उसके मानसिक स्वास्थ्य के प्रतिकूल भी अवश्य होगी। दूसरी बात जो शिक्षा में स्वास्थ्य विधि का इतिहास हमें बतलाती है वह यह है कि विज्ञान भी हमें प्राकृतिक मार्ग की ओर ले जाता है। विज्ञान का उद्देश्य प्राकृतिक नियमो की खोज करना तथा विकास अथवा वृद्धि की उपाधियो को निर्धारित करना है। इन प्राकृतिक नियमो तथा उपाधियो के अनुकूल दी गई शिक्षा ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद हो सकती है।

मानसिक स्वास्थ्य विधि का उद्देश्य न ही केवल सामान्य नियमो के आधार पर स्वास्थ्य की रक्षा करना है

वल्कि व्यक्ति विशेष (Case method) रीति का भी प्रयोग करना है। इस रीति के अनुसार व्यक्ति विशेष के सम्वन्ध में सव वातें तथा घटनाए इकट्ठी कर ली जाती है जो कि उस व्यक्ति विशेष के मानसिक स्वास्थ्य में सहायक हो सकती हैं। अत उस व्यक्ति के रहने की रीति, उसकी आदतें, उसके रोग का इतिहास, उसके घर का इतिहास, उसके स्कूल का वातावरण, उसका सामाजिक व्यवहार, खेलना इत्यादि सव का जानना आवश्यक है। इन सव वातो को एकत्रित करके श्रेणीवद्ध किया जाता है तथा इनका विश्लेषण किया जाता है ताकि व्यक्ति विशेष की त्रुटियो का कार्य-कारण सम्वन्ध जान लिया जाय और उसको मानसिक रोग से निवृत्ति प्राप्त करने का उपाय वतलाया जाय। विशेष रीति के परीक्षणो को करने के लिए, विशेष सफलतापूर्वक उपयोग में लाने के लिए सतर्कता तथा निपुणता की आवश्यकता है। न केवल व्यक्ति विशेष के विषय में यथार्थ घटनाओ को एकत्रित करने के लिए, अपितु वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए भी विशेष सुदक्षता या कला (Technique) तथा चिकित्सा का ज्ञान होना आवश्यक है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए अनुभव, ज्ञान तथा कला तीनो का होना लाभप्रद है। यह व्यक्तिगत रीति आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य विधि में प्राय सर्वत्र प्रयुक्त होती है। प्रयोगो तथा खोजो के आधार पर इस रीति की त्रुटियो को दूर किया जा रहा है और इस प्रकार उचित सशोधनो के साथ इसे विशद तथा उन्नत किया जा रहा है। इस रीति के द्वारा न केवल अपराध प्रवृत्ति के अथवा असाधारण कोटि के वालको की मनोवृत्तियो का अध्ययन किया जाता है, अपितु सामान्य वालको तथा प्रौढो के विषय में भी इस रीति का प्रयोग किया जाता है। यह रीति 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' के लिए सर्वोत्तम मानी गई है। विशेपकर मानसिक रोगो को पनपने से रोकने के लिए तो यह व्यक्तिगत रीति वडा महत्व रखती है। इसके द्वारा वहुत सी ऐसी समस्याओ का समय पर पता चल जाता है, जिनकी ओर प्राय लापरवाही की गई हो। अत इन समस्याओ को समय पर सुलझाया जा सकता है।

जैसा कि पहले वताया जा चुका है मानसिक स्वास्थ्य विधि का उद्देश्य शिशुओ को मानसिक रोगो से ग्रस्त होने से वचाना भी है। शिक्षा का उद्देश्य शिशु की शक्तियो तथा उसकी सुप्त प्रवृत्तियो को उसके व्यक्तित्व के विकास में लगाना है। विद्यालयो में इन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति सुचारु रूप से की जा सकती है। शिक्षक छात्रो में अच्छी आदतो का निर्माण कर सकता है और उन्हें वुरी आदतो मे बचा सकता है। प्रतिकूल प्रवृत्तियो से वचाए रखने का कार्य, विशेपकर शैशवावस्था में, वास्तव में उत्तम रचनात्मक कार्य है। प्रारम्भ से ही विद्यालयो में शिशुओ की प्रकृति वदली जा सकती है। अत विद्यालयो को चाहिए कि वह वालको को अच्छा स्वभाव तथा स्वस्थ शरीर वनाने की ओर ध्यान देने की शिक्षा भी अवश्य दे। इसी प्रकार निपुणता पूर्वक तथा उचित समय पर, उचित कार्य करने की शिक्षा भी प्रारम्भ से दी जानी चाहिए। विद्यालय में सामान्य सामाजिक व्यवहार की विशेष शिक्षा देने का भी सुअवसर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वहुत सी ऐसी समस्याए हैं, जिनको ध्यानपूर्वक शिक्षा देने से सुलझाया जा सकता है। यदि प्रारम्भ से शिशु के सवेग (Emotions) तथा स्थायीभाव (Sentiments) सुचारु रूप से निर्मित हो जाय तो उसका भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल वन जाता है।

उपर्युक्त लक्ष्य की सिद्धि के लिए मानसिक स्वास्थ्य की उपाधियो का प्रयोग करना आवश्यक है। इस क्षेत्र में खोज अभी जारी है और स्वास्थ्य की सव उपाधिया अभी तक निश्चित नही हो सकी हैं। किन्तु फिर भी वहुत सी ऐसी शरीर सम्वन्धी उपाधिया निश्चित हो चुकी है जो कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। शरीर के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना तथा उसे स्वच्छ रखना प्रथम आवश्यक वस्तु है। यदि शरीर स्वस्थ तथा स्वच्छ होगा तो मन भी स्वस्थ तथा निर्मल होगा (Sound mind in a sound body)। शरीर की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए जिस प्रकार शरीर के सभी अगो की सफाई करना, निश्चित समय पर उचित

आहार का सेवन करना, निवासस्थान में उचित वायु तथा प्रकाश का होना आवश्यक है, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए शिशुओ को यथासमय मानसिक स्थिरता तथा मानसिक सयम इत्यादि की शिक्षा देना भी मानसिक स्वास्थ्य विधि का अग समझा जाता है। मानसिक स्वास्थ्य विधि के आधार पर शिक्षा का ध्येय विद्यालय के कार्य को सुखद तथा रचनात्मक बनाना है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि शिशुओ पर किसी भी प्रकार का कोई नियन्त्रण न रखा जाय अथवा उनको प्रत्येक क्रिया में पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाय जिससे कि वे अनुशासनहीन हो जाय। विद्यालय के कार्य को आनन्दमय बनाने का अर्थ, शिशु के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास के ध्येय को पूरा करना है। इसका अभिप्राय शिशु को इस प्रकार से शिक्षा देना है कि वह रचनात्मक तथा सहयोगात्मक दृष्टिकोण से अपने सामाजिक वातावरण के अनुकूल व्यवहार करे। दूसरे शब्दो में, स्वस्थ शिक्षा वह शिक्षा है, जो शिशु की उत्तम प्रवृत्तियो को विकसित तथा प्रकटित करे और सामान्य क्रियाओ के द्वारा उसके व्यक्तित्व का एकीकरण करे।

मानसिक स्वास्थ्य विधि में आदत महत्त्वपूर्ण है। शैशवावस्था में, शिशु में जो सस्कार डाल दिए जाते हैं, वह कालान्तर में सुदृढ हो जाते है और उसके चरित्र गठन का आधार बनते है। यह सस्कार शिशु के साथ आयु पर्यन्त रहते है, क्योकि प्रथम प्रभाव अन्तिम प्रभाव होता है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने की आदत शिशु में शैशवावस्था में ही डालनी हितकर है। शिशु की आदतो को ठीक-ठीक क्रम में निर्मित करना बहुत आवश्यक है। यदि बचपन में अवाछनीय—गन्दी आदतें डालते चले जाय तो फिर भविष्य में वाछनीय—अच्छी आदतो का डालना बहुत कठिन हो जाता है। एक बार कुमार्ग पर चले जाने से फिर अच्छे मार्ग पर आना असम्भव-सा हो जाता है। अच्छी आदतें शिशु को स्वतन्त्रतापूर्वक क्रिया करने में तथा आदत द्वारा की गई क्रिया पर स्वामित्व रखने में पूरी-पूरी सहायता देती हैं और उसके व्यवहार को सामान्य बनाती हैं। अत 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' के दृष्टिकोण से अच्छी आदतें चरित्रगठन में बडा महत्व रखती हैं।

मानसिक स्वास्थ्यविधि में व्यक्तिगत विभिन्नता के प्रभाव को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। वह भी समय था, जबकि व्यक्तियो की परस्पर विभिन्नता का शिक्षा में कोई स्थान ही नही था। यदि कोई बालक असामान्य होता, तो उसको अयोग्य समझा जाता था। किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि व्यक्तिगत विभिन्नताए, मानवी जीवन के लिए, उतनी ही आवश्यक हैं, जितनी कि समानताए। हमें यह कदापि नही भूलना चाहिए कि विभिन्न मनुष्यो के व्यवहार में सर्वदा असमानताए तथा विभिन्नताए होती हैं। अत प्रत्येक शिशु के लिए एक ही प्रकार की शिक्षा की रीति सफल नही हो सकती और न ही हम प्रत्येक शिशु के साथ एक ही जैसा व्यवहार कर सकते हैं। शिक्षा देते समय हम शिशुओ की व्यक्तिगत योग्यता, बुद्धिमत्ता, उनका सामाजिक वातावरण, उनकी शारीरिक अवस्था, उनकी आयु तथा उनके लिंग इत्यादि के भेदो को दृष्टि से ओझल नही कर सकते। शिशु का अपना स्वच्छन्द, स्वतन्त्र तथा परिवर्तनशील व्यक्तित्व होता है। वह स्वय मानसिक शक्तियो का केन्द्र है और उसमें विलक्षण प्रतिभा की सम्भावनाए है। अनेक बार उसकी विभिन्नताए ही सम्भवत उसकी विशेष उन्नति का कारण बन सकती है। अत मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से शिक्षक को चाहिए कि वह शिशु के व्यक्तित्व को कदापि यन्त्रवत् जड वस्तु न समझे और उसकी वैयक्तिक विभिन्नताओ को ध्यान में रखते हुए उनका सदुपयोग करके शिशु को उन्नति की ओर अग्रसर करने का यत्न करे।

शिक्षा के ग्रहण करने में शिशु का स्वभाव सहायक भी हो सकता है और बाधक भी। स्वभाव का

साधारण या सामान्य अर्थ है हमारी अन्य व्यक्तियो तथा वस्तुओ के प्रति भावना। हमारे भाव बडा महत्व रखते है। हमारी आदतें भी कई वार हमारे भाव के आधार पर निर्मित होती है। बडे-बडे मनोवैज्ञानिको का विचार है कि एकमात्र स्वभाव ही हमारे जीवन का आधार है। जब तक हमारा स्वभाव अथवा हमारी भावना अच्छी न हो, हमारी कोई भी क्रिया सफल नही हो सकती। जो कार्य स्वाभाविक उत्साह और हर्ष से किया जाता है, उसमें अवश्य मफलता प्राप्त होती है। अत शिक्षक को चाहिए कि वह शिशु के स्वभाव का पूरा-पूरा उपयोग करे और शिक्षा को शिशु के स्थायी भावो तथा सुनिश्चित सवेगो के अनुकूल वनाने का प्रयत्न करे। न केवल इतना अपितु स्वस्थ शिक्षा का उद्देश्य शिशुओ में अच्छे कार्य के प्रति अच्छे स्वभाव तथा स्थायी-भावो का निर्माण करना है।

मूल प्रवृत्तियो का भी मानसिक स्वास्थ्यविधि में विशेप महत्व है। मनोविश्लेपण ने मूलवृत्तियो के दमन पर काफी प्रकाश डाला है। डाक्टर फ्रायड ने तो शैशवावस्था में कामवृत्ति के दमन को ही सब प्रकार के मनोविकारो, भावनाग्रन्थियो तथा असामान्य व्यवहार का एकमात्र कारण माना है। यदि दमन की अपेक्षा मार्गान्तीकरण या उन्नयन (Sublimation) के द्वारा इन्ही सुप्त शक्तियो का सदुपयोग किया जाय तो शिशु का जीवन अभीष्ट रूप में उन्नत किया जा सकता है। वास्तव मे यदि ढग से वरतें तो प्रत्येक मूल-प्रवृत्ति अपने अपने स्थान पर, शिशु के व्यक्तित्व के विकास में, उसकी आदतो के निर्माण में, उसके स्थायी भावों की स्थापना में एव उसके चरित्र गठन में प्रवल सहायता देती है। उदाहरण स्वरूप भय जैसी मूल प्रवृत्ति भी उपयोगी हो सकती है। भय का अनुभव करना कोई असाधारण क्रिया नही है, अपितु अवाछनीय वस्तुओ से भयभीत होना असगत नही है। इसी प्रकार वडो के सत्कार के लिए तथा अनुशासन वनाए रखने के लिए थोडी वहुत भय की मात्रा का होना आवश्यक है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि भय के द्वारा, शिशु की अन्य मूल प्रवृत्तियो का दमन कर दिया जाय। 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' की शिक्षा हमें अपने भय को नियन्त्रण में रखने की विधि वतलाती है। इसी प्रकार लडने की मूलप्रवृत्ति का भी सदुपयोग करना और इस प्रवृत्ति को परोक्ष रूप में सन्तुष्ट करने के लिए शिशु को फुटवाल इत्यादि की क्रीडा में लगाना मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

ज्ञानेन्द्रियो की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। क्योकि ज्ञानेन्द्रिया ही हमें वाहरी ससार का ज्ञान देती हैं। शिक्षा के लिए दृष्टि ज्ञान तथा श्रवण ज्ञान विशेपकर आवश्यक है। प्रकृति ने हमें ज्ञानेन्द्रियो के रूप में एक अद्भुत यन्त्र दिया है जो कि हमें सम्यक् ज्ञान देता है। हम प्राय इस यन्त्र का महत्व उस समय जानते हैं, जवकि इसमें कोई दोप उत्पन्न हो जाता है। स्वास्थ्य विधि का उद्देश्य हमें यह सिखाता है कि हम किस प्रकार ज्ञानेन्द्रियो की रक्षा करें। श्रीमती मोन्टेसरी का पाठनयुक्ति यन्त्र (D dactic Apparatus) ऐन्द्रिय ज्ञान की शिक्षा के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा शिशु वहुत शीघ्र शिक्षा प्राप्त कर लेता है, क्योकि इसके द्वारा उसकी ज्ञानेन्द्रियो की शक्ति का उचित तथा पूर्ण विकास होता है और उसके व्यक्तित्व का विकास निर्वाध रूप से होता है। स्वास्थ्यविधि का उद्देश्य नेत्र तथा कर्ण के दोपो का पता चलाना और उसका उचित उपचार कराना भी है, क्योकि इन ज्ञानेन्द्रियो में दोप उत्पन्न होने से उसके मन पर भी इसका कुप्रभाव पडता है और उसके व्यक्तित्व का विकास रुक जाता है।

उपयोगी कार्य करने से भी मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है, इसलिए विद्यालय में शिशु को जो कार्य दिया जाय वह निरर्थक तथा निरुद्देश्य नही होना चाहिए। उद्देश्य जीवन को एक क्रम दे देता है। जव तक शिशु के द्वारा की गई किसी क्रिया का कोई उद्देश्य नही होता, तव तक वह अपनी शक्ति को व्यर्थ में

खोता रहता है। केवल मात्र उद्देश्य का होना ही पर्याप्त नही, अपितु लक्ष्य या उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जो कि शिशु के मन में यह भावना उत्पन्न करे कि उसका लक्ष्य वाछनीय है। जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास हो जाता है कि उसका लक्ष्य उत्तम है तो वह उसकी प्राप्ति के लिए भरसक प्रयत्न करता है। उपयोगी लक्ष्य हमारे ध्यान को आकर्षित करता है। जिस वस्तु की ओर हम ध्यान देते है, वह इस बात को प्रकट करती है कि हमारा व्यवहार किस प्रकार का है। अत हमारा लक्ष्य हमारे चरित्र का प्रतीक होता है। इसके अतिरिक्त जब कोई शिशु किसी उपयोगी उद्देश्य की सिद्धि के लिए कार्य में व्यस्त होता है, तो उसको चिन्ता अथवा भय का अवसर ही नही मिलता। उस समय उसकी सारी शक्तिया कार्य में केन्द्रित होती है। अत उपयोगी लक्ष्य के आधार पर शिशुओ को क्रिया में लगाना 'मानसिक स्वास्थ्य विधि' का कर्त्तव्य है।

●

"बढ़ईखाने में या चर्मालय में जाओगे तो कूडा-कचरा इधर-उधर फेंका हुआ नजर आयेगा। उसपर तुम चिढोगे तो लोग तुम्हारी हँसी उडायेंगे। बढ़ई कूडा-कचरा और भी कहीं डाल सकता है, किन्तु दुनिया की निकम्मी चीजो को फेंकने के लिए दुनिया के बाहर जगह कहाँ मिलेगी? प्रकृति की यह आश्चर्यजनक शक्ति है कि निकम्मी समझी जाने वाली वस्तु से भी वह कोई-न-कोई नई उत्पत्ति, नया काम निकाल लेती है। वह कभी नहीं कहती कि इसके लिए यहाँ स्थान नहीं है, इसमें कार्य-कुशलता नहीं, या साधनो की कमी है। उसके पास हरेक चीज के लिए स्थान है। वहाँ हरेक वस्तु उपयोगी है।" —मार्कस ओरेलियस

जब मीरा से विषपान न होता !

सब दिन सच अनुमान न होता !
अनहोनी, होनी बन जाती,
पाहन बनती, मोमी छाती,
कुछ ऐसे भी पृष्ठ कि जिन पर
स्वर्णांकित बलिदान न होता,
सब दिन सच अनुमान न होता !

आँखो का परिचय ही क्या है ?
दुहराये निश्चय ही क्या है ?
कुछ ऐसे भी क्षण आते जब,
मीरा से विषपान न होता,
सब दिन सच अनुमान न होता !

श्रद्धा ही बन जाती शका,
खो जाती सोने की लका,
कुछ ऐसी भी रातें होतीं
जिनका स्वर्ण विहान न होता,
सब दिन सच अनुमान न होता !

—कन्हैयालाल सेठिया

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

सदन के सस्थापक श्री हरिभाऊ उपाध्याय के जीवन की बहुमुखी प्रवृत्तियो के विषय में उनके चिर परिचित साथी और हिन्दी के महान् जागरूक कवि श्री नवीनजी ने अपने बहुमूल्य विचार प्रस्तुत लेख में प्रगट किये है। आशा है उनके महान् व्यक्तित्व की एक झलक पाठको को प्रेरणा दे सकेगी।—सपादक

मै पण्डित हरिभाऊजी उपाध्याय को दादा साहब कह कर पुकारता हूँ। यह प्रथा—दादा, काकाजी, माँ आदि गुरुजनो के आगे साहब लगा देने की टेव—हमारे मालवे की है। वय में दादा साहब मुझसे प्राय पाँच वर्ष—ठीक हिसाव लगाऊँ तो चार वर्ष नौ मास—बडे है। अत वे मेरे अग्रजन्मा है और वे मेरे दादा है। उन्हे आज मुझे अपनी श्रद्धाञ्जलि चढाने का अवसर मिला, इसके लिए मै अपने को घन्य मानता हूँ। हरिभाऊजी मालवे के निवासी है। मैं भी मालवीय हूँ। मेरे गाँव से उनका गाँव कोई सात-आठ कोस होगा। पर, मालवे में रहते समय मुझे कभी भी दादा साहब के दर्शनो का अवसर नही मिला।

आज, जब मै सोचता हूँ कि प्रथम वार मैने उनके कब दर्शन किये, तो गत ४० वर्ष पूर्व की घटना आँखो के आगे चित्रपट-वत् आ जाती है। हाँ ४० वर्ष पूर्व की वात है। सन् १९१७ की वात है। पूज्य हरिभाऊजी उन दिनो, कानपुर के जुही नामक उपग्राम में पुण्यश्लोक महावीरप्रसादजी द्विवेदी के सहायक के रूप में "सरस्वती" में काम कर रहे थे। मै कालिज में शिक्षा प्राप्त करने के लिए कानपुर आ गया था और पुण्यकीर्ति स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी की छत्रछाया में विद्यार्जन कर रहा था। हरिभाऊजी को ज्ञात हुआ कि एक मालवे का जीव कानपुर में है। उन्होने अपने घर, जुही में, मध्याह्न भोजन के लिए निमन्त्रित किया। मैं पहुँचा।

देखता क्या हूँ कि एक युवक उघाडे शरीर, दुवला पतला, केवल एक धोती पहिने, नगे पाँव, चश्मा लगाए मेरे स्वागत को खडा है। मै जान गया कि यही हरिभाऊजी उपाध्याय हैं। मैंने उन्हें अञ्जलिवद्ध प्रणाम किया। दादा साहब का वह रूप आज भी मेरे नेत्रो के सम्मुख आ जाता है। प्रथम दिन उनके व्यक्तित्व की जो छाप मेरे ऊपर पडी वह आज तक वैसी ही है और मुझे यह अनुभव करके बडा सुख मिलता है कि गत चालीस वर्षो में उनका वह व्यक्तित्व उसी रूप में निखरा है जिसकी कल्पना मैने प्रथम दर्शन में उस दिन मन में कर ली थी।

जब मैंने उन्हे उस दिन देखा तो मुझे ऐसा लगा कि मैं किसी अल्हड नवयुवक से नही, एक गहर-गम्भीर व्यक्ति से मिल रहा हूँ। यदि उदाहरण के रूप में किसी अन्य युवक की वात कहूँ तो अनुचित न होगा। हन्त! वे दूसरे युवक अव हमें छोडकर चले गए। वे थे स्वर्गीय बन्धुवर देवदास गान्धी। जब मैंने सर्वप्रथम उन्हे लखनऊ कारागार में देखा तो मुझे लगा था कि मै एक परिपक्व जन को देख रहा हूँ। वैसी ही वात मुझे सन् १९१७ में हरिभाऊजी को देखकर अनुभूत हुई।

नासिका पर चश्मा, गम्भीर मुख, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, चिन्तनपूर्ण नयन, विचारपूर्ण भ्रू आकुञ्चन, "खड खड काया, निर्मल नेत" की झलक, ऐसे लगे हरिभाऊजी मुझे उस दिन। उसी समय मुझे लगा कि यह व्यक्ति "सरस्वती" के काम में बधकर रहने वाला नही है। यह वह पञ्छी है जो मुक्त आकाश में अपने पख तौलेगा।

मेरा अनुमान ठीक निकला। हरिभाऊजी ने भारत के एकाधिक प्रान्तो में रहकर, "जनपद दस्सनाथ" लोक सेवात्मक कार्यो में अपना मूल्यवान् योगदान दिया है। उनका जीवन किस दिशा में मुडेगा इसका अनुमान

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

उनके विद्यार्थी जीवन काल की एक दो बातों से लगाया जा सकता था। जिस प्रकार मैं मालवा छोड़कर विद्याध्ययन के लिए कानपुर पहुँचा था, उसी प्रकार हरिभाऊजी सन् १९१० में विद्याध्ययन के लिए काशी पहुँचे थे। वहीं से उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास की। पर, अंग्रेजी कहावत के अनुसार जिसे खटमल काट लेता है (He who has bitten by a Bug) वह चुपचाप कैसे बैठ सकता है? मुझे लगता है, जन-सेवा, समाज-सेवा, के खटमल ने उन्हें बहुत पहले ही काट लिया था। इसीलिए तो जब वे काशी में विद्याध्ययन कर रहे थे तभी उन्होंने "औदुम्बर" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन और सम्पादन आरम्भ कर दिया। यह पत्र तीन वर्षों तक वे चलाते रहे और तदनन्तर सन् १९१७ में "सरस्वती" के सहायक सम्पादक होकर कानपुर आ गए। औदुम्बर जातीय पत्र तो था, पर उसमें हमारे समाज की समस्याओं पर विशद दृष्टि से विचार किया जाता था।

कानपुर से उपरान्त वे इन्दौर चले गए। वहां कुछ दिनों अध्यापन कार्य करने के उपरान्त वे बापू के पास अहमदाबाद चले गए। वहाँ, साबरमती के आश्रम में, बापू के साथ सन् १९२१ से सन् १९२५ तक रहे और हिन्दी नवजीवन का सम्पादन कार्य करते रहे। उन दिनों "हिन्दी नवजीवन" को हरिभाऊजी के रूप में एक ऐसा सम्पादक मिला जो बापू के क्रान्तिकारक विचारों को शुद्ध हिन्दी में हिन्दी भाषी जनता के समक्ष रखता रहा। इसी बीच अहमदाबाद में रहते हुए ही उन्होंने श्री जीतमल लूणिया के सहयोग से "मालव मयूर" मासिक पत्र का प्रकाशन और सम्पादन आरम्भ किया।

अभी तक ऐसा लगता है कि मानो हरिभाऊजी की रचनात्मक शक्ति विकास की दिशा ढूंढ रही थी। उनमें संस्था निर्माण का जो अद्भुत सामर्थ्य है वह अभी प्रकट नहीं हुआ था। वह मानो समय की बाट जोह रहा था। अन्त में अवसर आया। स्वर्गीय सेठ जमनालाल जी बजाज की प्रेरणा ने हरिभाऊजी की रचनात्मक वृत्ति को बल दिया। गुजराती में सस्तु साहित्य मंडल नामक संस्था ने सस्ते तथा उत्तम साहित्य के प्रचार में बड़ा काम किया है। हरिभाऊजी को लगा कि हिन्दी में भी इस प्रकार की संस्था की आवश्यकता है। स्वर्गीय जमनालालजी ने इस विचार का समर्थन किया और उनके सहयोग और सहायता से हरिभाऊजी ने सन् १९२५ में "सस्ता साहित्य

मडल" की स्थापना की। जिन दिनो की यह वात है उन दिनो हिन्दी पुस्तको का विक्रय अत्यन्त सीमित तथा अनिश्चित था। हमारा दुर्भाग्य है कि आज भी हिन्दी पुस्तको की खपत बहुत कम है। पर उन दिनो तो ऐसा प्रतीत होता था कि हरिभाऊजी 'सस्ता साहित्य मडल' खोल कर एक दुस्साहस का काम कर रहे हैं। पर, वे प्रतिकूलता से पराजित नही हुए। आज का वर्धिष्णु "सस्ता साहित्य मडल" हरिभाऊजी की लगन, निष्ठा, परिश्रम और कल्पनाशीलता का परिणाम है। मै यह नही कहता कि अन्य जनो का श्रम उसके निर्माण में नही है। (आयुष्मान् भाई मार्तण्ड उपाध्याय ने, हरिभाऊजी के उपरान्त, अपने स्वेद से उसे सीचा है) अन्य मित्रो का भी सहयोग उसे प्राप्त है। बिडलाजी का आश्वासन-प्रद हस्त तो उसके ऊपर है ही। पर मेरे कहने का सार यह है कि "सस्ता साहित्य मडल" सस्था पूज्य हरिभाऊजी की दूर दृष्टि , परिश्रमशीलता, सहकार-क्षमता और निष्ठा का परिणाम है।

"त्यागभूमि" नामक मासिक पत्रिका का स्थान हिन्दी मासिक साहित्य में आज भी गणनीय है। आज भी हम "त्यागभूमि" का स्मरण आदर पूर्वक करते हैं। वह पत्रिका हरिभाऊजी की लेखनी की उदाहरण थी।

सस्ता साहित्य मडल की स्थापना के उपरान्त हरिभाऊजी का रचनात्मक कार्य क्षेत्र दिनो दिन वढने लगा। अजमेर के पास हटूडी नामक स्थान में सन् १९२७ में उन्होने गान्धी आश्रम की स्थापना की। सन् १९२६ से ही हरिभाऊजी ने राजस्थान को अपना कार्य क्षेत्र वना लिया था। उस सन् में वे वहा खादी, हरिजन सेवा, आदि रचनात्मक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन देने के लिए, जमनालाल जी की प्रेरणा से चले गये थे। दो तीन वर्ष वहा कार्य करने के उपरान्त वे सक्रिय रूप में काग्रेस राजनीति में भाग लेने लगे। सन् १९२९ में वे मध्य भारत-राजपूताना-अजमेर-मेरवाडा प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के प्रधान मत्री चुने गए। अव हरिभाऊजी का कार्य क्षेत्र विस्तृत, व्यापक हो चुका था। वे केवल रचनात्मक राजनैतिक क्षेत्र के मुख्य सचालको में परिगणित होने लगे। वे अनेक वार—सन् १९३०, १९३२ तथा १९४२ में—जेल यात्रा कर चुके हैं। वे हमारे स्वातन्त्र्य सग्राम के विदग्ध सेनानियो में हैं। कारागार से छूटने के उपरान्त सन् १९४५ में उन्होने हटूडी (अजमेर) में 'महिला शिक्षा सदन' की स्थापना की। इसकी देखरेख हरिभाऊजी की पत्नी श्रीमती भागीरथी उपाध्याय अत्यन्त परिश्रम और कुशलता पूर्वक कर रही हैं। यह सस्था भी हरिभाऊजी के रचनात्मक सामर्थ्य का उदाहरण है।

स्वातन्त्र्य युग के उपरान्त हरिभाऊजी ने सत्तापरक शासनात्मक राजनीति में भी उल्लेखनीय भाग लिया है। वे हमारे राष्ट्र के प्रथम साधारण चुनाव में अजमेर की विधान सभा के सदस्य चुने गये। सन् १९५२ में वे अजमेर शासन के मुख्य मत्री वने। तदुपरान्त गत साधारण चुनावो में वे फिर विधान सभा के सदस्य चुने गए और इस समय राजस्थान शासन के वित्त मत्री हैं। अजमेर मेरवाडा का प्रदेश राजस्थान प्रदेश में विलीन हो गया है।

हरिभाऊजी का कार्य क्षेत्र विस्तीर्ण रहा है। जो स्थान उनकी कर्म भूमि रहे वे स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पूर्व अधिकतर देशी राज्य कहे जाते थे। राजस्थान तथा मध्य भारत ही हरिभाऊजी के कर्म स्थल रहे हैं। ये दोनो प्रदेश राजनैतिक दृष्टि से तत्कालीन ब्रिटिश भारत की अपेक्षा पिछडे प्रदेश कहे जाते थे और पिछडे हुए थे भी। ये न केवल पिछडे प्रदेश थे, अपितु परिस्थितिया वहा ऐसी थी कि राजनैतिक कार्य करना प्राय सभव नही था। इन प्रदेशो में उन्होने रचनात्मक कार्य का सूत्रपात किया और शनै-शनै राजनैतिक जागरण का सदेश तत्-तत् प्रदेशवासियो को सुनाया।

उदयपुर के विजौलिया ठिकाने के जन समूह में "वन्दे मातरम्" के उद्‌वोधक तथा राजनैतिक चेतना के प्रथम निर्भीक प्रचारक स्वर्गीय भाई विजयसिंह पथिक थे। पथिक जी निश्चय ही वडे कर्मठ और लगन के व्यक्ति थे। जब कुछ राजस्थानी मित्रो ने पथिक जी का विरोध प्रारम्भ किया तो स्वय बापू ने पथिक जी के सवध में लिखा था (Pathık ıs a worker, others aıe talkers) पथिक कर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं, अन्य जन केवल

वात वनाते है। हरिभाऊजी से पथिकजी को सहयोग मिला। हरिभाऊजी ने बिजौलिया, जयपुर, धौलपुर, बीकानेर, इन्दौर, आदि सस्थानो की राजनीति में प्रमुख रूप से कार्य किया। देशी राज्यो की प्रजा के आन्दोलनो में हरिभाऊ-जी सदा अग्रणी रहे।

देशी राज्यो में प्रतिकूल परिस्थितिया थी। हरिभाऊजी उनसे विचलित नही हुए। ऐसी स्थितियो में काम करने वाले को सूझ-बूझ और दूरदर्शिता से काम लेना पडता है। हरिभाऊजी ने उन विपरीतताओ और प्रति-कूलताओ में भी काम किया और राजनैतिक जागरण को उन सोये हुए प्रान्तरो मे पहुचाया। यह वात उनकी कुशलता, कार्य-क्षमता तथा दूरदर्शिता की परिचायक है। ऐसी परिस्थितियो में कार्यकर्ता या तो अति उग्रतावान हो जाते है या दिङ्मूढ और हताश होकर बैठ रहते है। हरिभाऊजी सतत कार्यरत रहे। निरालस भाव से, निष्ठापूर्वक वे कार्य करते गए। स्थानीय कार्यकर्त्ताओ को मार्गदर्शन करते रहे। सगठन का स्वरूप खडा किया। देशी राज्यो की प्रजा की राजनैतिक भावना को मुखरित होने का अवसर प्रदान किया। ये सब कार्य—राजनैतिक, सामाजिक, सगठनात्मक, सस्था निर्माणपरक—हरिभाऊजी की गभीर कार्यक्षमता के द्योतक है।

थोडे में मैने उनके जीवन की मुख्य घटनाओ को देने का प्रयास किया है। उनके साहित्यिक एव रचनात्मक कार्यो का किंचिन्मात्र परिचय पाठक प्राप्त कर सकेंगे। पर मुझे सदा यह अनुभव होता रहा है कि हरिभाऊजी का मानव उनके कार्यो से भी वडा है। वे स्वय सत् आचार के एकनिष्ठ उपासक है। पर, वे उकठ कुकाठ नही है। वे क्षमाशील तथा उदार जन है। जो व्यक्ति चरित्रवान् होता है वह थोडा अनुदार हो जाता है। दूसरो के अवगुण देख-कर वह असहनशील हो उठता है। हरिभाऊजी में यह कट्टरता नही है। अपने से निकट से निकट के जनो का पद-स्खलन वे शान्तिपूर्वक सहते है और अपने उदाहरण से उन्हें ठीक मार्ग ग्रहण करने की प्रेरणा प्रदान करते है।

अपरिग्रह को उन्होने अपनाया है। वे एक निष्काचन ब्राह्मण परिवार में जन्मे। अत्यन्त नि साधनता में उन्होने जीवन आरम्भ किया। आज भी उनकी अवस्था एक निर्धन, नि साधन ब्राह्मण की सी है। उनका यह विश्वास है कि "तीन गाठ कोपीन में, अरु भाजी विन लौन, तुलसी रघुवर आसरे इन्द्र वापुरी कौन ?" वे असग भाव से काम करते है। सेवा के मेवा की मिठास की उन्होने कभी इच्छा नही की। यदृच्छया यदि सेवा के फलस्वरूप मेवा मिला तो उन्होने "इद न मम" का मन्त्र जपकर उसे भगवत् प्रसाद के रूप में ग्रहण किया।

गान्धी विचार धारा में उन्होने गहरे प्रवेश किया है। पर उनका मानस मुक्त है। वह कारावद्ध नही है। आज भी वे अन्य विचारो को तौल सकते है और उनमे जो कुछ मगलमय और कल्याण-कर है उसे ग्रहण करने में उन्हें रचमात्र भी सकोच नही।

उनका जीवन कर्मनिष्ठा से ओतप्रोत है। व्यस्त जीवन में भी उनके लिखे हुए—स्वरचित तथा अनूदित—ग्रन्थो की सख्या बीस बाईस तक पहुच जाती है। इसके अतिरिक्त 'त्यागभूमि' 'मालवमयूर' 'औदुम्बर' 'हिन्दी नवजीवन' आदि में जो लिखा वह अलग है। और जैसा मैं कह चुका हू, सस्था निर्माण-सामर्थ्य में तो राजनैतिक नेताओ में उनके समकक्ष मिल सकना कठिन है। ये सब सस्थाए उनकी परिचायिका है। फिर भी वे अनहवादी व्यक्ति है। सरल स्वभाव, मुखपर गाभीर्य और मुसकान, आखें पैठने वाली, जीवन सादा, स्नेहमय अग्रज और पिता, क्षमाशील स्नेही पति, योग्य शासक और आस्थामय व्यक्तित्व ऐसे है हरिभाऊजी ! इस अवसर पर मैं अपनी सादर स्नेहाजलि अर्पण करता हूँ। वे शतजीवी हो—यह प्रार्थना भगवत् चरणारविन्दो में है। उन्हें अभी बहुत कुछ करना है। राजस्थान को, हिन्दी भाषा को, उनसे बहुत आशाए है। यद्यपि 'साधना के पथ पर' नामक पुस्तक में अपने अनुभवो पर कुछ प्रकाश उन्होने डाला है तथापि मैं चाहता हू कि अपने व्यस्त जीवन में से कुछ कुछ समय निकालकर अपना पूरा जीवन वृत्त लिखें। यदि वे लिख सकें तो वह ग्रन्थ सबके लिए प्रेरणाप्रद होगा।

प्रतिष्ठा का प्रश्न

सरस वियोगी

प्रतिष्ठा का अर्थ अपने प्रति इष्ठा है। जिस व्यक्ति में यह इष्ठा नही है उसे मनुष्य भी कहना सन्देहास्पद है। यह इष्ठा अपने इष्ट के प्रति निष्ठा से प्राप्त होती है। अभीष्ट क्या है और उसके प्रति अपने सर्वस्व के न्योछावर करने की जितनी गहरी भावना व्यक्ति के अन्तर्गत होती है उसकी प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक कही जायगी। आप अपने को जो कुछ समझते है उसके वारे में दूसरो की क्या भावना है, यह प्रश्न उपेक्षणीय नही है। आपकी अपने प्रति कैसी भी प्रतिष्ठा हो, यदि दूसरे उस प्रतिष्ठा को स्वीकार नही करते तो वही से व्यक्ति का अह खण्डित हो जाता है और व्यक्ति तथा समाज के बीच में सघर्पशील परिस्थितियो की सृष्टि होती है। जितने भी महापुरुप अव तक इस ससार में हुए है, उनके जीवन में ऐसे अनेक क्षण आये है जव व्यक्ति और समाज की मान्यताओ में तादात्म्य नही हुआ है। ऐसे सभी लोगों का योग विस्फोट में सहायक हुआ है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है जव व्यक्ति और राष्ट्र की प्रतिष्ठा एक हो गई है, ऐसा व्यक्ति देशभक्त कहलाया है। जव नारी और समाज की प्रतिष्ठा एक होती है, वह 'कुलीन' कहलाती है। 'अकुलीन की प्रीति में अन्त उदासी' ऐसा किसी कवि ने कहा है। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जीव क्या नही करता ? माता अपने पुत्र का गला घोट देती है, भाई भाई को मार देता है, मित्र शत्रु हो जाते है तथा प्रतिपक्षी को मौत के घाट उतारते नही हिचकते आदि आदि। इसीलिए सव कुछ करना चाहिए, किसी की प्रतिष्ठा पर हाथ नही फेरना चाहिए और यदि ऐसा करना ही पडे तो यह भी नही भूलना चाहिए कि यदि हमने सत्य को छोड कर, हानि लाभ के तलपट को ही सामने रखा तो अवश्य हानि होगी। हमे यह कभी नही भूलना है कि व्यक्ति की सवसे वडी हानि व्यक्ति स्वय ही करता है। जव हम अपनी आत्मा की आवाज को नही सुनते तव हमारी आत्मा वोलना वन्द कर देती है, यही से पतन का आरम्भ है। अव यह कहना कठिन है कि पतनोन्मुख होकर व्यक्ति कहाँ ठहरेगा ?

स्त्री की सवसे वडी प्रतिष्ठा पति है। पतिव्रता स्त्री किसी भी राष्ट्र के लिए गर्व की वस्तु है। "पति राखै पत रहत है पति छाडे पत जात" भली कहावत है। हमारे पूर्वज इस सत्य को भली भाँति समझते थे, इसीलिए महाकवि तुलसीदास ने अयोध्याकाण्ड में सती सीता के मुह से कहलाया है —

जिय विनु देह, नदी विनु वारी। तैसेहि नाथ पुरुप विनु नारी॥

मैथिल कोकिल कवि विद्यापति की भी उक्ति है —

सरसिज विनु सर, सर विनु सरसिज, की सरसिज विनु सरै।
जौवन विनु तनु तनु विनु जौवन, की जौवन पिय हरै॥

भारत, ईरान, मिस्र, ग्रीस, इटली और फ्रान्स की प्राचीन सभ्यताओ में इसीलिए हमें नारी के उपर्युक्त स्वरूप के दर्शन होते है।

व्यक्ति और समाज की प्रतिष्ठा के साथ-साथ राष्ट्र की प्रतिष्ठा कोई कम महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं —

जिसको न निज गौरव तथा
निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है,
और मृतक समान है॥

इस प्रतिष्ठा के आधार पर ही व्यक्ति अपनी व समाज की प्रतिष्ठा सुरक्षित रखता है। कार्लाइल ने एक स्थल पर कहा है "लेखक, किसान और सिपाही, यही तीन व्यक्ति ईमानदारी की रोटी खाते हैं।" तीनों व्यक्तियों की यह विशेषता है कि उनके जीवन में श्रम की प्रतिष्ठा है। बिना श्रम और त्याग के सृष्टि हरी-भरी नहीं रह सकती। भोग और विलास में हम उसका उपयोग करते हैं, श्रम और त्याग में हम उसका सौन्दर्य अखण्ड रखते हैं, इसलिए राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखने वाला व्यक्ति वह है जो सदैव —

ईश्वर, हमारी माता का सौभाग्य-सूर्य सा बना रहे।
जब तक हम जीवित हैं, अखण्ड, राग-रक्त में सना रहे॥

जिन व्यक्तियों ने इस प्रकार का जीवन व्यतीत किया है, उनके प्रति आदर और प्रतिष्ठा हमारे जातीय जीवन का चिन्ह है। हमारे चारों ओर अदृश्य शक्तियों की प्रतिष्ठा है। द्यौन्तरिक्षे प्रतिष्ठितान्तरिक्षि पृथिव्याम्—से स्पष्ट है कि वैदिक काल में पृथिवी और द्यौ के बीच में अन्तरिक्ष की प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा-स्थापना एक मांगलिक कार्य है। इसलिए इसे करने से पूर्व संकल्प शक्ति चाहिए। यह शक्ति जितनी ही अधिक होगी, कार्य का सम्पादन भी उतना ही अधिक होगा।

प्रतिष्ठा भंग होने के परिणाम दुखद होते हैं। राष्ट्रों में युद्ध छिड जाते हैं, व्यक्तियों के सिर फूट जाते हैं और समाज किसी भी प्रकार का प्रतिशोध अपनी रक्षा के नाम पर ले लेता है। इसीलिए पहले कहा गया है कि प्रतिष्ठा भंग करने से पूर्व इसके परिणाम समझ लेने चाहिए, इसी में प्रतिष्ठा है। किसी कर्मचारी की प्रतिष्ठा वह प्रतिष्ठा है जो वह अपने अधिकारी से पाता है। उसे भंग करने पर उसे दण्ड मिलता है। आर्य राम समुद्र तट पर खडे हैं पर जब समुद्र ने उन्हें पथ नहीं दिया तब उन्होंने 'भय बिनु होहि न प्रीति' सरोष अपना बाण चढाया। समुद्र भयभीत होकर प्रकट हुआ और उसने अपने बचाव में कहा —

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही।
मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥

यदि वह दूसरी बात न कहता तो उसकी मुक्ति न थी क्योंकि "प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई।" इसीलिए समुद्र के उक्त वचनों को सुन कर कवि ने राम के मुख से —

सुनत विनीत वचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि विधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ॥

समुद्र की मर्यादा रक्षा हेतु ही उपर्युक्त दोहा कहलाया है।

प्रत्येक युग में प्रतिष्ठा का मानदण्ड अलग-अलग रहा है। शाश्वत मूल्यों में कमी नहीं हुई है पर युग ने अपने नये मूल्यों को मापने के लिए नये मापदण्ड बनाये हैं। प्राचीन काल में गौ, ब्राह्मण और यज्ञों की प्रतिष्ठा थी। मध्य युग में राजा की प्रतिष्ठा रही और आज श्रम और संगठन की प्रतिष्ठा है। इन सामयिक प्रतिष्ठाओं में शाश्वत

मूल्यो में कुछ अन्तर उपस्थित नहीं होता। केवल दृष्टिकोण बदल जाता है। हम आधुनिकता की रक्षा करते हुए अतीत के इतिहास को सुरक्षित रखते हैं।

नकली प्रतिष्ठा का मूल्य क्या? कौवा मोर के पख लगा कर चलता है और प्रतिष्ठित होना चाहता है। उसे कभी-कभी ऐसी प्रतिष्ठा मिल भी जाती है "उघरहि अन्त न होहिं निवाहू।" जो परिणाम रावण का हुआ, वही परिणाम ऐसे व्यक्तियो का होता है। मनुष्य की सबसे बडी कमजोरी झूठी प्रतिष्ठा की खोज है। पर हममें से कितने ऐसे हैं जो इसके चगुल से बच सकते हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, जीव के यह चार पुरुषार्थ कहे गये हैं। पुरुषार्थ का सम्बन्ध पौरुष से है अर्थात् व्यक्ति अपने परिश्रम से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारो पदार्थों को पाता है। ध्यान रहे इन चार पदार्थो में प्रतिष्ठा की गणना नही है। प्रतिष्ठा एक सामाजिक प्रश्न है जब कि पुरुषार्थ वैयक्तिक साधना है। प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और बनाई रखनी पडती है जबकि क्रिया का सीधा परिणाम चारो पुरुषार्थों में से किसी की उपलब्धि है। उस उपलब्धि व उसकी ऐसी अनेक उपलब्धियो को लेकर हमारे चरित्र और कार्यों के सम्बन्ध में जो राय हमारे चारो ओर बनती है और फैलती है, वही हमारी प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा फूलो का परिमल-पराग नही, किन्तु उसकी वह सुगन्ध है जो चारो ओर फैलती है। किसी पुष्प में सुगन्ध होगी तो वह फैल कर ही रहेगी। इसीलिए हमारे विचारको ने जीव का श्रेय पुरुषार्थ ही रखा है। प्रतिष्ठा तो इन पुरुषार्थो की प्राप्ति के साथ-साथ बनती विगडती जाती है। इसीलिए चतुर व्यक्ति वह है जो पुरुषार्थ की प्राप्ति के साथ-साथ यह देखे कि उसकी प्रतिष्ठा की स्थिति में कितना उतार-चढाव आया है। यदि प्रतिष्ठा घटने वाली हो या घटती हो तो उसे चार पदार्थो को छोड कर भी उसकी रक्षा करनी चाहिए। जो यह कर सके वही विद्वान् और साहसी है। बहुधा ऐसा करना जीवन में सम्भव नही है, पर हमें इस ओर से अपनी दृष्टि न फेरनी चाहिए।

एक ऐसे युग में, जिसे सक्रान्ति काल कहा जा सकता है मूल्यो की चर्चा करना अर्थहीन है। परन्तु जैसा अथर्ववेद के पृथ्वी सूत्र में आया है "पृथिवी सत्य से भरी हुई है", यह सत्य उत्तरायण और दक्षिणायन हो सकता है। परन्तु उसकी इस गति से उसके शाश्वत स्वरूप में कोई अन्तर उपस्थित नही होता इसलिए बुद्धिजीवी लोग भूत और भविष्य को वर्तमान के शीशे में देख लेते है।

हम सब सुव्यवस्थित और प्रतिष्ठित हो यही जीवन की सबसे बडी साधना है पर यह प्रतिष्ठा हमें देवो, ब्राह्मणो, सद्ग्रन्थो और आचार्यों की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। जैसा सन्तकवि तुलसीदास जी ने कहा है —

विनु सतसग विवक न होई।
राम कृपा विनु सुलभ न सोई॥

●

"मेरे विचार से नारी सेवा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी कुर्बानी से अपनेको बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अश बन जाती है।

मुझे खेद है कि हमारो बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही है, जहां नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गई है।" —स्व० प्रेमचन्द

चार शिक्षा प्रणालियाँ

बाबूराव जोशी

जर्मन शिक्षा शास्त्री श्री फ्रोबेल को ही इस बात का श्रेय दिया जाता है कि बालकों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था पर सबसे पहले उन्होंने ध्यान दिया। यद्यपि उसके पहले भी कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था लेकिन वे उसका व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत नहीं कर पाये थे। फ्रोबेल पहला व्यक्ति था जिसने छोटे बच्चों की शिक्षा पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया। उसकी मान्यता थी कि बालक के प्रारम्भिक अनुभवों की नींव पर ही जीवन का सुदृढ़ भवन बनाया जा सकता है। उसके अनुसार बचपन ही एक ऐसी अवस्था है जबकि बालक के मन में अच्छी-अच्छी भावनाएं तथा अच्छे-अच्छे गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं। इसी कारण उसने शिक्षा का सुधार बालकों की शिक्षा से प्रारम्भ किया।

फ्रोबेल की मान्यता थी कि बालक का विकास भीतर से होता है। बाह्य हस्तक्षेप से तो वह विकास कुण्ठित हो जाता है। वह कहता था कि बालक जो कुछ है वह भीतर है। जिस प्रकार बीज में एक बड़े से वृक्ष की सारी सम्भावनाएं निहित रहती हैं उसी प्रकार बालक में भी व्यक्ति का पूर्ण रूप निहित रहता है। स्वाभाविक वातावरण में जिस प्रकार बीज बढ़कर वृक्ष बन जाता है, उसी प्रकार बालक विकसित होकर पूर्ण मनुष्य बन जाता है। इस बात को ध्यान में रखने के कारण ही वह कहा करता था कि पाठशाला एक बाग है जिसमें बालक रूपी पौधा शिक्षक रूपी माली की देख-रेख में बढ़ता रहता है। जिस प्रकार पौधे का विकास अपने आन्तरिक नियमों के अनुसार होता है उसी प्रकार बालक का विकास भी उसके आन्तरिक नियमों के अनुसार ही होता है। माली की तरह शिक्षक का काम तो केवल इतना ही है कि वह इसके लिए समुचित वातावरण तैयार करता रहे।

इस मान्यता के कारण कि बालक के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास ही शिक्षा का उद्देश्य है, उसने अपनी शिक्षण पद्धति में आत्मक्रिया (Self activity) को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया था। वह कहता था कि बालक स्वयं प्रेरणा से जो कुछ कार्य करता है उससे उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। इससे उसे परिस्थिति पर विजय प्राप्त करने, वातावरण को अपने अनुकूल बनाने तथा क्रियाशील बने रहने का लाभ मिलता है। इसीसे उसे अपने विभिन्न अंगों का विकास करते हुए बहुत सी वस्तुओं के ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिलता है। अत वह कहा करता था कि बालक को काम करते हुए सीखने का अवसर देना चाहिए। फ्रोबेल की शिक्षण पद्धति का दूसरा सिद्धान्त है खेल द्वारा शिक्षा। उसने अनुभव किया था कि बालक शैशवावस्था से ही खेल में बड़ी रुचि रखते हैं। अत खेल के द्वारा बालकों की शिक्षा सरल तो बनेगी ही, सरस भी बन सकेगी। इससे आत्मक्रिया को पर्याप्त अवसर मिलेगा और उनके व्यक्तित्व का विकास भी होगा।

खेल कई प्रकार के होते हैं किन्तु फ्रोबेल ने अपनी शिक्षण पद्धति में मनोरंजक और रचनात्मक कार्यों को ही स्थान दिया। उसने ऐसे खेलों को चुना जो बालक की कल्पना शक्ति का विकास करें ताकि उनके

द्वारा उसका बौद्धिक विकास सहज ही हो सके। बालको में सामाजिकता और सहयोग की भावना का विकास करने के लिए उसने सामूहिक खेलो को भी अपनी पद्धति में प्रमुख स्थान दिया। इसके साथ उसने चारित्रिक शिक्षा देने वाले तथा ऐसे खेलो का भी चुनाव किया जिनके माध्यम से भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, नागरिक शास्त्र आदि विषयो की शिक्षा दी जा सके।

अपने इन विचारो को मूर्त रूप देने के लिए उसने सन् १८३७ में ब्लेकनवर्ग में एक स्कूल खोला। उसका नाम रखा—किंडरगार्टन (बच्चो का बाग)। इस स्कूल में न तो बच्चो को डाटा फटकारा जाता था न टाइम टेबल के अनुसार कार्य करने का ही कोई बन्धन था। अत बालक बडी प्रसन्नता से यहा आते थे और बडी दिलचस्पी के साथ खेलो के द्वारा शिक्षा प्राप्त करते थे। फ्रोबेल की इस शिक्षण पद्धति का नाम 'किंडरगार्टन' पद्धति पड गया। इस पद्धति में शिक्षा के तीन प्रमुख सिद्धान्तो (१) विकास का उद्देश्य, (२) क्रिया द्वारा शिक्षा तथा (३) सामाजिक सहयोगिता का समन्वय किया गया था। इस पद्धति में खेलो का प्रमुख स्थान है और उन्हीके द्वारा बालक को आत्माभिव्यक्ति का अवसर दिया जाता है। आत्माभिव्यक्ति के लिए इस पद्धति में गीत, गति और रचना का आश्रय लिया जाता है। उदाहरणार्थ बालक एक कहानी सुनता है, सुनने के बाद वह उसका गीत गा सकता है। गीत गाते समय भावभगी तथा गति का प्रकाशन करता है। इसके बाद वह उसे नाटक के रूप में उपस्थित कर सकता है अथवा लकडी, पट्टी, कागज, कलम या इसी प्रकार के अन्य उपकरणो द्वारा वर्णित वस्तु को मूर्तरूप दे सकता है। अत इस पद्धति में अध्यापक बालक से ऐसे गाने गवाता है, ऐसे काम करवाता है, ऐसी भावभगी का प्रदर्शन करवाता है तथा ऐसी वस्तुओ का निर्माण करवाता है जिनसे उसे आत्माभिव्यक्ति का पूरा पूरा अवसर मिले।

'किंडरगार्टन' पद्धति में शिक्षा के उपकरण के रूप में तीन वस्तुए प्रमुख स्थान रखती है—(१) मातृखेल और शिशुगीत, (२) उपहार तथा (३) कार्य या व्यापार। मातृखेल और शिशुगीत की एक पुस्तक है जिसमें लगभग ५० गीत है। पुस्तक में प्रत्येक गीत के साथ उसका चित्र तथा व्याख्यात्मक टिप्पणी की गई है। खेल और गीतो का क्रम बालक की आयु और योग्यता के अनुसार रखा गया है। ये गीत बालक की ज्ञानेन्द्रियो के विकास के साथ-साथ नैतिक विकास भी करते हैं। बालक की आत्मक्रिया को उत्तेजित करने के लिए फ्रोबेल ने कुछ उपहारो का प्रबन्ध भी किया था। ये उपहार कुल २० है। इनमें कुछ बेलनाकार, कुछ गोल और कुछ घन है। इनमें कुछ विभिन्न रगो की गेंद है जिनसे बालक को रग, रूप, स्पर्श और गति का ज्ञान हो सके। कुछ लकडी, लोहा तथा अन्य धातुओ की वस्तुए है जिनसे बालक को वस्तुओ की समानता, असमानता, गति, आकार आदि का ज्ञान मिल सके। इन वस्तुओ में कुछ आयताकार है, कुछ वर्गाकार और कुछ घनाकार। इन उपहारो की सहायता से गणित, बीजगणित, रेखागणित आदि का ज्ञान प्राप्त कराने में सुविधा होती है।

जब बालक ये सब उपहार प्राप्त कर लेता है तब उसे कुछ काम करने के लिए दिये जाते है, क्योकि उपहार बालको में विचार उत्पन्न करते हैं और कार्य करने की प्रेरणा देते है। इन कामो में चटाई बुनना, टोकरिया बनाना, चित्र बनाना, खिलौने बनाना, डिजाइन बनाना, सीना-पिरोना आदि प्रमुख है।

फ्रोबेल की मान्यता थी कि बालक स्वतन्त्र रूप से कार्य करने पर अपने उत्तरदायित्व को समझता है और उसमें आत्मनियन्त्रण की भावना जाग्रत होती है। इसलिए इस पद्धति में डाँट-फटकार और दण्ड देना वर्जित माना जाता है। बच्चो के साथ प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार किया जाता है ताकि बालको की अच्छी प्रवृत्तियो को ही उभारने का अवसर मिले। यद्यपि इस प्रणाली में अनेक गुणो के साथ-साथ कुछ दोष भी

हैं तथापि फ्रोबेल ने किंडरगार्डन के रूप में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया जिसकी उपयोगिता लगभग सभी देशों ने मान ली।

दूसरी शिक्षण प्रणाली है—योजना प्रणाली। इसके जन्मदाता श्री किलपेट्रिक अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हैं। ये जान ड्यूई के शिष्य हैं और उन्हींके प्रयोजनवाद के सिद्धान्तों के आधार पर आपने योजना पद्धति का निर्माण किया है। इनकी मान्यता है कि वर्तमान शिक्षा जीवन और उसकी यथार्थता से बहुत दूर होती जा रही है। विद्यालयों का वातावरण नीरस होता है। विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता की तरह बैठे रहते हैं और उन सूचनाओं को ज्यों की त्यों मान लेते हैं। बालकों को न सोचने का अवसर मिलता है न कार्य करने का। विद्यालयों की पाठन-विधि, पाठ्यक्रम आदि का भी बालक की रुचि, प्रवृत्ति और आवश्यकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः किसी ऐसी प्रणाली की आवश्यकता है जिसमें बालक स्वयं सक्रिय रहकर रुचि पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सके तथा उसे व्यवहार में भी ला सके। इन्हीं सब बातों ने योजना प्रणाली को जन्म दिया।

प्रोफेसर स्टीवेन्सन के अनुसार प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है जो अपनी स्वाभाविक परिस्थितियों के अन्तर्गत पूर्णता को प्राप्त करता है। वस्तुतः प्रोजेक्ट प्रणाली में कार्य की एक योजना होती है—उसका एक उद्देश्य होता है। उसकी कार्य प्रणाली कार्य करते समय स्पष्ट होती है और उस कार्य को करने में स्वाभाविक रुचि होती है। बालकों के सामने एक समस्या रख दी जाती है और वे उस समस्या को सुलझाने में प्रयत्नशील रहते हैं। समस्या को हल करते हुए उन्हें विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करना होता है जोकि उनके स्वाभाविक विकास में लाभदायक सिद्ध होता है।

योजना दो प्रकार की होती है—व्यक्तिगत और सामाजिक। प्रयोजनवाद सामाजिक योजना पर अधिक बल देता है। सामाजिक प्रोजेक्ट में सब बालक समान रूप से भाग लेते हैं। इनसे समाज सम्बन्धी अनेक बातों की शिक्षा मिलती है और बालकों में सामाजिकता और नागरिकता के गुणों का विकास होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली की विशेषता यह है कि यह सोद्देश्य होती है। इसमें क्रिया की प्रधानता होती है जिससे वास्तविकता का वातावरण रहता है और जीवन के लिए उपयोगी होने के कारण उनमें बालकों का मन लगा रहता है।

इस पद्धति के अनुसार बालक को स्वयं प्रोजेक्ट चुनने का अवसर दिया जाता है। अध्यापक एक सहायक के रूप में उपस्थित रहता है। वह एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देता है जिससे बालकों में रुचि उत्पन्न हो जाती है, उनका ध्यान कार्य की ओर आकर्षित हो जाता है। जब सब बालक अलग-अलग योजनाओं का प्रस्ताव रखते हैं तब कोई एक सर्वमान्य योजना स्वीकार कर ली जाती है। योजना के चुनाव के बाद उसे पूरा करने का कार्यक्रम बनाया जाता है। जब कार्यक्रम बन जाता है तो उसे कई भागों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक बालक को कुछ न कुछ कार्य सौंप दिया जाता है और वे सब मिलकर उसे पूरा करने में जुट जाते हैं। प्रत्येक छात्र अपना कार्य स्वयं करता है। इस प्रकार वह क्रिया द्वारा सीखता है। अपना कार्य पूरा करने के लिए उसे अनेक कार्य करने पड़ते हैं जैसे लिखना, पढ़ना, हिसाब लगाना, निरीक्षण करना, घूमना, विचार विमर्श, निर्माण करना आदि। जब प्रोजेक्ट पूरा हो जाता है तो शिक्षक और छात्र मिलकर यह निर्णय करते हैं कि योजना कहां तक सफल हुई। इस अवस्था में बालक अपने कार्य की आलोचना स्वयं करते हैं—व्यक्तिगत रूप में तथा सब मिल जुलकर सामूहिक रूप में भी। वे देखते हैं कि उनके कार्य में कहां-कहां कितनी-कितनी त्रुटि रह गई। इस आत्मालोचन से उन्हें बड़ा लाभ मिलता है। इसके बाद बालक अपने कार्य का लेखा तैयार करते हैं और प्रारम्भ से लेकर अन्त तक का सारा कार्य अपनी नोट बुक में लिख लेते हैं।

एक उदाहरण से इस प्रणाली को समझने में और अधिक सहायता मिलेगी। मान लीजिए कि बिहार प्रान्त में अकाल पडने की खबर से प्रभावित होकर बालक वहाँ अनाज कपडे आदि भेजने की योजना स्वीकार करते है, तो सब मिलकर जनता से अनाज, रुपया, कपडा आदि इकट्ठा करने का प्रयत्न करेगे। इस कार्य में उन्हे बहुत से लोगो के पास जाने और अपनी बात समझाने का अवसर मिलेगा। देश के एक भाग के लोगों के प्रति उनके मन में जो सहानुभूति पैदा हुई है उसे वे अन्य लोगो के मन में भी पैदा करेगे। जब अनाज, रुपया, कपडा आदि इकट्ठे हो जायेंगे तो डाक और रेल के नियम मालूम करेगे। बालक स्वय पार्सल बनाएँगे, जिससे उन्हें कपडा, कागज, बोरी आदि का उपयोग करना मालूम होगा। फिर वे पता लिखकर उसे यथास्थान भेज देंगे। इस समस्या से इतिहास के घण्टे में अकालो के इतिहास, भूगोल के घण्टे मे उसके कारण देश की भूमि, जलवायु आदि का तथा गणित के घण्टे में पार्सल का तोल, उसके अनुसार टिकट लगाना आदि बहुत-सी बाते सीख लेंगे। लोगो से मिलते-जुलते समय उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होगा और जीवन के अन्य उपयोगी विषयो का भी प्रत्यक्ष ज्ञान होगा।

तीसरी शिक्षा-प्रणाली है—माण्टेसरी प्रणाली। इस प्रणाली की जन्मदात्री मेरिया माण्टेसरी का जन्म सन् १८७० में रोम के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उन्होने २४ वर्ष की आयु में ही विश्वविद्यालय से डाक्टरी परीक्षा पास कर ली और उसके बाद लूले, लँगडे, बहरे तथा मन्द-बुद्धि बालको की चिकित्सा का कार्य प्रारम्भ किया। यह कार्य करते हुए उन्हे अनुभव हुआ कि यदि इस प्रकार शिक्षा दी जाय तो वे भी साधारण बालको की ही भाँति शिक्षित, सभ्य और कार्यकुशल बनाये जा सकते है। अपनी पद्धति को सफल देखकर उनके मन में यह विचार उठा कि यदि साधारण बुद्धि वाले शिशुओ के लिए भी इस पद्धति का प्रयोग किया जाय तो सम्भव है उनका और भी ज्यादा विकास हो। यही सोच विचार कर उन्होने अपनी पद्धति का प्रयोग साधारण बुद्धि वाले बालको पर प्रारम्भ किया। अपने प्रयोगो से उन्होने अनुभव किया कि छ वर्ष का मन्द-बुद्धि बालक तीन वर्ष के साधारण बालक के समान होता है। अत वे इस निष्कर्ष पर पहुँची कि जो पद्धति छ वर्ष के मन्दबुद्धि बालक के लिए उपयोगी है वह तीन वर्ष के साधारण बालक की शिक्षा के लिए उपयोगी हो सकती है। अत उन्होने अपनी पद्धति का प्रयोग छोटे बालको पर किया। इस कार्य में उन्हें और भी आश्चर्यजनक सफलता मिली। बस, फिर तो उन्होने ३ से ६ वर्ष तक की आयु के बालको की शिक्षा के काम में अपना सारा जीवन लगा दिया।

मेडम माण्टेसरी ने शिशुओ की प्रकृति के आधार पर ही अपने शिक्षा सिद्धान्तो का निर्माण किया। इस कार्य में उन्हे फोब्रेल की किंडरगार्टन पद्धति से बडा लाभ मिला। मेडम माण्टेसरी की मान्यता है कि शिक्षा आत्म-विकास है। उसका उद्देश्य है व्यक्तित्व का विकास। उन्होने एक बार कहा था—"बालक एक शरीर है जो बढता है और आत्मा है जो विकास प्राप्त करता है। विकास के इन दो रूपो को न हमें कुरूप बनाना चाहिए न दबाना चाहिए। किन्तु उस समय के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए जब किसी शक्ति का क्रमानुसार प्रादुर्भाव हो।" व्यक्तित्व का यह विकास तभी हो सकता है जबकि बालक को अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाय। शिक्षा में स्वतन्त्रता का अर्थ बालक को उसकी मूलभूत प्राकृतिक शक्तियो तथा प्रवृत्तियो के अनुसार चलने देने से है। स्वतन्त्र वातावरण में की गई क्रियाओ द्वारा बालक में आत्मनिर्भरता, आत्मसयम, आत्मनियन्त्रण आदि गुण आते हैं। मेडम माण्टेसरी का तीसरा शिक्षा सिद्धान्त है आत्म-शिक्षा। इसका आशय है अपने आप नये ज्ञान की खोज करना तथा नई-नई बातें सीखना। उनके अनुसार आत्म-शिक्षा ही सीखने की सबसे उत्तम विधि है। इससे बालक अपने तरीके से अपनी ही गति के अनुसार सीखता है। वह अपनी शिक्षा के लिए अपने शिक्षक पर निर्भर नही रहता। वह बालको के लिए न तो कोई कार्य निर्धारित करता है न कोई आदेश ही

देता है। आत्म-शिक्षण के लिए मेडम माण्टेमरी ने एक विशेष प्रकार के शिक्षा यन्त्रो (Didactic Apparatus) का निर्माण किया। ये शिक्षा यन्त्र वालक के सामने रख दिये जाते है और वालक अपने ढग मे इनका उपयोग करता है। ये यन्त्र इस प्रकार वने होते है कि वालक इनका उपयोग एक ही प्रकार से कर सकता है। अत प्रारम्भ में कुछ गलती करता है और फिर दो-चार वार गलती करके स्वय ही उमे सुधार लेता है।

मेडम माण्टेसरी के शिक्षा मिद्धान्तो में खेल के द्वारा शिक्षा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके शिक्षा यन्त्र खिलौने की तरह ही है। वालक इच्छानुसार इनमे खेलता है और खेलते-खेलते ही वर्णमाला, गणित, रेखागणित आदि विषय मीख लेता है। इन खेलो मे वालक की ज्ञानेन्द्रियो के साथ कर्मेन्द्रियो का भी विकास होता है। ये खेल केवल खेल नही होते। ये तो नाममात्र के खेल होते है। इनके वहाने वालको मे काम करवाया जाता है।

इन शिक्षा सिद्धान्तो के अनुमार मेडम माण्टेमरी ने अपनी शिक्षा पद्धति को तीन भागो में वाँटा है—(१) कर्मेन्द्रियो की शिक्षा, (२) ज्ञानेन्द्रियो की शिक्षा और (३) भाषा की शिक्षा। माण्टेमरी स्कूल में सवसे पहले कर्मेन्द्रियो की शिक्षा दी जाती है। उन्हे अपने काम स्वय करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। वाल मन्दिर में वालक हाथ-मुह धोना, कपडे पहिनना-उतारना, चीजो को यथास्थान रखना, कमरा मजाना, भोजन वनाना, परोसना, वर्तन धोना आदि कार्य स्वय कर लेते है। इम प्रकार वालक को दैनिक जीवन के मभी आवश्यक कार्यो की शिक्षा दी जाती है। दूमरे शब्दो में इममे वालक की कर्मेन्द्रियाँ विकसित होती है।

मेडम माण्टेमरी वालको के मूक्ष्म अध्ययन द्वारा इम परिणाम पर पहुँची थीं कि प्रारम्भिक कक्षाओ में वालको को मूक्ष्म विचार समझने की क्षमता नही होती। अत वह उन्हे नही दिया जाना चाहिए। इन्द्रिय अनुभव ही वालक की शिक्षा का आधार है। अत वालको को जितने अधिक इन्द्रिय अनुभव कराये जा सके कराना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने इन्द्रिय शिक्षा पर वडा जोर दिया। देखने की शक्ति का विकाम करने के लिए इम प्रणाली के स्कूलो में वालक को विभिन्न रगो की टिकिया दी जाती है। इनका आकार एक होता है किन्तु रग अलग-अलग होते है। एक वार मे वालक मे एक ही टिकिया निकालने के लिए कहा जाता है और इन्हे निकालते-निकालते वालक को रगो की पहिचान हो जाती है। स्पर्शेन्द्रिय के विकाम के लिए वालक को एक ऐमा डिब्वा दिया जाता है जिसमे एक ही रग और एक ही आकार के अनेक रूमाल रहते है। किन्तु इनमे कोई चिकना होता है, कोई खुरदरा, कोई ऊनी होता है, कोई मखमली। वालक को एक रूमाल दिखाकर उसी प्रकार का दूसरा रूमाल निकालने के लिए कहा जाता है। वालक स्पर्श द्वारा उमी प्रकार का रूमाल निकालने का प्रयत्न करता है। उनके स्पर्श से उमके चिकनेपन, खुरदरेपन, कोमलता आदि का ज्ञान होता है। इसी प्रकार श्रवणेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय को साधने की व्यवस्था भी इस प्रणाली में है। नमक, चीनी, चाय, आदि की शीशियाँ स्वादेन्द्रिय साधने के लिए होती है। श्रवणेन्द्रिय को साधने के लिए विभिन्न ध्वनि की घण्टियो का प्रयोग किया जाता है। घ्राणेन्द्रिय को साधने के लिए कुछ ऐमी वोतलें प्रयोग मे लाई जाती है जिनमे गन्ध देने वाली वस्तुएँ तथा द्रव भरे रहते है। इनके द्वारा वालको को वस्तुओ तथा तरल पदार्थो की गन्ध मे परिचित कराया जाता है। इम प्रकार मेडम माण्टेसरी की शिक्षा प्रणाली ज्ञानेन्द्रियो के विकाम पर आधारित है। ज्ञानेन्द्रिय की शिक्षा पर वल देते हुए एक वार उन्होंने कहा था—"ज्ञानेन्द्रिय की शिक्षा मम्वन्धी क्रियाओ का ध्येय यह नही है कि वालको को विभिन्न वस्तुओ के रूप, वर्ण और गुण का ज्ञान हो जाय, वरन् उनसे हम उनकी ज्ञानेन्द्रियो को परिष्कृत करना चाहते है। इनसे उनकी वुद्धि का विकास होता है।"

मेडम माण्टेमरी की मान्यता है कि वालको को पहले लिखना मिखाना चाहिए। फिर लिखना मीखते मीखते वे स्वय पढना मीख जायेंगे। लिखना सिखाने के लिए वालक को लकडी अथवा गत्ते के वने हुए अक्षरो पर

उँगली फेरने के लिए कहा जाता है। कुछ समय में उँगली सध जाती है और वह अक्षर लिखना सीख जाता है। उँगली फेरते समय अध्यापिका अक्षर का उच्चारण करती रहती है जिससे वालक उच्चारण भी सीख जाता है। इसी प्रकार अकगणित पढाने के लिए भी कुछ शिक्षोपकरणो का प्रयोग किया जाता है।

इस पद्धति में स्कूल को वाल मन्दिर या वाल घर कहा जाता है। यहाँ वालको को खेलने-कूदने और अपने व्यक्तित्व का विकास करने की स्वतन्त्रता होती है। वाल मन्दिर मे एक वडा तथा कुछ छोटे कमरे होते हैं। वडा कमरा अध्ययन तथा छोटे कमरे, खाना वनाना, खाना, व्यायाम करना आदि कार्यो के लिए होते है। इनके साथ-साथ एक वगीचा भी होता है। वाल मन्दिर में वालको को स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर दिया जाता है। अध्यापक उनके काम का निरीक्षण और उनका मार्ग दर्शन करते हैं, उसमें हस्तक्षेप नही। वहाँ न कोई वँधे वँधाये नियम होते हैं और न अनुशासन के लिए कोई दण्ड दिया जाता है। अपनी अनेक विशेषताओ के कारण माण्टेसरी पद्धति यूरोप, अमेरिका ही नही एशिया में भी वडी लोकप्रिय वनती जा रही है। भारत में भी उसका अनुसरण करने वाले वहुत-से स्कूल खुल गये है—खुलते जा रहे है।

चौथी प्रमुख शिक्षा पद्धति है डाल्टन पद्धति। इस पद्धति की जन्मदात्री मिस हेलन पार्कहर्स्ट ने १९१३ में इसका श्रीगणेश किया था। उन्होने मेडम माण्टेसरी के साथ काम किया था और उनकी वहुत-सी वातो को स्वीकार किया था। प्रचलित शिक्षा प्रणाली के दोषो ने ही उन्हे इस प्रणाली का श्रीगणेश करने की प्रेरणा दी थी। उन्होने शिक्षा को विद्यार्थी प्रधान वनाने की आवश्यकता पर वल दिया और कहा कि उनकी पद्धति का उद्देश्य होगा वालक को स्वतन्त्र वातावरण में अपने व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर देना। इस पद्धति में तथा माण्टेसरी पद्धति में वहुत-कुछ समानता है। माण्टेसरी पद्धति शिशुओ के लिए है, डाल्टन पद्धति आठ से १२ वर्ष के वालको के लिए।

मिस हेलन पार्कहर्स्ट ने यह अनुभव किया कि सव वालको को एक ही प्रकार से पढाना तथा उनसे यह आशा करना कि वे एक ही गति से प्रगति कर लें दुराशा मात्र है। पुरानी प्रणाली में तो वालक कक्षा में वैठकर चुपचाप शिक्षक की वात सुनते रहते हैं, जिससे व्यक्तिगत रूप से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर ही नही मिलता। अत इस वुराई के विरोध में ही डाल्टन प्रणाली का जन्म हुआ। डाल्टन प्रणाली सामूहिक शिक्षण के स्थान पर व्यक्तिगत अध्ययन पर वल देती है। यह पद्धति विभिन्न मनोविकास के वालको को अपनी गति से वढने का अवसर देती है। इसके अनुसार वालक अपने प्रयास तथा स्वय क्रिया के द्वारा अपने व्यक्तित्व के विकास का प्रय न करता है। इस प्रणाली में दूसरी विशेषता यह है कि वालक जितनी देर तक चाहे एक विषय का अध्ययन कर सकता है। वह विना किसी निर्देश के स्वय कार्य करता रहता है। प्रयोगशालाओ मे सव प्रकार की सामग्री तथा पुस्तके रहती हैं जिनसे वालक अपनी रुचि एव योग्यता के अनुसार लाभ उठाता रहता है। इससे उसमें आत्म-निर्भरता और आत्म-विश्वास पैदा होता है। इस प्रणाली की एक और विशेषता यह है कि यह वालक को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करती है। शिक्षक तो एक पथ-प्रदर्शक के रूप में उपस्थित रहता है।

इस प्रणाली के अनुसार शिक्षक को वर्ष भर के काम की रूपरेखा तैयार करनी होती है ताकि विद्यार्थी को मालूम हो जाय कि उसे वर्ष में क्या-क्या काम करना है। प्रत्येक महीने के काम को लेने के पहले वालक को यह वचन देना पडता है कि वह उसे उस निश्चित अवधि में पूरा कर लेगा। इस प्रकार वालक ठेके पर काम लेता है और निश्चित अवधि में पूरा करने की उसे स्वतन्त्रता होती है।

प्रत्येक मास के कार्य को सप्ताहो तथा दिनो में वाँट दिया जाता है और उसे वालको को दे दिया जाता है। ये निर्दिष्ट पाठ वालको को देते समय उनकी योग्यता का ध्यान रखा जाता है। सप्ताह के कार्य को निर्दिष्ट पाठ कहा जाता है। प्रत्येक निर्दिष्ट पाठ के पाँच भाग किये जाते है जिसे इकाई कहा जाता है। इस तरह हर पाठ के

ठेके में चार निर्दिष्ट पाठ और २० इकाइयाँ होती है। एक इकाई एक दिन का कार्य होती है। लेकिन यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक बालक प्रतिदिन प्रत्येक विषय की इकाई को पूरा कर ले। उसे अपनी गति के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है। वह चाहे तो महीने भर के काम को १० दिन में ही पूरा कर ले। अध्यापक देखता रहता है कि बालक अपने काम को नियत समय में कर रहे है या नही।

इस प्रणाली में कक्षाओ के स्थान पर प्रयोगशालाएँ होती है। वहाँ पहली, दूसरी, तीसरी कक्षा न रह कर इतिहास, भूगोल, गणित, भाषा, विज्ञान आदि विषयो की अलग-अलग प्रयोगशालाएँ होती है। प्रत्येक प्रयोगशाला में विषय के विशेषज्ञ तथा उस विषय से सम्बन्धित सहायक सामग्री जैसे पुस्तके, रेखाचित्र, मानचित्र, चित्र आदि होते है। प्रयोगशाला में प्रत्येक कक्षा के बालकों के लिए स्थान निश्चित होता है। वही बैठकर वह अपना कार्य पूरा करते है। आवश्यकतानुसार जब जहाँ जाने की आवश्यकता होती है वहाँ जाने की स्वतन्त्रता बालक को होती है। प्रयोगशालाओ का कोई निश्चित समय नही होता।

सम्मेलन तथा विमर्श सभा डाल्टन पद्धति का आवश्यक अग है। प्रात काल आते ही विद्यार्थी और अध्यापक एक स्थान पर एकत्र होते है। इस सम्मेलन में अध्यापक बालको को आवश्यक सूचनाएँ देते है और फिर बालक अपने-अपने ठेके का काम करने के लिए प्रयोगशालाओ में चले जाते है। दिन भर कार्य करने के बाद सन्ध्या समय एक विमर्श सभा होती है जिसमें बालक अपने अनुभव तथा कठिनाइयाँ अध्यापकों के सामने रखते है। अध्यापक उनका समाधान करते है। इस प्रकार की सभाओं से बडा लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त किसी दूसरे समय में भी जब अध्यापक चाहे ऐसी सभाएँ कर सकता है। विद्यालय ९ बजे प्रात से प्रारम्भ होकर सायकाल ४ बजे तक चलता है। उसके बाद बच्चो के खेल-कूद और व्यायाम की व्यवस्था रहती है।

विद्यार्थियो की प्रगति जानने के लिए प्रगति-सूचक रेखाचित्रो (Graphs) का प्रयोग किया जाता है। ये ग्राफ तीन प्रकार के होते है। एक विद्यार्थी के पास रहता है, एक कक्षा में। तीसरा ग्राफ पूरी कक्षा की प्रगति का होता है। इससे प्रत्येक विद्यार्थी की प्रत्येक विषय की प्रगति की जानकारी मिल जाती है। इसमें कोई सन्देह नही कि कतिपय दोषो के बावजूद यह पद्धति कई दृष्टियो से अच्छी है।

●

"सत्य को छोडकर प्राप्त की हुई वस्तु से आनद नहीं मिल सकता। जिस वस्तु से तुम्हारे गौरव पर बट्टा लगता हो उससे दूर रहो। घृणा, विरोध-भाव, ढोंग इत्यादि को छोडो। उनकी खोज में मत पडो। जिस भोग को तुम दूसरों से छिपकर दीवार या परदे की आड में भोगते हो उससे सच्चा आनद कैसे प्राप्त हो सकता है? हृदय-स्थित ईश्वर जिसकी अनुमति देता है उसी धर्म के अनुयायी बनो। उस सत्यमार्ग पर चलने वाले को कभी ग्लानि नहीं होती। उसे सन्यास ग्रहण करके वन में जाने की आवश्यकता नहीं। वह हर्ष-शोक, इच्छा-द्वेषो से विमुक्त और निश्चित रहता है।" —मार्कस ओरेलियस

नारी के नाम

मनुज की 'मा' नारी के नाम—
धरा पर सकट है विकराल,
चहु दिशि खेल रहा है काल,
ज्ञान के उखडे जाते पैर,
मनुज को मानवता से बैर,
हुआ है जीवन भी जजाल,
धरा पर सकट है विकराल।
जनो मा फिर से वह सन्तान,
विश्व का हो जिससे कल्याण,
युगो की पूरी हो शुभ साध,
'साम्य' जग में भू पर निर्बाध-
प्रीत की ज्योति जले अभिराम।
विश्व जननी नारी के नाम,
नर की 'बहन' नारी के नाम—
सुपावन, सुन्दर औ सुकुमार,
तुम्हारी राखी के यह तार,
निरन्तर सरसाएँ अनुराग,
नवलतम, निश्छल, निर्मल त्याग,
स्वर्ग के सपने हो साकार।
सुपावन, सुन्दर औ सुकुमार,
बहिन अब दो ऐसा वरदान,
धर्म को मिले धरा पर त्राण,
पकडकर नव साहस की डोर,
बढे जग सतत् ध्येय की ओर,
भाग्य को ठुकराता अविराम,
विश्व भगिनी नारी के नाम,

मनुज 'दारा' नारी के नाम—
शुभे, सुखदे, सुभगे अनमोल,
सुहासिन बोलो ऐसे बोल,
जगे फिर जीवन मे विश्वास,
दूर हो वसुधा के सब त्रास,
भेद की नैया डावाडोल।
शुभे, सुखदे, सुभगे अनमोल,
मुखर हो वह पावन सगीत,
धरा पर होवे श्रम की जीत,
सुनयने छेडो ऐसी तान,
सके मानव खुद को पहचान,
कर्मरत होकर भी निष्काम।
मनुज पत्नी नारी के नाम,
मनुज की 'जा' नारी के नाम—
लाडली तुम उर का आलोक,
तमस का हरो दुखद निर्मोक,
प्रेरणा ऐसी भर दो आज,
नेह का पहने सत्ता ताज,
दूर हो दुनिया भर का शोक,
लाडली तुम उर का आलोक,
उठो, बिटिया खेलो वह खेल,
लक्ष्य हो जिसका केवल मेल,
नील नभ के नीचे उन्मुक्त,
नित्य ही शिव सुन्दर से युक्त,
सत्य की जय होवे अविराम,
मनुज की सुता नारी के नाम।

विजय निर्बाध

हमारी चाचीजी

श्रीमती गुलाबदेवी 'चाचीजी'

अजमेर आकर भी जो व्यक्ति प्रातःस्मरणीया चाचीजी के दर्शन लाभ से वंचित रहा वह उतना ही अभागी है जितना कि मंदिर के द्वार तक पहुंच कर भगवान के चरणों में श्रद्धा सुमन चढ़ाये बिना लौटने वाला। मध्यम कद, गेहुँआ रंग, चौड़े मुख और उन्नत ललाट वाली स्वास्थ्यसम्पन्न, मधुरभाषिणी, व्यवहारकुशला, तेजोमयी एवं प्रसन्नवदना इस पुण्य दर्शना वृद्धा के आगे किसका मस्तक हठात् सादर अभिवादन में नहीं झुक जाता। राजस्थान में महिला जागरण के लिए किये गए उनके अथक प्रयास, उनकी त्यागशीलता, अदम्य उत्साह व कर्तव्यपरायणता इतिहास में उनके नाम को सदैव अमर रखेंगे।

आदरणीय चाचीजी का जन्म जयपुर निवासी से० गोपीनाथ जी सोमाणी के यहाँ सन् १८७४ में हुआ। गुलाबदेवी उनका जन्म का नाम है। बड़े लाड चाव से यद्यपि उनका पालन-पोषण आरम्भ हुआ तथापि यह सुख विधाता को अंगीकार नहीं हुआ। ८ वर्ष की अवस्था में ही पिताजी की छत्रछाया से उन्हें वंचित होना पड़ा। बाल्यावस्था में यद्यपि पुस्तक ज्ञान चाचीजी को नहीं मिल पाया तथापि उन्हें धार्मिक शिक्षा, सदाचार व कर्तव्यनिष्ठा का परम लाभकारी पाठ अपनी माता से मिल गया था जो उनके भावी जीवन में वरदान सिद्ध हुआ।

चाचीजी का शुभ विवाह मथुरा निवासी बोहरा छोटेलालजी के सुपुत्र बाबू मथुराप्रसादजी से सम्पन्न हुआ। बाबूजी एक बहुत अच्छे समाजसेवी कार्यकर्त्ता व विद्वान् थे तथा स्वामी दयानन्द के भक्त व अनुयायी थे। वह अजमेर में आकर बस गये थे। उन्होंने अनुभव किया कि सहधर्मिणी को पूर्णरूपेण शिक्षिता बनाये बिना दाम्पत्य जीवन का वास्तविक आनन्द मिलना नितान्त असम्भव है। इधर विद्या के प्रति चाचीजी के अटल अनुराग ने भी समस्त बाधाओं पर विजय पायी और वे निरन्तर निर्बाध गति से आगे बढ़ती चली गई।

सन् १८९८ में मुहल्ले की कुछ बालिकाओं व महिलाओं को एकत्र करके अपने मकान पर ही एक छोटे से विद्यालय "मथुराप्रसाद गुलाबदेवी आर्यकन्या पाठशाला" की नींव उन्होंने तथा उनके पतिदेव ने डाली। उनके इसी वात्सल्य भाव के कारण आज समूचा राजस्थान गुलाबदेवीजी को चाचीजी के नाम से सम्बोधित करता है। इतना ही नहीं आर्यसमाज तथा कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं को भी चाचीजी का सक्रिय सहयोग निरन्तर प्राप्त होता रहा है। विभिन्न शिरोमणि महिला संस्थाओं को भी वे अपने अमूल्य सहयोग से सदैव गौरवान्वित करती रही हैं। सन् १९१२ में "सेन्ट जॉन्स एम्बुलेन्स" का डिप्लोमा भी उन्होंने प्राप्त किया और सन् १९१८ की महामारी के असंख्य रोगियों की जी जान से सेवा-सुश्रूषा करके संतप्त मानवता के दुखों को दूर करने में सहायक सिद्ध हुई। आज

भी नारी जागरण सम्बन्धी अनेक उच्च सस्थाओ को चाचीजी का उचित निदश, सहयोग व छत्रछाया प्राप्त है।

सन् १९०९ मे पति के स्वर्गारोही हो जाने पर उन्होंने अपना सर्वस्व महिला शिक्षा के निमित्त लगा देने का निश्चय किया और लगभग १ लाख रुपये की लागत की अपनी समस्त चल व अचल मम्पत्ति यहा तक कि रहने का मकान तक भी आर्यकन्या पाठशाला के नाम लिख दिया। मन् १९११ में चाचीजी ने इस पाठशाला का सम्पूर्ण कार्यभार कार्यकारिणी को सौप दिया जिसमे कि इसके सुचारु सचालन में किमी प्रकार की बाधा न आये। सन् १९३७ में अखिल भारतवर्षीय मारवाडी महिला परिषद् की सभानेत्री भी चाचीजी रही। कहना न होगा कि राजस्थान में महिला शिक्षा की अग्रणी होने के साथ-साथ परदा व दहेज आदि कुप्रथाओ के विरुद्ध भी अपनी सबल आवाज निर्भीकता पूर्वक उन्होंने उठाई है। निर्धन व असहाय बालिकाओ तथा महिलाओ की सहायतार्थ अनाथालयो व विधवाश्रमो को तन मन धन से सहयोग देती रहती हैं। निर्धन बालिकाओ को छात्रवृत्तियाँ देने के अतिरिक्त महिला शिक्षा के उत्साह वर्धन के लिए समय-समय पर योग्य छात्राओ को पदक भी प्रदान किये हैं।

इस वृद्धावस्था में भी चाचीजी बराबर कार्यरत रहती हैं। अध्यापिका से लेकर चपरासिन तक का कार्य करना उन्हें सहर्ष स्वीकार है। "सादा रहना व ऊँचा सोचना" उन्होंने सीखा है। अपना काम अपने हाथो करना उन्हें पसन्द है। इस युग में भी हाथ से पिसे आटे की रोटी खाती हैं। चक्की भी आवश्यकता पडने पर स्वय चला लेती हैं। दृष्टिकोण उनका बहुत ही उदार है, स्वय भूखी रहकर भी दूसरे की भूख मिटाने के लिए प्रयत्नशील रहना उनके चरित्र की एक विशेषता है।

व्यर्थ के बनाव शृगार से चाचीजी को घृणा है। अमर्यादित बनाव शृगार करके कोई छात्रा उनके विद्यालय में आ नही सकती। पुस्तक ज्ञान से भी अधिक उनका ध्यान रहता है छात्राओ के चरित्र निर्माण पर।

साहित्य के प्रति चाचीजी का अटल अनुराग है। विभिन्न विपयो पर उच्चकोटि के साहित्य का अनुशीलन उन्होंने किया है और करती रहती है। स्वय पढना व दूसरो को पढाना यही उनके जीवन का परम पुनीत लक्ष्य हैं। सोते समय तक सत्यार्थ प्रकाश गीता व उपनिपद् आदि कोई न कोई ग्रन्थ उनके सिरहाने मिल जावेगा। लगभग १५-२० हजार पुस्तकें विभिन्न ट्रस्टो कन्याओ और साहित्यिको को बाँट कर उन्होने ज्ञान तथा साहित्य का प्रचार किया है। उनका क्षेत्र केवल माहेश्वरी समाज तक ही सीमित नही बल्कि वह समस्त राजस्थान के महिला समाज को ही ध्यान में रख कर आगे बढ रही है। इसका प्रमाण यह है कि महिला परिपद् द्वारा प्रकाशित पुस्तके "मारवाडी महिलाएँ व वस्त्राभूषण" और "मारवाडी महिलायें तथा पर्दा प्रथा" आदि आज सम्पूर्ण महिला समाज के लिए पूर्ण रूप से लाभकारी सिद्ध हुई हैं।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा सस्थापित और सचालित हटूडी महिला सदन का उद्घाटन सन् १९४५ में श्रद्धेय चाचीजी के ही करकमलो से सम्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर अपने अत्यन्त सारगर्भित भाषण में उन्होंने कहा था—"पुत्रियो, आपको यहाँ आकर या रहकर जहाँ अक्षर ज्ञान प्राप्त करना है वहाँ घर गृहस्थी या गृह व्यवस्था को भूल नही जाना है अपितु शिक्षित महिला कितने सुचारु रूप से गृह सचालन करती है यह छाप दूसरो पर डालना है।" नि सन्देह चाचीजी की आकाक्षाएँ हिमालय से भी अधिक ऊँची है, जिनपर किसी भी सभ्य व सुशिक्षित समाज का गर्वित होना स्वाभाविक है।

अब तक देश-विदेश के जिन-जिन महापुरुषो ने महामनीषी चाची द्वारा सस्थापित और सचालित पाठशाला के दर्शन किये हैं सभी ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है। महामहिम डा० राजेन्द्र प्रसाद, प० जवाहरलाल नेहरू, डा० कैलाशनाथ काटजू, सेठ गोविन्ददास, राजकुमारी अमृतकौर, भगवानदास केला तथा चेस्टर बाउल्स सरीखे मानव-रत्न पाठशाला के उल्लेखनीय प्रशसको में से है।

४ औद्योगिक शिक्षण केन्द्र ७
५ औषधालय ६
६ सिंचाई के कुए नये एव जीर्णोद्धार ६,०५

अनुसूचित जातिया

ये जातिया संख्या में लगभग ५५ हैं। अनुसूचित जाति कल्याण कार्य की सबसे बडी समस्या अस्पृश्यता का अन्त करना है। इस सामाजिक एव धार्मिक शोषण द्वारा शताब्दियो से हरिजन पीडित रहे हैं। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम १९५५ के द्वारा अस्पृश्यता को कानूनी अपराध घोषित कर दिया गया है पर केवल कानूनी एव वैधानिक सरक्षण उक्त समस्या का हल नही है। इस दिशा में जनसाधारण के लिए विशेष प्रयास वाछनीय है। हरिजनो को यह चेतना देनी है कि वे स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक है एव उन्नति के समस्त साधन उनको समान रूप में उपलब्ध हैं।

प्रथम योजना काल में १७८८ लाख की धनराशि हरिजना के कल्याण कार्य मे व्यय की गई। अन्य सुविधाओं में नि शुल्क छात्रावास व्यवस्था, नि शुल्क शिक्षा एव छात्रवृत्ति, प्रौढ शिक्षण एव सामाजिक शिक्षण केन्द्र, सस्कार केन्द्र तथा औद्योगिक शिक्षण केन्द्र आदि विशेष उल्लेखनीय है। पानी पीने की सुविधाओं के हेतु तथा आवास के लिए आर्थिक सहायता दी गई। पानी एव रोशनी की व्यवस्था हेतु नगरपालिकाओं को सहायता दी गई। उपर्युक्त प्रयत्नो से अनुसूचित जातियों की शोचनीय दशा में सतोषजनक सुधार हो रहा है।

विमुक्त जाति

उक्त जातियों में सासी, कन्जर, बावरिये एव मीणे सम्मिलित है। इनकी जनसंख्या लगभग ७५००० है। उक्त जातिया के नैतिक एव भौतिक पुनर्वास की आवश्यकता थी। नैतिक पुनर्वास द्वारा उक्त जातिया के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है तथा भौतिक द्वारा इन्हें व्यवसाय के साधन देना है। उक्त उद्देश्य को दृष्टिकोण में रखते हुए इनके कल्याण के लिए एक योजना बनाई गई। प्रथम पचवर्षीय योजना काल में ५ ३४ लाख रुपये व्यय किये गए, जिसके द्वारा प्राप्त लक्ष्यो में निम्न विशेष उल्लेखनीय है —

१ प्राथमिक शाला ४
२ छात्रावास ५
३ समाज शिक्षण केन्द्र १७
४ औद्योगिक शिक्षण केन्द्र ६
५ पुनर्वास ८१८

गाडोलिया लुहार

राजस्थान मे गाडोलिया लुहार के लगभग ३५३१ परिवार है और लगभग १६६७२ जनसंख्या है। गाडोलिया लुहार के बसाने का कार्य सन् १९५५, ५६ से आरम्भ किया गया। अब तक ७२३ परिवारो को मकान बनाने के लिए १,२८,०५० रुपये की सहायता तथा १,४०,००० रुपये का ऋण दिया जा चुका है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में गाडोलिया लुहारो के पुनर्वास के लिए प्रस्तावित ८ लाख रुपये की राशि में से १००० मकान बनाने के लिए ३॥ लाख रुपये और १००० परिवारो को कृषि पुनर्वास के लिए दो

लाख रुपये देने का प्रावधान रखा गया है। इसके अलावा इनके बालकों की शिक्षा सुविधा के लिए एक लाख रुपये का प्रावधान है जिससे ३३० विद्यार्थियो को छात्रवृत्तिया दी जा सकेंगी। द्वितीय योजना के प्रथम वर्ष में १९५६, ५७ में ९७८ लाख रुपये खर्च किये जाकर ३५० परिवारो को बसाया गया। इस वर्ष १९५७-५८ में १४० लाख रुपये खर्च किये जायगे। इस वर्ष जोधपुर डिवीजन में १२० परिवारो की दो बस्तिया बसाई जावेंगी। प्रत्येक बस्ती में एक पचायतघर, एक पाठशाला तथा एक कुआँ बनाया जायगा। इन दोनो बस्तियो पर १,०१,००० रुपया खर्च किया जायगा।

द्वितीय पचवर्षीय योजना काल में राजस्थान की इन पिछडी जातियो के कल्याण के लिए राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार के द्वारा सहायता का कार्यक्रम निर्धारित हो चुका है। २०० लाख रुपये की धनराशि इस प्रकार व्यय की जावेगी —

१	अनुसूचित जाति	७३ लाख
२	अन्य पिछडी जाति	५६ लाख
३	अनुसूचित जन जाति	५० लाख
४	विमुक्त जाति	१३ लाख
५	गाडोलिया लुहार	८ लाख

इसके अतिरिक्त विकास योजना के अन्तर्गत राज्य सरकार व केन्द्रीय सरकार के पारस्परिक सहायता कार्यक्रम के अनुसार उक्त जातियो तथा गाडोलिया लुहारो के निमित्त २२८४७७३ लाख की धनराशि नियत की गई। प्रथम पचवर्षीय योजना काल में चली आ रही प्रवृत्तियो के लिये लगभग ८० लाख रुपया रक्खा गया है।

राज्य में केन्द्र द्वारा सचालित प्रवृत्तियो के लिए ६६०० लाख रुपया अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति तथा विमुक्त जाति के हितार्थ रक्खा गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक एव नैतिक स्वास्थ्य विषयक योजना के लिए २२५३ लाख रुपया निर्धारित किया गया है। विस्तार योजनाओं के लिए २०००० लाख रुपया रक्खा गया है। इस प्रकार द्वितीय पचवर्षीय योजना काल में ४१७ लाख रुपया व्यय किया जायगा।

●

बर्र एक दिन मधुकर से बोली—

"कितना क्षुद्र है यह तुम्हारा मधुकोष ! और इसी पर तुम इतना अभिमान किया करते हो ?"

मधुकर ने नम्रतापूर्वक कहा—

"तुम आ जाओ भाई ! इससे छोटा ही एक मधुकोष बना दो न ! जरा मैं भी देख लू।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नारी का चित्र

जटायु

एक बार किसी आदमी ने शेर को एक चित्र दिखाया जिसमें आदमी शेर पर सवार था। शेर बोला—यह चित्र आदमी का बनाया हुआ है, शेर का बनाया हुआ नही। अगर शेर बनाता तो आदमी नीचे होता और शेर ऊपर।

नारी का जो चित्रण पुरुषो ने अपने धर्म-शास्त्रो में, साहित्य में, कविता में, चित्रो में, किया है उसे देख कर नारी जाति पर शेर जैसी प्रतिक्रिया होती है या नही, यह कहना कठिन है। पुरुषो ने नारी को अबला, कोमलागी, भीरु, 'ताडन की अधिकारी', मोक्ष मार्ग में बाधा डालने वाली, आदि माना है। रीतिकालीन कवियो तथा चित्रकारो ने नारी के हाव-भावो तथा अग-प्रत्यगो का जो नगा चित्रण किया है, उससे पता लगता है कि पुरुषो ने स्त्री को अपनी वासना तृप्ति का साधन बनाया है और आज तो नारी के यौवन को बाजारू विज्ञापन का सबसे बडा साधन मान लिया गया है। आप कही भी निकल जाइए, विज्ञापनो में, पोस्टरो में, खासकर सिनेमा पोस्टरो में, कैलेण्डरो में, आपको स्त्रियो के आकर्षक चित्र दिखाई देंगे। मानो विधाता ने नारी को इसीलिए बनाया है कि वह पुरुषो को आकर्षित करे और उनकी वासना की तृप्ति करे।

आधुनिक नारी के व्यवहार को देखने से प्रतीत होता है कि उसने भी अपना रूप वही समझ लिया है जो पुरुषो का बनाया हुआ है। वह अपने आपको केवल सौन्दर्य की देवी समझने लगी है और इसी रूप को सार्थक बनाना उसका परम कर्तव्य हो गया है। भवानी, दुर्गा, सरस्वती, मातृ-शक्ति, गृहिणी आदि के अपने रूप को नारी जाति आज भूलती जा रही है। आधुनिक नारी या तो पुरुषो को लुभाने का प्रयत्न करती है या उनकी नकल करने का। यदि कोई पुरुष स्त्रियो के समान आचार-व्यवहार करने लगे तो जनाना कह कर उसका मखौल उडाया जाता है। परन्तु यदि कोई स्त्री पुरुषोचित कार्य करे तो उसकी सराहना की जाती है। आये दिन ऐसे समाचार पढने को मिलते हैं कि अमुक स्त्री पहली नारी है जिसने अमुक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। मानो ये क्षेत्र केवल पुरुषो के ही लिए सुरक्षित हैं और नारी का उसमें प्रवेश कोई अजीब या निराली बात है। इसके विपरीत नारी के क्षेत्र में पुरुष का प्रवेश उसकी हीनता का द्योतक समझा जाता है।

क्या नारी जाति ने इस वस्तुस्थिति पर कभी विचार किया है? क्या कहानी के शेर की तरह उसने कभी सोचा है कि पुरुषो ने उसका जो रूप चित्रित किया है वह असली नही है? क्या नारी जाति इन प्रश्नो का सन्तोषजनक उत्तर देने को तैयार है?

●

"जो मनुष्य मूर्ख है, पर जानता है कि वह मूर्ख है, वह दुनिया का सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्ति है, लेकिन जो मूर्ख होने के साथ ही अपनी मूर्खता से अनभिज्ञ है, वह दुनिया का सबसे बडा मूर्ख है।"

—सुकरात

क्या महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा आवश्यक है ?

विद्या विभा

इस समस्या को लेकर आये दिन कितने ही वाद-विवाद होते हैं पर कोई निश्चित फैसला नहीं होता। कुछ लोगों के लिए लड़कियों को उच्च-शिक्षा दिलवाना एक आवश्यकता है तो कुछ उसे निरा फैशन समझते हैं। यह भी गलत नहीं कि पुराने बुजुर्गों के ख्याल में लड़कियों को लड़कों की तरह पढ़ाना बिल्कुल बेकार है क्योंकि वे तो पराये घर का धन हैं। मां बाप को उनसे क्या मतलब ? उल्टा उन्हें तो लड़की की शादी का खर्च मारे डालता है।

बात कुछ ही दिनों की है। रविवार की सुबह एक पति-पत्नी चाय की टेबल पर बैठे हँसी मजाक कर रहे थे। दोनों ही प्रोफेसर थे पर अलग-अलग कालिज में। पति जितना कमाते पत्नी भी उतना कमा लाती। घर में अब तक एक भी बच्चा नहीं था इससे छुट्टी के दिन कुछ सूनापन लगता था। पत्नी को कुछ चिंतित पाकर पति महोदय कोई ऐसी बात कर देते थे जिससे पत्नी को हँसना ही पड़ता। उस दिन जब दोनों की बातों में गंभीरता आ गई तो पति महोदय कह बैठे, "घबराओ नहीं। हम लोगों की काफी आमदनी है। हमें बच्चों के खर्च से डरना नहीं चाहिये। हम मिलजुल कर उन्हें योग्य बना देंगे। एक की पढ़ाई-लिखाई मैं कराऊँगा तो शादी तुम कर देना। दूसरे की शादी का जिम्मा मैं लूंगा तो पढ़ाई-लिखाई तुम करवा देना। लड़की हुई तो उसे मैं पढ़ा-लिखा दूंगा और शादी तुम कर देना। कहीं भगवान ने लड़का दिया तो उसकी पढ़ाई का भार तुम पर और शादी का जिम्मा मुझ पर। क्यों मंजूर है न ?" पत्नी जोर से हँस पड़ी उस बँटवारे पर जिसमें दोनों ओर से पति ही फायदे में रहना चाहता था।

इस तरह देखने में आता है कि लड़की की शादी का खर्च मां-बाप के दिमाग को इतना परेशान कर देता है कि वे उसे पढ़ा-लिखा कर अधिक खर्चे में दबना पसंद ही नहीं करते। वे जानते हैं कि शादी में लेन-देन का काम प्रायः पढ़ाई-लिखाई से नहीं चलता। मान लीजिए किसी ने एक बहू ऐसी ली जो पढ़ी-लिखी बहुत कम है पर उसके साथ रुपया पैसा और माल-मत्ता काफी आ गया है। दूसरी बहू उच्च शिक्षा प्राप्त ली पर उसके साथ पहले की भाँति धन नहीं आया। लड़की के मां-बाप ने तो यह कहकर हाथ जोड़ लिये होंगे कि हमने इतनी योग्य लड़की देकर अपना सब कुछ दे दिया। पति महोदय भी फूल कर कुप्पा हो गये कि मेरे दोस्तों में खूब शान रहेगी। पैसा नहीं मिला तो कोई बात नहीं समय पड़ने पर वह नौकरी करके धन कमा सकती है। पुराने विचारों के सास-ससुर अपने बेटे के सामने चाहे आदर्श की बातें करें पर अपनी इस बहू की अपेक्षा पहलेवाली बहू को ही अधिक पसंद करेंगे क्योंकि वह अपने साथ बहुत कुछ लाई थी। जिठानी अपनी बढ़ी-चढ़ी कदर देखकर चलते फिरते ताने देने से नहीं चूकेगी कि, "मेरी शादी जैसे ठाट बाट क्या किसीकी शादी में होंगे" आदि। छोटी बहू में यदि सहनशीलता काफी है तो वह इन्हें छोटी-मोटी बातें समझ कर हँसकर टाल जायगी। यदि उसने बुरा मान कर अनपढ़ लोगों को छूत की बीमारी की तरह अलग ही अलग रखा तो बात इतनी बढ़ जायगी कि साथ रहना मुश्किल हो जायगा। सब लोग दोष देंगे तो पढ़ी लिखी लड़की को।

जब से कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त लडकियो ने घर के कामो की ओर से उदासीनता दिखाई है तब से घर की बडी-बूढी स्त्रियाँ ऐसी बहू लेने से घबराने लगी है। वे सोचती है कि उन्हें ऐसी बहू से क्या लाभ जिसके सामने सास को नौकरानी की तरह काम करना पडे। जब तक मेम साहब सोकर उठें चाय बनाकर हाजिर करनी पडे। उनका विश्वास है कि ऐसी बहुएँ उल्टा उनके लडको की आदतें बिगाड देती हैं। जब उन्हें आराम देने वाली बहुएँ नही मिलती तो सासें बहुओ के खिलाफ बगावत कर बैठती है। ऐसी दशा में उनकी शिकायत उचित ही है।

मैंने तो स्वय इस विषय पर उच्च शिक्षा प्राप्त बहनो से बात की है पर उनमें से किसी किसीके विचार जानकर तो मुझे निराश ही होना पडा है। एक बहन जो एम० ए०, बी० टी० थी और जिनकी शादी एक अच्छे अफसर से हो गई थी मेरे पूछने पर कहने लगी, "मेरे पति को मेरा दिनभर खाली बैठकर रेडियो सुनना अच्छा नही लगता। वे तो दिनभर दफ्तर में रहते है और मेरे लिए चाहते हैं कि मैं भी कही पढाने लग जाऊँ। क्या मैंने इसलिए इतना पढा है कि ससुराल वाले मेरी कमाई से जिन्दा रहें ?" मैंने पूछा कि, "आपका इतना पढ लिख जाने से आखिर मतलब क्या है ?" उसने मुस्कराकर जवाब दिया, "अच्छा पति पाने के लिए मैंने इतना पढ़ा था। वह मिल गया।" मैंने कहा "तुम नौकरी नहीं करना चाहती हो मत करो पर घर के काम में ही दिलचस्पी लो जिससे तुम्हारे रिश्तेदारो को तुम्हारा खाली बैठना बुरा भी नही लगे और तुम्हारा समय भी अच्छे कामो में बीत जाय।" उसने झट जवाब दिया, "काम करना मुझे अच्छा नही लगता क्योकि मैंने माँ-बाप के घर में कभी काम नही किया। यहाँ भी नौकर ऊपर का काम कर देता है। सास खाना बना देती है। ननदें परोस देती हैं।" मैंने पूछा, "फिर तुम क्या करती रहती हो ?" उसने कहा, "सुबह उठकर हाथ मुंह धोकर नाश्ता करते-करते दस बज जाते हैं और ये दफ्तर चले जाते हैं। मैं थोडी देर आराम करके नहा धोकर तैयार हो जाती हूं और रेडियो सुनती हूँ। दोपहर में खाना खाकर फिर सो जाती हूँ, शाम को पति के आने के समय उठती हूँ। चाय आदि पीकर तैयार होकर घूमने चली जाती हूँ उनके साथ। सास और ननदो को यह बहुत बुरा लगता है पर मैं क्या करूँ, मुझे तो अच्छा लगता है।"

दूसरी ओर मैंने एक ऐसी बहन से बात की जो एक सपन्न घर की बहू है। जो शादी के समय केवल बी० ए० पास थी। उसके पति एक व्यापारी थे। वे बी० ए० पास नहीं कर सके थे। उस लडकी ने स्वय एम० ए० पास किया। व्यापार में घाटा आ जाने से घरेलू खर्चों की समस्या खडी हो गई। उसने नौकरी की। फालतू नौकरो को हटा दिया पर सास को कभी काम नही करने दिया। अपने पति की मदद करके उन्हें भी एम० ए० करवा दिया। सौभाग्य से उन्हें कही अच्छी नौकरी मिल गई। फिर भी उनकी पत्नी ने अपना काम जारी रखा। घर की देखभाल बडी अच्छी तरह करती। बच्चो पर ध्यान देती और अपने पति की भी बडी इज्जत करती। उसने मुझे कुछ शरमाकर बताया, "अब हमें किसी तरह की चिंता नही है। मेरी सास मुझे बहुत प्यार करती है और वे भी मुझसे बहुत खुश हैं। अकेले कभी कहीं नही जाते।" मुझे उसकी बातें सुनकर बडा अच्छा लगा। मैंने मान लिया कि एक समझदार उच्च शिक्षा प्राप्त महिला अपने परिवार के लिए पुरुष से भी अधिक उपयोगी होती है क्योकि वह घर और बाहर दोनो का काम अच्छी तरह सँभाल सकती है।

उच्च शिक्षा प्राप्त करके कोई महिला आवश्यक रूप से नौकरी ही करे ऐसा नही है। उसका पहला कर्तव्य अपने घर के प्रति है। उसकी देखभाल करते हुए आवश्यकता पडने पर या चाहने पर नौकरी करना बुरा नही है। यो तो घर अनपढ या थोडी पढी-लिखी महिलाए भी सँभाल सकती हैं पर उच्च शिक्षा प्राप्त महिला उसके साथ-साथ अपने बच्चो के जीवन को उपयुक्त साँचे में ढाल सकती है, यही नही वह अपने परिवार को स्वावलबी बना सकती है। हमारे समाज के लिए ऐसी उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाए बडी उपयोगी है।

जाग, जाग हे ब्रह्मवादिनी !

ऋक् - प्रवुद्ध हे ! सत्य शुद्ध हे,
उषा, लिये अंतर अनुराग।
सत् की पुण्यश्लोक सज्ञा सी,
असत् नसाती, दे हविभाग।
तप पूत, हे तेजधारिणी।

त्यागमयी, वैराग्यमयी हे,
कर्मसयुता, प्रज्वल ज्वाल।
रज की शक्ति-साधना द्वारा,
होम रही माया के व्याल।
ज्योतिपुञ्ज, हे तम निवारिणी।

वाणी से अव्यक्त खोलती,
अंतर का हरने अवसाद।
झकृत करती हृत्तत्री को,
शब्द-ब्रह्म का भर स्वरनाद।
हे सौम्ये, मानसविहारिणी।

—रामनाथ व्यास 'परिकर'

संस्था का इतिहास

तथा

प्रवृत्तियों का परिचय

श्रीमती कमला नेहरू

जिनकी स्मृति में विद्यालय के भवन का शिलान्यास 'सदन' की भूमि पर

पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा किया गया

कमला नेहरू विद्यालय के भवन के शिलारोपण के पश्चात् पंडित जवाहरलालजी नेहरू आशीर्वाद दे रहे हैं

मुझे इत्मीनान है..

बहुत दिनो से, बहुत बरसो से हटूण्डी का नाम मैंने सुना था। शायद सबसे पहले जमनालालजी ने जिक्र किया था और इसके बारे में बहुत दफा मुझसे कहा था। लेकिन कुछ ऐसा इत्तफाक हुआ कि मै यहाँ आस-पास तो आया, लेकिन यहाँ नही आया। अजमेर गया, ब्यावर गया, लेकिन यहाँ नही आया। आज मुझे मौका मिला है आन का। तो मुझे खुशी हुई कि एक चीज जिसकी हवाई तस्वीर मन में थी उसको देखा और उसके काम को देखा, उसके बारे में सुना कि किस तरह से बढा है और बढता जाता है। आज जिस भवन के शिलान्यास के लिए मुझे बुलाया ह वह भी काम आगे बढने का रास्ता है। जाहिर है कि यह काम बहुत अच्छा है और आप लोगो के साथ मेरा आशीर्वाद है ही। लेकिन मै सोचता हूँ कि दिन में भी हम विद्या का दिया जलाते है तो कुछ रोशनी उसमे इधर-उधर होती है। लेकिन अभी हमारे देश के अन्दर इतना अन्धेरा है जिसे दूर करने के लिए कितने ही दियो की जरूरत है। यहाँ हम कुछ बढे है तो इधर-उधर कुछ रोशनी हो जायगी। इसमे कुछ काम भी होता है। लेकिन हम तो चाहते हैं कि सारे देश के कोने-कोने में रोशनी हो और सारा देश बत्ती की रोशनी की तरह हो जाय। खैर हमें किसी तरह बढना है ताकि हरएक बच्चे को हर जगह मौका मिले सीखने का, बढने का, अपनी शक्ति के मुताबिक। खैर तो मै यहाँ आया और एक शुभ काम की प्रतिष्ठा आप लोगों ने करवाई है, उसके लिए आप सबको धन्यवाद। यहाँ के बच्चों को देखकर मुझे इत्मीनान है कि काम अच्छी तरह से बढेगा। अब मे हम लोग भी इसकी तरफ ध्यान दिया करेगे और आप से पूछेंगे कि क्या हुआ, कितना काम बढा। खास तौर से जिन लोगो पर इनका भार है हरिभाऊजी, भागीरथीदेवी, उन्हे मै मुबारकबाद दूगा कि उनकी देखरेख में इतना काम बढा है और खास तौर मे जो कुछ हुआ उसमे बच्चो का कुछ काम चलेगा। तो मुझे इत्मीनान है कि अच्छी तरह से काम चलेगा।

कमला नेहरू विद्यालय के
शिलान्यास के अवसर पर

—जवाहरलाल नेहरू

गांधी-आश्रम

हटूडी का गाधी-आश्रम जो अपने प्रारम्भिक काल में रचनात्मक तथा राजनीतिक प्रवृत्तियो का केन्द्र रहा था, अव वालको तथा स्त्रियो की शिक्षा-दीक्षा का एक महत्वपूर्ण तथा निरन्तर विकासशील विद्यापीठ वन गया है।

जब गाधीजी ने देश की राजनीति की वागडोर अपने हाथ मे ली तो आजादी की नई लहर से राजस्थान भी अछूता न रहा। परन्तु उस समय यहा की देशी रियासतो में राजाओ का निरकुश शासन था, जिनसे सीधी लडाई लडना वडा कठिन था और काग्रेस की नीति भी रियासतो के आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप करने की नही थी। अत राजस्थान के मध्य में अजमेर-मेरवाडा का छोटा सा ब्रिटिश शासित इलाका इस प्रदेश के राजनीतिक आन्दोलन का केन्द्र बना। राजपूताना तथा मध्यभारत के देशी राज्य अजमेर-मेरवाडा की प्रान्तीय काग्रेस से सम्बद्ध कर दिये गए और इन दोनो प्रान्तो की राजनीतिक गतिविधियो का सचालन यही से होता रहा। विजोलिया आन्दोलन शुरु होने के वाद सन् १९१९ मे राजस्थान सेवा-सघ का कार्यालय भी वर्धा से अजमेर स्थानान्तरित कर दिया गया और देशी राज्यो के जन आन्दोलन का सचालन इसके हाथो मे आ गया।

असहयोग आन्दोलन के वाद गाधीजी ने खादी ग्रामोद्योग, अस्पृश्यता निवारण आदि रचनात्मक कार्यो पर वल दिया। उस समय सेठ जमनालाल वजाज के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन कार्यो के सचालन व सगठन के लिए राजस्थान में एक आश्रम स्थापित किया जाय। उन दिनो श्री हरिभाऊ उपाध्याय हिन्दी नवजीवन मे सम्पादक थे तथा वावा नृसिहदासजी असहयोग आन्दोलन में अपने मद्रास के व्यापार को ठोकर मार कर सीकर में खादी भडार चला रहे थे।

सन् १९२३ के लगभग श्रीमती कस्तूरवा गाधी ने हरिभाऊजी के साथ राजस्थान की यात्रा की। इसके वाद अग्रवाल महासभा के फतहपुर अधिवेशन में सेठ जमनालाल वजाज ने हरिभाऊजी के साथ चौमू, अमरसर आदि में खादी का कार्य देखा जिससे वे वहुत प्रभावित हुए और राजस्थान में एक गाधी-आश्रम स्थापित करने की उनकी इच्छा और भी वलवती हो उठी। उन्होंने गाधीजी के सामने प्रस्ताव रक्खा कि हरिभाऊजी को राजस्थान में कार्य करने के लिए भेज दिया जाय। गाधीजी ने मगनभाई गाधी, महादेवभाई तथा काका सा० कालेलकर से चर्चा की तो उन्होंने भी हरिभाऊजी का नाम सुझाया। परन्तु साथ ही यह भी कह दिया कि इनका नवजीवन को छोड कर जाना उपयुक्त नही है। इसलिए यह वात यही रुक गई।

इस अर्से मे सस्ता साहित्य मडल की नीव पडी। श्री जीतमल लूणिया के मन्त्रिपद सम्भालने का आश्वासन मिलने से सस्ता साहित्य मडल की स्थापना जल्दी हो गई और हरिभाऊ जी उसके सचालक मडल के एक सदस्य वनाये गए। कुछ दिन वाद गाधीजी के सामने जव हरिभाऊजी को राजस्थान भेजने का प्रस्ताव फिर रक्खा गया तो वह राजी हो गए। फिर मुख्यत उन्ही की देखभाल में यह काम चला।

तदनुसार सन् १९२६ में हरिभाऊजी अजमेर आये और इन्हें राजस्थान चर्खा सघ के प्रचार मत्री का कार्य सौपा गया। अव 'गाधी आश्रम' की कल्पना को मूर्त्तरूप देने का निश्चय किया गया और इसके लिए उपयुक्त स्थान तलाश करने का काम वावाजी के जिम्मे किया गया। वावाजी ने वहुत दौड धूप करके अजमेर से छह मील दूर

हटूडी गाव के पास जमीन का एक टुकडा आश्रम के लिए पसन्द किया। जलवायु की दृष्टि से यह स्थान बहुत उपयुक्त था और अजमेर से निकट पडता था। यह अजमेर-नसीरावाद लाइन पर हटूडी स्टेशन से लगता था और दिन में कई गाडिया इधर आती जाती थी। शुरू में गाव के किसानो से थोडी भूमि खरीदी गई और कुछ कच्ची झोपडिया खडी की गईं, जिनमें सस्ता साहित्य मडल के कार्यकर्ता आकर रहने लगे। इस प्रकार १ अगस्त, १९२७ ई० को हरिभाऊजी के सचालन में हटूडी में इस गाधी-आश्रम की स्थापना हुई। आश्रम की व्यवस्था का भार बाबाजी पर था। धीरे धीरे आश्रम में घरो की तथा कार्यकर्त्ताओ की सख्या वढने लगी और यह रचनात्मक प्रवृत्तियो का केन्द्र बन गया। गाधी-सेवा-सघ की राजस्थान शाखा आश्रम में कायम हुई जिसके सचालक हरिभाऊजी नियुक्त हुए—उसमें सर्वश्री बाबाजी, लादूरामजी जोशी, वैजनाथजी महोदय, रामनारायणजी चौधरी आदि सदस्य थे। चूकि उस समय सारी रचनात्मक प्रवृत्तिया काग्रेस के ही तत्वावधान में चलती थी—यहा तक कि चर्खा-सघ भी काग्रेस का ही अग था, इसलिए सरकार की इन पर बहुत कडी निगाह रहती थी। वैसे भी सारे रचनात्मक कार्य उस समय जनता में राजनीतिक जागृति तथा चेतना उत्पन्न करने के साधन माने जाते थे।

हरिभाऊजी तथा बाबाजी के प्रयत्नो से कार्य का विकास तथा विस्तार होने लगा। विजोलिया का प्रसिद्ध दूसरा सत्याग्रह यही से सचालित हुआ—यद्यपि उसके स्थानीय नेता की जिम्मेदारी श्री माणिकलालजी वर्मा ने सम्भाली थी। इन्दौर तथा व्यावर के मजदूर-आन्दोलन और सगठन को यहा से काफी बल मिला। इन्दौर के वर्तमान मजदूर-सघ की स्थापना में हरिभाऊजी का हाथ था। अस्पृश्यता निवारण के लिए एक अछूत सहायक मडल बना जिसके अध्यक्ष हरिभाऊजी और मत्री श्री व० सा० देशपाडेजी रहे।

सन् १९२८ में अजमेर में काग्रेस के चुनावो का दगल हुआ जिसके फलस्वरूप यहा की तथा अन्ततोगत्वा राजस्थान व मध्य-भारत की राजनीति में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। काग्रेस सगठन गाधीवादियो के हाथ में आ गय और गाधी आश्रम का महत्व और भी अधिक बढ गया। अब राजनीतिक वातावरण में भी गरमी आना प्रारम्भ हो गई थी। १९२९ का वर्ष लाहौर काग्रेस के लिए तैयारियो में तथा १९२० का वर्ष स्वाधीनता दिवस तथा सत्याग्रह की तैयारी में बीता। अजमेर में बाबाजी के अथक प्रयत्न से स्वाधीनता दिवस बडी धूमधाम से मनाया गया जिससे यहा के अधिकारी चौंक पडे और दमन का दौर शुरू हो गया। सत्याग्रह की तैयारी के लिए आश्रम में काग्रेस सेवा दल का एक शिविर लगाया गया और सारे राजस्थान तथा मध्य-भारत से स्वयसेवक तथा कार्यकर्त्ता अजमेर में एकत्रित होने लगे। क्योकि देशी रियासतो में सत्याग्रह करने की काग्रेस ने अनुमति नही दी थी, इसलिए अजमेर तथा व्यावर इस आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र बने। श्री हरिभाऊजी इस सत्याग्रह के सर्व प्रथम डिक्टेटर नियुक्त हुए।

सत्याग्रह ने जोर पकडा। सारे राजस्थान-मध्यभारत से सत्याग्रही कार्यकर्ताओ का तांता लग गया। १९३१ में गान्धी-अर्विन समझौता हुआ। आश्रम में स्वयसेवको की ट्रेनिग का कैम्प लगा। पुष्कर में पूज्य कस्तूरबा गान्धी की अध्यक्षता में राजनीतिक कान्फ्रेन्स हुई। सन् १९३२ में गान्धीजी राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स से खाली हाथ लौटे और सरकार से फिर लडाई प्रारम्भ हो गई। सरकार ने कांग्रेस सस्था को गैर कानूनी घोषित कर दिया और चूंकि आश्रम को सारी राजनीतिक हलचलो का केन्द्र समझा जाता था, इसलिए सरकार ने उस पर और 'सस्ता साहित्य मण्डल' पर कब्जा कर लिया। आश्रम का सारा सामान पुलिस उठा कर ले गई। सन् १९३४ में गान्धीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया। आश्रम पर से सरकार का कब्जा हट गया। किसी प्रकार की देखरेख न होने के कारण आश्रम की व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई थी। झोपडियाँ गिर गई थी और मैदान में झाड-झखाड खडे हो गये थे। अत आश्रम का पुनरुद्धार करने में समय लगा। कच्ची झोपडियो के स्थान पर पक्के मकान बनाये

गये। हरिभाऊजी तथा बाबाजी का मुख्य कार्यक्षेत्र राजनीतिक हो गया। राजस्थान मध्यभारत के विभिन्न प्रजा मण्डलों के आन्दोलन तथा सत्याग्रह का केन्द्र स्थान यह आश्रम रहा था। जाटों के सामाजिक सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों में इस आश्रम ने उनकी काफी सहायता की। इसके साथ ही रचनात्मक प्रवृत्तियाँ भी चालू रहीं। सन् १९३४ में गान्धीजी ने हरिजनोद्धार आन्दोलन चलाया तो आश्रम के कार्यकर्ता इसमें प्रवृत्त हो गये। सन् १९३५ में आश्रम में ग्राम-सेवा-मण्डल की स्थापना हुई। इसके अध्यक्ष हरिभाऊजी हुए तथा मन्त्री मैं बनाया गया। यह काम अब तक चल रहा है। इसके द्वारा गाँवों में खादी उत्पादन, शिक्षा प्रचार आदि के कार्य किये जाने लगे। इन्हीं दिनों राजस्थान संघ कायम हुआ था, जिसके अध्यक्ष श्री हरिभाऊजी तथा मन्त्री श्री हीरालालजी शास्त्री थे। सन् १९४२ तक यही सिलसिला चलता रहा। भारत छोड़ो आन्दोलन में आश्रम के सारे कार्यकर्त्ता बन्दी बना दिये गए तथा आश्रम पर फिर पुलिस का अधिकार हो गया जिससे सन् १९४५ में मुक्ति मिली। इसके बाद गान्धी आश्रम का इतिहास 'महिला शिक्षा सदन' का इतिहास बन गया है।

—बालकृष्ण गर्ग

'सदन' के सम्बन्ध में

श्रीमती भागीरथीदेवी सोच रही थी कि प्रौढ महिलाओ में कुछ काम किया जाय। महिलाश्रम वर्धा से निवृत्त होने के वाद १९४१ में उन्होने और चि० शकुन्तला ने इदौर में कोई एक साल तक एक "प्रौढ महिला वर्ग" वडी सफलता के साथ चलाया था, जिसे इदौर की उस वक्त की वहनें अव तक याद करती है। अचानक एक रोज ववई के श्री कृष्णलाल वागडी मुझसे मिलने अजमेर आये और उन्होंने वताया कि वम्वईस्थित राजस्थान के कुछ धनी और सेवाभावी मित्रो ने सगठित रूप से राजस्थान में स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए एक सस्था वनाई है। उसकी तरफ से काम शुरू करने के वारे में वे मुझसे मिलने आये थे। उन्होने मुझे वताया कि "पू० जाजूजी इसमें हमारे पथप्रदर्शक है और उन्होने यह सुझाया है कि यदि राजस्थान में आपको कोई काम करना है तो श्री हरिभाऊ उपाध्याय का सहयोग प्राप्त करें। इसलिए मैं आपके पास आया हू।"

यह १९४५ की वात है। गाधी आश्रम, हटूडी सरकार के कब्जे से छूटा ही था। आगे ठोस रचनात्मक कार्य की दृष्टि से क्या काम शुरू किया जाय यह विचार मन में चल रहा था कि वागडीजी की ओर से यह सुझाव आया। वागडीजी ने आश्रम के स्थान को देखा। वह वर्षो तक सरकार के कब्जे में रहने के कारण टूटी-फूटी हालत में था। तो भी जमीन, मकान और आसपास के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर उन्होने निश्चय किया कि यहा एक वालिका विद्यालय खोला जाय जिसकी नैतिक जिम्मेदारी मुझ पर रहे, आर्थिक जिम्मेदारी वागडीजी और वम्वई के 'राजस्थान-शिक्षा-प्रचारक मडल' पर रहे तथा सस्था का प्रत्यक्ष कार्यभार भागीरथीदेवी सभालें। यह 'महिला-शिक्षा-सदन' की वुनियाद है। दो साल तक राजस्थान शिक्षा-प्रचारक मडल' के तत्वावधान में यह काम चला। फिर ऐसी स्थिति पैदा हुई जिसमें वागडीजी वगैरा आर्थिक भार उठाने में लाचार रहे और यह प्रश्न खडा हुआ कि अव किया क्या जाय। हम लोगो ने मन में सोचा कि जिन्होने विद्यालय खडा किया यदि वे आज असमर्थ होते है तो विद्यालय वन्द कर दिया जाय। परन्तु अन्त में निर्णय पू० जाजूजी पर छोड दिया गया। उन्होने मुझे कहा कि यद्यपि जिम्मेदारी वागडीजी और 'राजस्थान शिक्षा प्रचारक मडल' की रही और आज आप और भागीरथीदेवी वडी विपम स्थिति में पड गये है, फिर भी काम अगर अच्छा है, सेवा का है, और आपका और भागीरथीदेवी का नाम इसके साथ जुडा है तो इसे हर हालत में चलाना ही चाहिए और आर्थिक जिम्मेदारी भी आप लोगो को लेनी चाहिए। तव "महिला-शिक्षा-सदन" नामक सस्था (रजिस्टर्ड) वन गई और उसके तत्वावधान और नियत्रण में नये सिरे से इस विद्यालय का काम शुरू हुआ। इस तरह भागीरथीदेवी की इच्छा अचानक, थोडे से भिन्न रूप में, पूरी हुई। वे प्रौढ महिलाओ की वहन वनकर सेवा करना चाहती थी। अव अनेक वालक और वालिकाओ की माता वनने की जिम्मेदारी उन पर आ गई।

अव शुभ दिन और किसी पुण्यश्लोक महिला की तलाश हुई जिसके हाथो से इस सस्था का मगलाचरण हो। उस साल ३ अक्टूवर को चर्खा-जयती थी जो देशी हिसाव से वापू का जन्मदिन पडता था। उसी दिन इसका मगलाचरण हुआ। इससे वढकर पुण्यदिवस और क्या हो सकता था। विख्यात और प्रभावशाली माताओ और वहनो के नाम सामने आये कि जिनके हाथो इसका शुभारभ हो। परन्तु एक विचार ने उन सव पर विजय पाई और वह यह कि चाहे कम प्रख्यात और कम प्रभावकारी क्यो न हो, परन्तु जिसके हाथो उद्घाटन किया जाय वह पुण्यशील

अवश्य होनी चाहिए और यदि वह आसपास की हो तो सोना और सुहागा। चुनाचे अजमेर की चाचीजी (श्रीमती गुलाबदेवीजी) जिन्होंने इधर के क्षेत्र में स्त्री-शिक्षा का बीज बोया और जीवन भर उसको पानी दिया, पाला-पोसा, उनके हाथो इसका श्रीगणेश हुआ। भागीरथीजी ने और मैंने सकल्प किया कि यदि एक भी अध्यापक न मिला और कही से पैसा न मिला तो भी हम दोनो मिलकर विद्यालय का काम चलायेंगे। भागीरथीदेवी छात्रावास सभालेंगी और मैं विद्यालय। पाँच बालिकाए भी मिल जायें तो विद्यालय का काम शुरू कर दिया जाय, यह सकल्प हुआ।

प्रौढ महिला वर्ग का काम जब भागीरथी देवी ने इदौर में शुरू किया तो उसमें यह प्रधान सकल्प था कि वर्ग के लिए चन्दे की नौबत न आवे। उन्होंने और चि० शकुन्तला ने उसमें अपना समय दिया, साथ ही वहा की शिक्षित महिलाओ का सहयोग भी उन्हें प्राप्त हुआ, जो अवैतनिक रूप से कुछ घण्टे वर्ग में काम करती थी। भागीरथीदेवी जिस मकान मे रहती थी उसीके एक बडे कमरे मे वर्ग खोला गया। इससे उसके किराये का सवाल नही पैदा हुआ। अपनी स्लेट पेंसिल आदि पढाई की तथा चरखा आदि चीजो को पढने वाली बहनो के लाने का नियम था। इससे उन्हें खरीदने की चिन्ता न रही। बिना सस्था के पैसे के यह वर्ग दिन प्रतिदिन उन्नति करता गया। किन्तु यह विद्यालय मुख्यत चन्दे से ही चलने वाला था। फिर भी यह वृत्ति अवश्य रही कि 'रगड-भिक्षा' किसी से न मागी जाय। साधारण प्रयास से और कार्यकर्त्ताओ तथा सस्था के प्रति सद्भावना से जो कुछ सहायता मिल जाय उससे काम चलाया जाय। रिजर्व फड का भी सुझाव आया, परन्तु उस प्रलोभन में हम लोग न आये, क्योकि पू० बापू कहा करते थे कि जिस सस्था में रिजर्व फड होता है उसको हथियाने के षड्यन्त्र और तिकडम चलती रहती है। दरिद्र सस्था को आर्थिक चिन्ता भले ही बनी रहे परन्तु काम अच्छा होता है और सस्था में उन ही लोगो का प्रभाव रहता है जो सेवाकारी और पुरुषार्थी होते है। अब, जब कभी आर्थिक सकट आकर उपस्थित होता है तो जरूर ख्याल आता है कि रिजर्व फड उस समय आसानी से हो सकता था और हमने ऐसा न करके सम्भवत गलती की। परन्तु बापू की सलाह अब भी सही मालूम होती है और काम चलाऊ फड के अलावा ज्यादा कोष जमा करने में अब भी रुचि नही है।

जो विद्यालय १५ बालिकाओ से प्रारम्भ हुआ उसमें आज २७५ बालक बालिकाए शिक्षा पाती है। ठेठ शिशु वर्ग से लेकर हायर सेकेंडरी तक कक्षाए चलती है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि बहुत सीमित साधनो के बीच यह सस्था कैसे चल रही है। कठिनाइया भी आती है और गाडी आगे भी चलती जाती है, अलबत्ते काफी जोर लगाना पडता है। प्रति वर्ष किसी न किसी दिशा में सस्था विकास करती रहती है। इस सब में मै भगवान् की कृपा, पू० बापू का पुण्य और स्व० जमनालालजी बजाज की प्रेरणा कारणीभूत मानता हूँ।

कई बार मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि एक विचार कल्पना में आया और चला गया। उसके लिए कोई प्रयास और प्रयत्न नही किया गया। एक समय बाद वह अक्षरश फलीभूत होता हुआ दिखाई दिया, तो बडा आश्चर्य हुआ और आनन्द भी। इसके लिए हृदय से भगवान के प्रति धन्यवाद निकला। 'महिला शिक्षा सदन' के सम्बन्ध में भी मुझे २-३ ऐसे अनुभव हुए है जिनका जिक्र यहा कर देना अप्रासगिक न होगा।

१९११ में हिन्दू कालेजियट हाई स्कूल में भरती होने के लिए काशी गया। जैसे ही मैंने हिन्दू कालेज के भवन को देखा और उसकी सीमा में पाव रखा, मेरे मन में एक सहज प्रेरणा हुई कि एक ऐसा विद्यालय अपन भी खोल सकें तो कैसा। श्रीमती बेसेंट उन दिनो वहा सचालिका थी, प्राण थी। मन में उनको प्रणाम किया। उसके बाद जब तक श्री बागडीजी विद्यालय का प्रस्ताव लेकर न आये तब तक भी यह ख्याल न आया कि गाधी आश्रम, हटूडी में कोई विद्यालय बनाया जाय। १९२७ में जब आश्रम शुरू हुआ तो आश्रम-निवासियो के बच्चो

को पढाने की व्यवस्था जरूर की गई थी और हमारे साथी सुविधानुसार उन बच्चो को पढा दिया करते थे। इससे अधिक यहा विद्यालय बनाने की कोई कल्पना नही हुई। मैं इसे भगवान की प्रेरणा मानता हू कि चाहे किसी भिन्न रूप में ही क्यो न हो, यहा एक अच्छे विद्यालय की स्थापना और सचालन में मेरा कुछ हाथ रहा और अब भी है।

एक बार डा० सैयद महमूद अजमेर आकर रहे थे। मैं समझता हू वह सन ३५ या ३४ की बात है। आश्रम में हम कुछ कार्यकर्त्ता रहते थे। उनके हाथो से यहा राष्ट्रीय झडा फहराया गया। उन्होने सुझाया कि यह स्थान तो एक अच्छा विद्यालय होने के योग्य है। मैने जवाब में कहा कि हम लोगो का कोई विचार तो यहा विद्यालय खोलने का नही है। अगर भगवान की इच्छा होगी तो हो जायगा। विद्यालय और खासकर आर्थिक बोझ से हम लोग बचे रहना चाहते थे और ऐसी कोई जिम्मेदारी उठाना नही चाहते थे जिसकी अर्थ-व्यवस्था के लिए बराबर धनिक लोगो के पास हमें जाना पडे और उन्हें कष्ट देना पडे। धनिक लोगो के प्रति कोई मन में अरुचि रही हो, ऐसी बात नही थी, लेकिन यह धारणा जरूर थी कि किसी काम में आसानी से धन मिल जाता है तो उसका अधिक महत्व रहता है। यदि धन के लिए हमें बहुत कुछ उखाड-पछाड करनी पडे, तो समझना चाहिए कि या तो वह काम ठीक नही है या कार्य-प्रणाली ठीक नही है या कार्यकर्त्ताओ में कुछ दोष है। तो डा० साहब की शुभ प्रेरणा के बावजूद हमारे मन में विद्यालय स्थापित करने का कोई सकल्प नही हुआ। जब बागडीजी प्रस्ताव लेकर आये तब अलबत्ता काशीवाली उस समय की प्रेरणा का स्मरण हुआ और मुझे लगा कि भगवान इस दिशा में कुछ कराना चाहते है। ऐसी भावना ही हम लोगो का सम्बल है।

विद्यालय बनने के बाद अजमेर के चीफ कमिश्नर श्री शकरप्रसाद चलाकर यहा आये। हमने मन में यह निश्चय कर रखा था कि जब तक काम इतना और इस तरह का नही हो जायगा कि हम उत्साह के साथ दूसरे को दिखा सकें तब तक किसीको यहा आने का निमत्रण नही दिया जायगा। कई मित्रो ने और बडे लोगो ने देखने की इच्छा भी प्रगट की तो मैंने यही जवाब दिया कि अभी आपके देखने लायक काम नही हुआ है और जब हो जायगा तो मैं खुद आपको निमत्रण दूगा। लेकिन शकरप्रसादजी अजमेर छोडकर दिल्ली जानेवाले थे और उन्होने कहा कि मैं आपकी सस्था देखकर जाऊगा। वे बडे प्रेम से यहा आये और दिन भर रहे। जितना उनसे बना उतना उन्होने सस्था का मार्ग भी सरल किया। उन्होने अपने भाषण में कहा कि मुझे विश्वास है कि यह सस्था एक दिन स्त्रियो का एक बडा कालेज बनेगी। मैं मन में घबराया कि यहा विद्यालय चलाने में ही जान निकली जा रही है तो यह कालेज का बोझ कैसे सभलेगा! अब भी मन में कालेज बनाने की प्रेरणा नही है। फिर भी कई सद्भावी मित्र तो भावुकता में कालेज ही नही विश्वविद्यालय तक का इसे आशीर्वाद देते हैं। तब मन में यह भाव जरूर कभी-कभी जाग पडता है कि —"आवाजए खलक नक्कार ए खुदा।" वैसे तो हमने अपने को भगवान के हाथो में सौंप दिया है और भगवान जब तक हमें निमित्त बनाकर इसे चलाना चाहेगा, यह चलता रहेगा। इससे अधिक हमारे लिए इसमें सोचने की गुजाइश नही है।

इस प्रसग पर एक और स्फूर्तिदायी घटना याद आती है कि जिसमें बालको के ही नही, बल्कि सारी मनुष्य जाति को देखने की हमारी दृष्टि बदल गई। उसे भी यहा दे देना प्रासगिक होगा। मेरे एक कृपालु रिश्तेदार हैं, जो राय बहादुर हैं और मध्य भारत के असिस्टेंट पोलिटिकल एजेन्ट रह चुके है। अब पेंशनर है। आस्तिक और श्रद्धालु सज्जन हैं। एक बार मैं मिलने गया तो मुझसे कहने लगे कि, "हरिभाऊ, अब मेरा मन होता है कि दोनो लडके जो कमाने खाने लग गये हैं, उनको घर गृहस्थी सभला कर हम दम्पति हरिद्वार चले जाय। पेंशन के रुपये में से कम से कम खर्च से काम चलाकर बाकी का पैसा दरिद्रनारायण की सेवा मे लगाया जाय।" मुझे उनका यह विचार

अच्छा लगा, लेकिन मेरे मन में लोभ हुआ कि यह रुपया अपने गाँव में ही क्यो न लगे। मैंने कहा—"काकाजी, यह विचार तो आपका अच्छा है। लेकिन क्या दरिद्रनारायण अपने गाँव में नहीं है। आप यहीं रहकर अपना पैसा उनके लिए क्यों न खर्च करें?" उन्होंने कहा, "तुम्हारी बात ठीक है, परन्तु मैं यहा राय बहादुर हूँ, बडे बडे आदमी मिलने आते हैं, और मुझे उनकी और मेरी प्रतिष्ठा के अनुकूल ही उनकी आवभगत करनी पडती है, जिससे भगवद् भजन को समय भी नहीं मिल पाता। हरिद्वार में मैं मामूली आदमी की तरह रहूगा। जो पैसा बचेगा उसे भगवद्-भजन और गरीब की सेवा में लगाऊगा।" यह सुनकर अचानक मेरे मन में स्फुरण हुआ और मैं बोला—"काकाजी, जो अतिथि आते हैं, उनमें क्या नारायण नहीं है? आप उनको व्यक्ति मानते हैं इसलिए आपको उनकी सेवा एक बोझ मालूम होती है। यदि आप उनको नारायण के रूप में मान लें तो जितना मन आपका भगवान के भजन-पूजन में लगता है उससे कहीं अधिक उन जीते जागते नारायणों की सेवा में लगेगा।" मेरी बात सुनकर वह गभीर हो गये और बोले—"हा, तुम्हारी बात सही है परन्तु ऐसी भावना का होना बहुत कठिन है।" इस बात का खुद मेरे मन पर भी बडा प्रभाव पडा। उसके बाद जैसे ही मैं हटूडी आया तो यहा के बालक-बालिकाओं के प्रति मेरी दृष्टि बदल गई। अब बराबर उनमें मुझे नारायण के दर्शन होते हैं और इस सस्था के सचालन में जो भी कठिनाई आती है तो हम उसे भगवद्-अर्पण कर देते है। इससे वह बोझ अन्त में बोझ नहीं मालूम हो पाता।

श्री शकरप्रसादजी के बाद अजमेर में श्री नगरकर चीफ कमिश्नर आये। वे भी "मदन" को देखने आये। उन्होंने बालिकाओं और अध्यापिकाओं को सम्बोधित करते हुए बताया कि जर्मनी में उन्होंने एक ऐसा ही विद्यालय देखा जिसका एक अध्यापक विद्यालय में आते ही पहले बालकों को प्रणाम करता था, जब कि आमतौर पर बालक पहले अध्यापक और गुरु को प्रणाम किया करते हैं। आश्चर्यान्वित होकर उन्होंने पूछा, तो अध्यापक ने उत्तर दिया कि 'मैं बालकों को नहीं, भावी जर्मन राष्ट्र को प्रणाम करता हूँ।' और श्री नगरकर ने अध्यापकों को बताया कि इस तरह इस विद्यालय में हम भारत के भावी नागरिकों को तैयार कर रहे हैं न कि कोरे बालकों को शिक्षा दे रहे हैं। मैंने इस सुन्दर भावना के लिए उन्हें धन्यवाद दिया और बताया कि भारतवर्ष में राष्ट्र को देवता तो बाद में माना जाने लगा है लेकिन प्रत्येक नागरिक को भगवान का रूप हम भारतवासी कल्पना में ठेठ से ही मानते आ रहे हैं। हम लोग प्रत्येक जड चेतन को सदैव भगवान का स्वरूप मानते हैं। अत हम इन बालकों को भगवान का रूप मान कर उनकी सेवा करते हैं। भगवान को धन्यवाद है कि उसने इस रूप में हमें अपनी सेवा का अवसर दिया है। हमें बालरूप में उनका नित्य दर्शन होता है।

एक ओर तो अपनी भावनाओं का सुन्दर चित्र सामने आता है और दूसरी ओर जब सीमित साधनों का और कठिनाइयों का नित्य दर्शन हो जाता है तो कई बार यह प्रश्न मन में पैदा हो जाता है कि यदि अनुकूल अवसर नहीं मिल पाता है तो भगवान ने ऐसी भावना ही क्यो दी। ऐसी भावनाए देकर उसने गलती तो नहीं की हो? फिर यह विचार मन में आता है कि भगवान का कोई कार्य निरर्थक नहीं होता। यदि उसने ऐसी भावना दी है तो आज नहीं तो कल सही वह अनुकूल साधन भी देगा। अपना काम इतना ही है कि उनकी कृपा के पात्र बने रहें और जो काम अगीकार किया है उसमें तन मन से जुटे रहें। यदि हम इतना करते रहते हैं तो फिर हमें चिन्ता का कोई कारण नहीं है। क्योकि भगवान ने गीता में यह आश्वासन दिया है—

"न हि कल्याण कृत् कश्चित् दुर्गति तात गच्छति।"

—हरिभाऊ उपाध्याय

'सदन' की अध्यक्षा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

'सदन' के उपाध्यक्ष सेठ भागचन्द सोनी

'सदन' के पदाधिकारी

श्री मुकुटबिहारी लाल भार्गव
'सदन' के उपाध्यक्ष

श्रीमती भागीरथी उपाध्याय 'सदन' की मन्त्राणी
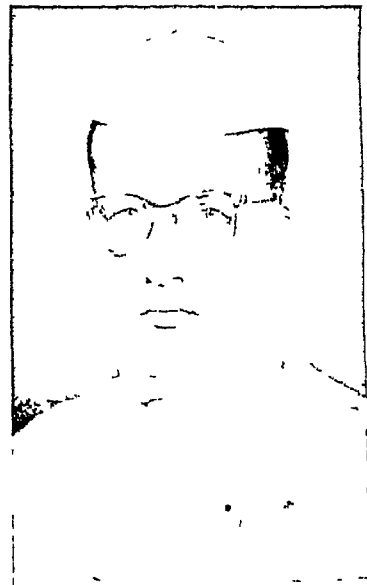
'सदन' के ट्रस्टी श्री कमलनयन बजाज

'महिला शिक्षा सदन' की स्थापना तथा विकास

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है गाधी आश्रम अपने जन्मकाल सन् १९२७ से सन् १९४४ तक राजस्थान और मध्यभारत में राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र रहा। सन् १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन में जब्त होने के बाद जब आश्रम १९४५ में वापिस मिला तो बडी बुरी हालत उसकी हो चुकी थी। ढाई तीन वर्ष तक पूर्णत उपेक्षित रहने के कारण मकान ढाँचे मात्र रह गये थे। लगभग सभी दरवाजे खिडकी दीमक की भेंट चढ चुके थे और चारो ओर घासफूस उग रहा था। न खेती हो रही थी न बागवानी। बगीचा नष्ट हो गया था और मकानो में साप बिच्छुओ और चूहो के बिल बन गये थे। अत सफाई का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मकानो की दुरुस्ती और आसपास की सफाई के बाद पुरानी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ ही फिर प्रारम्भ करने की इच्छा थी। किन्तु इसी समय एक घटना ऐसी घटी जिसने आश्रम की प्रवृत्तियो को एक विशिष्ट दिशा में मोड दिया।

आश्रम

सन् १९४४ में विजयनगर में जबरदस्त बाढ आई थी और उसमें धन जन की काफी क्षति हुई थी। जब यह समाचार पत्रो में छपा तो बम्बई के कुछ धनी मानी और सहानुभूतिशील मारवाडी बन्धुओ ने बाढ-पीडित लोगो की सहायता के लिए एक कोष इकट्ठा किया और उसे उपर्युक्त कार्य में लगाया। बाढ-पीडितो को सरकार तथा अन्य सस्थाओ की ओर से भी सहायता मिली थी अत कोष में कुछ रुपया जो सभवत २०-२५ हजार था बच गया। रुपया बच जाने पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इसका क्या उपयोग किया जाय? रुपया राजस्थान के लिए इकट्ठा किया गया था अत सबकी यही राय रही कि इसे राजस्थान के ही किसी कार्य में लगाया जाय। कुछ विचार विमर्ष के बाद यह भी तय हो गया कि इसे शिक्षा और विशेषकर स्त्री-शिक्षा के कार्य में खर्च किया जाय। मकान की सुविधा की दृष्टि से ब्यावर में बालिकाओ का एक गुरुकुल

खोलने का निश्चय हुआ और उसकी व्यवस्था के लिए अजमेर व ब्यावर के कुछ नेताओं और शिक्षा प्रेमियों की एक व्यवस्था-समिति बनाई गई। मनोनीत व्यवस्था समिति के सदस्यों में श्री हरिभाऊजी उपाध्याय भी थे। समिति के सदस्यो से, 'राजस्थान शिक्षा प्रसारक मण्डल' ने जो इसी उद्देश्य से कोष एकत्र करनेवाले सज्जनों ने बनाया था, पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया और अन्त में यह तय किया कि इसका भार श्री हरिभाऊजी उपाध्याय को ही सौंपा जाय। श्री कृष्णलालजी बागडी 'राजस्थान शिक्षा प्रसारक मण्डल' के मन्त्री थे। उनके आग्रह पर श्री हरिभाऊजी उपाध्याय ने इसे स्वीकार कर लिया। मकान तथा जमीन की सुविधा तथा प्रत्यक्ष देखभाल की अनुकूलता की दृष्टि से उन्होंने सुझाया कि गुरुकुल ब्यावर के बजाय हटूण्डी में खोला जाय। आश्रम अभी-अभी मिला ही था। वहा खादी ग्रामोद्योग आदि के स्थान पर स्त्री-शिक्षा के काय को ही प्रारम्भ करने का निश्चय कर लिया। श्री उपाध्यायजी को इस बात से और बल मिला कि सन् १९३५ से ३७ तक लगातार तीन वर्ष तक उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भागीरथीदेवी उपाध्याय ने स्व० जमनालाल जी बजाज और गाधीजी की प्रेरणा से महिला आश्रम वर्धा की व्यवस्था की थी, और वहा जो कार्य किया था उससे स्व० जमनालाल जी बजाज को सन्तोष हुआ था। अत कन्या गुरुकुल की आन्तरिक व्यवस्था वे ठीक तरह सभाल सकती थी।

'महिला-शिक्षा-सदन' की स्थापना

प्रारम्भिक तैयारियाँ जैसे मकानो की दुरुस्ती, फर्नीचर, बरतन, विज्ञापन, अध्यापक-अध्यापिकाओं की नियुक्ति आदि के बाद गाधीजी की वर्षगाठ के शुभ अवसर पर २ अक्टूबर सन् १९४५ को 'महिला शिक्षा सदन' नाम की सस्था की स्थापना करने का निश्चय कर लिया गया। तदनुसार ३ अक्टूबर के दिन हटूण्डी में एक छोटा सा समारोह किया गया। न तो किसी बडे आदमी को बाहर से बुलाया गया न कोई धूम-धाम ही की गई। अजमेर नगर जिन गुलाबदेवी 'चाचीजी' की शिक्षा सम्बन्धी सेवाओं से सुपरिचित है, उन्ही के हाथ से यह शुभकार्य करवाया गया। १०–१२ बालिकाए, १ अध्यापिका, प्रायमरी कक्षाओं तक अध्यापन, यही सदन के विद्यालय का प्रारम्भिक रूप था। सभी बालिकाए छात्रावास में रहती थीं। छात्रावास सदन की एक दूसरी किन्तु प्रमुख प्रवृत्ति थी। छात्रावास में नियमित जीवन और घरेलू कार्य की क्रियात्मक शिक्षा दी जाती थी। पाठ्यक्रम स्वतन्त्र था, सर्वश्री महादेवी वर्मा और इलाचन्द्र जोशी जैसे विद्वानों ने उसे तैयार किया था। उस समय सरकारी शिक्षा अपने परम्परागत तरीके से चली आ रही थी। देश के नेता और शिक्षा शास्त्री उसे बार बार बदलने पर बल दे रहे थे लेकिन सरकार के कान पर जू तक नही रेंग रही थी। अत सरकारी शिक्षा प्रणाली को अपनाने का तो प्रश्न ही नही था। सदन के पाठ्यक्रम की विशेषता यह थी कि उसमें कताई, बागबानी, सिलाई आदि पर काफी बल दिया गया, तथा अग्रेजी भाषा की शिक्षा बिलकुल न देने का निश्चय किया गया। पाठ्य विषयो में सगीत, नृत्य और चित्रकला को भी स्थान दिया गया।

त्रिसूत्री उद्देश्य

उद्देश्य किसी भी सस्था का प्राण होता है। उसीके अनुरूप उसका बाह्यरूप सवारा जाता है अत यहा उसके उद्देश्य के ऊपर थोडा प्रकाश डाल दिया जाय तो अनुचित न होगा। यदि एक ही वाक्य में कहना हो तो सदन गाधीजी के आदर्शों और भारतीय सस्कृति के अनुरूप नारी जीवन के सर्वांगीण विकास की सस्था है। सदन के सचालको की मान्यता है कि जीवात्मा या मानवता के रूप में स्त्री और पुरुष में कोई भेद नही

है। ईश्वर या प्रकृति ने उनके शरीर की रचना में जो भेद किया है उसे हम स्वीकार करते हैं लेकिन हमारा विश्वास है कि यह भेद परस्पर विघातक नही, पूरक है। अत जहा इनका सम्बन्ध परस्पर विघातक होता हुआ दिखाई पडे वहा उसे पूरक बनाना हम अपना कर्तव्य मानते हैं। स्त्री-जीवन का विकास और निर्माण हम इसी तरह करना चाहते हैं कि हमारा नारी समाज इस आदर्श तक पहुच सके।

इस आदर्श के अनुकूल वातावरण बनाना और शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करना सदन का मुख्य लक्ष्य रहा है। इसके लिए सदन में शिक्षा का जो ध्येय बनाया गया है उसका मूलाधार है जीवन की पूर्णता अर्थात् आत्मज्ञान, कर्मयोग और कला साधन का समन्वय। आत्मज्ञान के लिए सदन में सत्य और अहिंसा की साधना, भगवद् भक्ति तथा सेवा सम्पर्क पर बल देने का प्रयत्न किया जाता है। कर्मयोग के लिए इन्द्रिय शिक्षण, शरीरश्रम, विज्ञान और व्यवहारोपयोगी, बौद्धिक तथा औद्योगिक शिक्षा तथा कला साधना के लिए काव्य, साहित्य, चित्रकला, सगीत, वाद्य, नृत्य आदि की शिक्षा पर बल दिया जाता है। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और कला की त्रिवेणी सदन के शिक्षा सचालन की पूर्णता की कसौटी है। दूसरे शब्दो में यह कह सकते हैं कि सदन के सचालको के अनुसार शुद्धि, समृद्धि और समाधान मिलकर जीवन को पूर्णता की ओर ले जाते हैं। *कर्मयोग का फल जीवन शुद्धि होना चाहिये, कला का जीवन-समृद्धि और आत्मज्ञान का समाधान।* इन तीनो का समन्वय ही जीवन की पूर्ण सिद्धि है। यही सक्षेप में सदन का लक्ष्य है। इसीके लिए उसका श्री-गणेश हुआ है। पिछले १२ वर्षों में उसने इसी दिशा में विनम्र प्रयास किया है।

कहना न होगा कि सदन का श्रीगणेश १०-१२ लडकियो और प्राइमरी कक्षाओ के अध्यापन से ही प्रारम्भ हुआ था और प्रारम्भ में केवल एक अध्यापिका बहिन ही थी किन्तु दूसरे वर्ष के प्रारम्भ होते ही बालिकाओ की सख्या ४० हो गई। इन बालिकाओ में २२ राजस्थान की, ११ मध्यभारत की और ७ दिल्ली, कलकत्ता, हैदराबाद आदि स्थानो की थी। अध्यापिकाओ की सख्या भी बढी और नई अध्यापिका बहिनें भी रखी गईं तथा छात्रावास में भी एक और बहिन की नियुक्ति की गई। शरीरश्रम, सामूहिक सूत्र यज्ञ तथा ग्राम सेवा के कार्य प्रारभिक दो वर्षो में निरन्तर चलते रहे। शरीरश्रम में खेतो में काम करना, साग-सब्जी लगाना और आश्रम के रास्तो और स्नानघर, विद्यालय, छात्रालय आदि की सफाई ही प्रमुख रहे। उत्सवो के विशेष अवसरो पर 'पाखाना-सफाई' के कार्यक्रम भी रखे गये और बिना झिझक के किये गये। गाँवो में जाकर भी समय समय पर मार्गों की सफाई की गई और सभाओ का आयोजन किया गया। दूसरे वर्ष खाजपुरा ग्राम में ग्रामीणो को शिक्षा देने के लिए रात्रि पाठशाला खोली गई जिसमें लगभग एक वर्ष तक प्रधान अध्यापक श्री बाबूराव जोशी ने उत्साह पूर्वक अध्यापन किया। उत्सवो के आयोजन, ग्राम सफाई तथा रात्रि पाठशाला के कार्यो के कारण ग्राम के लोगो से सदन परिवार का सम्पर्क हुआ जिससे गावो की स्थिति के अध्ययन का अच्छा अवसर सदन के कार्यकर्ताओ को मिला। दूसरे वर्ष बम्बई के मुख्यमन्त्री बालासाहब खेर तथा सर्वश्री सुचेता कृपलानी, राधाकृष्ण बजाज, कमलनयन बजाज, मिश्रीलाल गगवाल, शान्तादेवी रानी-वाला, दयाशकर श्रोत्रिय आदि गण्यमान्य व्यक्ति सदन में पधारे और उन्होने उसके कार्य को एक अच्छा प्रयत्न कह कर सराहा, जिससे सदन के सचालको का आत्मविश्वास बढा।

'राजस्थान शिक्षा प्रसारक मण्डल' आर्थिक उत्तरदायित्व से मुक्त

पिछले दो वर्ष के अनुभव से प्रोत्साहित होकर सदन का कार्य और बढाया गया। अब बालिकाओ की सख्या ६० हो गई और अध्यापक वर्ग की सख्या भी ५ हो गई। इस वर्ष छठी कक्षा खोल दी गई और

उत्साह के वातावरण में कार्य प्रारभ हुआ लेकिन एक ऐसी घटना हुई जिसने उसकी प्रगति को रोका तो नही किन्तु उसकी गति मन्द अवश्य कर दी। अब तक 'राजस्थान शिक्षा प्रसारक मण्डल' सदन का आर्थिक भार वहन कर रहा था और आन्तरिक व्यवस्था का भार श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा उनकी पत्नी श्रीमती भागीरथीदेवी, जो सदन की मन्त्राणी, आजीवन सदस्या व अधिष्ठात्री थी, के ऊपर था। लेकिन इन दो ढाई वर्षों में 'राजस्थान शिक्षा प्रसारक मण्डल' का सब रुपया प्राय समाप्त हो चुका था। मण्डल इस स्थिति में नही था कि इस भार को और आगे उठा सके। अत अब सदन को चलाने का अर्थ था प्रतिवर्ष १०–१२ हजार रुपये इकट्ठा करके सदन को देना। अत उसने लिख दिया कि आगे वह आर्थिक बोझ न उठा सकेगा।

'सदन' के सचालक मण्डल के सामने एक प्रश्न उपस्थित हो गया कि इस स्थिति में क्या किया जाय। अब इसे चलाते रहना ठीक है या बन्द कर देना। कार्यकर्ता और सचालको की बैठक में यह प्रश्न रखा गया। दोनो ने ही उसे चालू रखने का निश्चय किया। इस निश्चय से अब एक गुरुतर भार सचालक मण्डल पर आ गया लेकिन उसने साहस से काम लिया। धन सग्रह के काम में सचालको को प्रतिवर्ष २–३ महीने का समय देना आवश्यक हो गया। उन्होने इस कार्य के लिए भी समय निकाला। सौभाग्य से उन्हें अपने प्रयत्न में निराश नही होना पडा। देश के बहुत से राजा महाराजा तथा धनीमानी सज्जनो ने यथाशक्ति योग दिया। काम ठीक तरह चलाने में कठिनाइयाँ अवश्य आई किन्तु उससे सचालको का आत्मविश्वास बढा ही।

सन् १९४७-४८ का वर्ष सदन के जीवन में अनेक कठिनाइयो और सफलताओ का वर्ष रहा। एक ओर वह विकास के लिए अधिक अध्यापक, नवीन प्रवृत्तियो के श्रीगणेश और अधिक श्रम की माग कर रहा था दूसरी ओर आर्थिक, शैक्षणिक एव इसी प्रकार के अन्य प्रश्न अपने हल की माग कर रहे थे। वर्ष के प्रारम्भ होते ही जहा १९४७ के अगस्त मास में देश स्वतन्त्र हुआ और अग्रेजी साम्राज्यवाद के लौह पाश से मुक्त होने के कारण हर्षविभोर हो उठा, वहा हिन्दू मुस्लिम प्रश्न, देश के बटवारे एव अन्य समस्या के कारण उसे एक विकट परिस्थिति से गुजरने के लिए भी विवश हो जाना पडा। देश में जगह जगह नोआखाली के दगो की प्रतिक्रिया होने लगी और १५ अगस्त के आसपास तो उसने भयकर रूप ही धारण कर लिया। अजमेर तथा आसपास के गांवो में भी उसकी हवा बडी जोर से फैलने लगी। अजमेर तो मुसलमानो का एक बडा तीर्थ स्थान है और वहा मुसलमान काफी सख्या में भी हैं। अत छुरेबाजी और मारपीट का वातावरण बनने लगा। सिन्ध के शरणार्थी निकट होने के कारण इधर ही बडी सख्या में आने लगे, अत असन्तोष और वैमनस्य की आग तेजी से भडकने लगी। अजमेर में उपद्रव प्रारम्भ हो गये। सदन बालिकाओ की स था था। यदि कही से आक्रमण हुआ तो क्या किया जाय, यह प्रश्न बडी तीव्रता के साथ उपस्थित हुआ। लड-कियो की सख्या लगभग ६० थी और पाच सात कार्यकर्ता थे। माता-पिताओ ने एक धरोहर की तरह ही सदन के सचालको को उन्हें सौंपा था अत उनका कोई अहित न होने पाये यही चिन्ता लगातार रहने लगी। किसी ने कहा सदन को किसी ऐसी जगह ले जाया जाय जहा ऐसा खतरा न हो, किसी ने कहा तलवार बन्दूक का प्रबन्ध किया जाय। एक पलायन का मार्ग था दूसरा आत्मरक्षा के लिए ही क्यो न हो हिंसा का मार्ग था। गाधीजी इन दोनो मार्ग को पसन्द नही करते थे अत उनके आदर्शों पर चलने वाली सस्था इन्हें कैसे अपना ले? यही तय हुआ कि यही रह कर सारी परिस्थिति का मुकाबला किया जायगा। एक ओर आत्मरक्षा के लिए बालिकाओ का मानस तैयार किया गया और दूसरी ओर आसपास के ग्रामों में शान्ति समितियो का गठन कर के शान्ति और एकता बनाये रखने का प्रयत्न किया गया। लगभग २–३ मास रात को जागते-जागते

पहले वर्ष के अन्त में सदन-परिवार

बैठे हुए बायें से—श्रीमती रमादेवी ओझा, यशोदादेवी जोशी, सुमित्रादेवी बागडी, भागीरथी उपाध्याय, चाचीजी, सुबुद्धिदेवी शास्त्री, कमलाताई वाळिंबे, ज्ञानेश्वरीताई रानडे

खड़े हुए—कृष्णाजी, बाबूराव जोशी, बाबा सेवादास, विश्वभरनाथ भार्गव, हरिभाऊजी उपाध्याय तथा अध्यापकगण

•

सदन-संस्था का विकास

•

सदन का शिक्षक-निवास
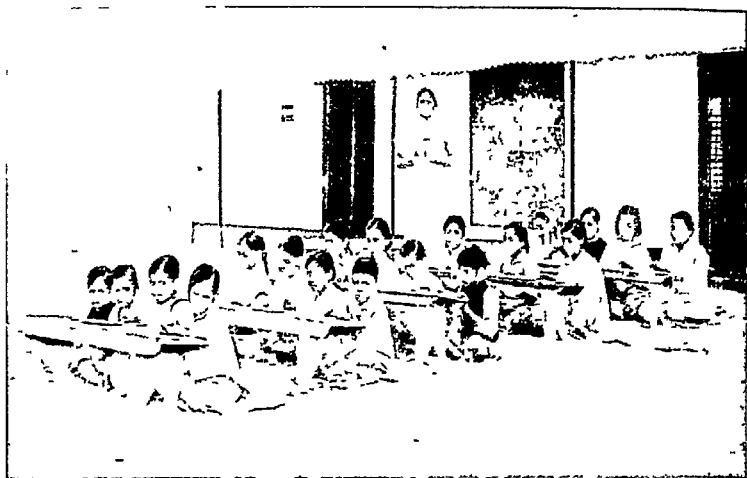
आश्रम के मुक्त वातावरण में शिक्षा प्राप्त करती हुई वालिकाएँ

सदन का पहला वर्ष
१९४६
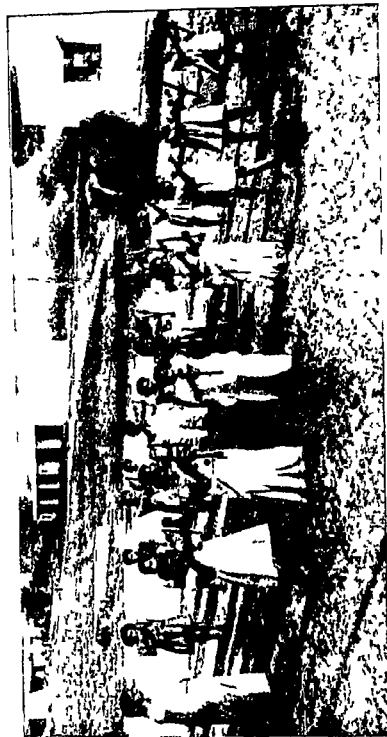
वालिकाओं की ड्रिल का एक दृश्य

लेजिम ड्रिल

भोजनालय में

सदन का छठा वर्ष (१९५२)

सिलाई वर्ग

विद्यालय की कक्षायें

१९५७

पेड़ों के नीचे मुक्त वातावरण में गणित का वर्ग

संगीत वर्ग

विज्ञान वर्ग

सिलाई वर्ग
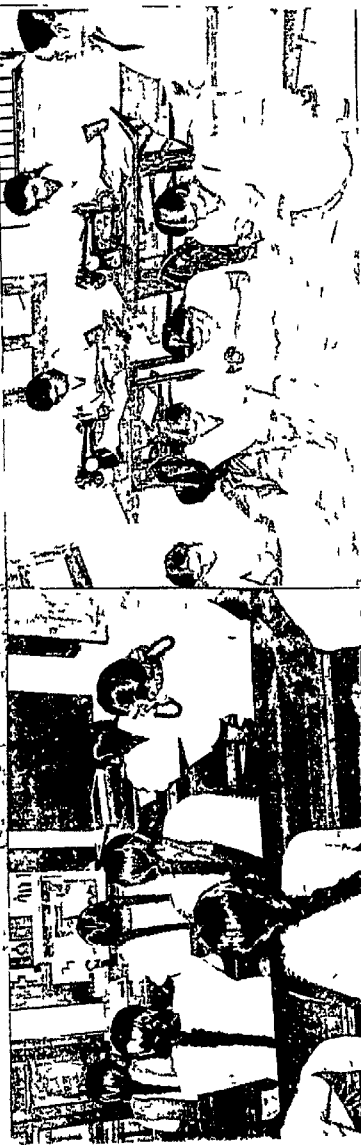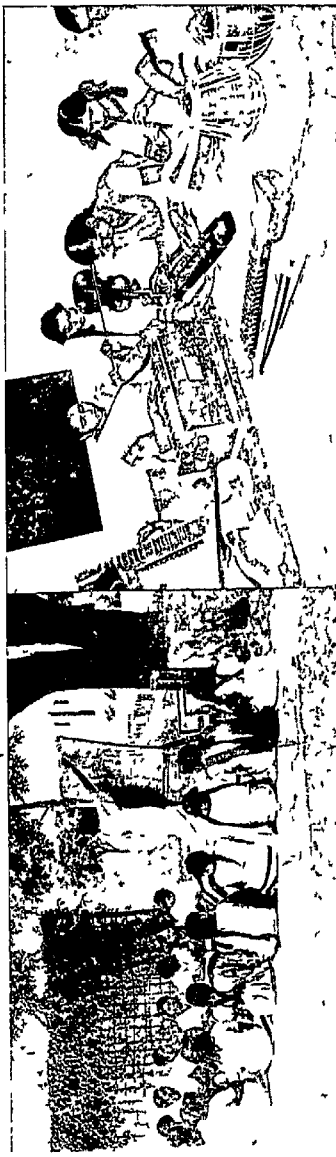
सदन परिवार (चौथे वर्ष सन् १९४८-४९ में) नेपाली लड़कियों के पीछे खड़े हुए सज्जन हैं—दाएँ से बाएँ—श्री कृष्णगोपाल गर्ग, श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री भागीरथजी कानोडिया, श्री लादूरामजी जोशी, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री बालकृष्ण गर्ग, बाबा सेवादास, शिवराम उपाध्याय, मगलमूर्तिजी

सदन-परिवार डा० राजेन्द्रप्रसाद के साथ

श्रीमती जानकी देवी बजाज, जीतमलजी लूणिया, राजकुमारी अमृतकौर, हरिभाऊजी उपाध्याय और काका साहब गाडगिल तीसरे वार्षिक उत्सव की सभा में

सदन में अतिथि

पाकिस्तान के भू० पू० उच्चायुक्त श्री इवेद कुरेशी का स्वागत (१९५१)

सदन के आठवें वार्षिकोत्सव पर मान० जगजीवनरामजी बालिकाओं का व्यायाम-प्रदर्शन देख रहे हैं

सदन के एक स्वागत-समारोह में डा० काटजू (बाएँ से दाईं ओर—डा० कैलासनाथ काटजू, हरिभाऊजी उपाध्याय, टीकारामजी पालीवाल तत्कालीन मुख्य मन्त्री, वृजसुन्दरजी तत्कालीन अर्थमन्त्री राजस्थान तथा कृष्णगोपालजी गर्ग)

केन्द्रीय उपशिक्षा मंत्री श्री कालूलालजी श्रीमाली सदन के कार्यकर्त्ताओं के बीच
बाईं ओर से—श्रीमती शकुंतला पाठक, पीछे—श्री बाबूराव जोशी, दाहिने—श्रीमती भागीरथी उपाध्याय

'महिला शिक्षा सदन'
का
विहगम दृश्य
○
विद्यालय   शिक्षक निवास   क्रीडांगण

और दिन में ग्रामो में शान्ति स्थापन करते करते बीता। ईश्वर की कृपा से सकट टल गया और सदन को किसी प्रकार की हानि नही उठानी पडी।

इस वर्ष की दूसरी समस्या यह थी कि सदन का पाठ्यक्रम स्वतन्त्र ही रखा जाय या सरकारी पाठ्यक्रम अपना लिया जाय। प्रारम्भ में तो इस सम्बन्ध में सचालक मण्डल की नीति स्पष्ट थी किन्तु बाद में देश की स्वतन्त्रता, व्यावहारिक कठिनाइयो तथा आर्थिक समस्या के कारण मत वैभिन्य दिखाई देने लगा। अध्यापको के सामने यह प्रश्न होता था कि बाहर से ५वी, चौथी या कोई अन्य कक्षा पास करके आनेवाली लडकी को सदन की कौन सी कक्षा में भर्ती किया जाय। सदन में पढाये जाने वाले कुछ विषयो में जैसे हिन्दी, गणित, इतिहास आदि में वह ठीक होती तो सगीत, कताई, चित्रकला, गृहविज्ञान, विज्ञान आदि में पिछडी हुई। सदन छोडकर जानेवाली लडकियो को बाहर के विद्यालयो में भर्ती होने पर यही कठिनाई अनुभव होने लगी। देश की स्वतन्त्रता के साथ ही बहुत से लोगो का यह विचार होने लगा कि अब तो सरकार हमारी अपनी ही बन गई है। वह शिक्षा में भी अनुकूल परिवर्तन करनेवाली है फिर अपनी ढपली अलग क्यो बजाई जाय? सरकारी पाठ्यक्रम अपना लेने से सरकारी सहायता मिलना भी निश्चित था और इस प्रकार आर्थिक कठिनाई भी बहुत कुछ अशो में हल हो जाती थी अत कुछ लोगो की यह निश्चित राय बन रही थी कि अब स्वतन्त्र पाठ्यक्रम का मोह छोडकर सरकारी पाठ्यक्रम अपना लिया जाय तथा कताई, बुनाई, सिलाई, सगीत, चित्रकला, नृत्य, बागवानी आदि प्रवृत्तियो को उसी प्रकार चलने दिया जाय। उसमें सरकार भी कोई बाधा नही डालेगी। अत इस प्रश्न पर विचार करने के लिए इस वर्ष के अन्त मे अर्थात् मई १९४८ में वार्षिक उत्सव के साथ साथ एक शिक्षा परिषद का भी आयोजन किया गया। शिक्षा परिषद मध्यभारत के वयोवृद्ध शिक्षा शास्त्री डा० हरि रामचन्द्र दिवेकर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ और काफी विचार विनिमय के बाद सरकारी पाठ्यक्रम अपना लेने का निश्चय कर लिया गया।

तीसरे वर्ष की नवीन प्रवृत्तियां

इस वर्ष गोशाला और औषधालय की दो नई प्रवृत्तियो का श्रीगणेश हुआ। सेवाग्राम की गोशाला के इचार्ज तथा कर्मठ रचनात्मक कार्यकर्ता बाबा बलवन्त सिंह और सदन के तपस्वी सेवक बाबा सेवादासजी ने ३-४ मास तक कठिन परिश्रम किया और आसपास के ग्रामो से अच्छी नस्ल की १०-१२ गायें खरीदी गई तथा स्व० श्रीकृष्णदास जी जाज् के हाथो उसका उद्घाटन करवाया गया। गोशाला स्थापित करते समय यही उद्देश्य था कि इससे जहा बालिकाओं को शुद्ध दूध प्राप्त हो सकेगा वहा उन्हें गोपालन की क्रियात्मक शिक्षा भी दी जा सकेगी। दूसरी नवीन प्रवृत्ति थी औषधालय। अब सदन परिवार में बालिकाए एव कार्यकर्ता मिलकर लगभग १०० व्यक्ति थे और सदन के स्वास्थ्य वर्धक जलवायु के बावजूद किसी-न-किसी प्रकार के रोग से २-४ व्यक्ति पीडित रहते ही थे। नसीराबाद से प० सुवालाल, विजयनगर से डा० रामरिक्षपाल शुक्ल तथा अजमेर से वैद्य रमेशचन्द्र समय-समय पर आते रहते थे किन्तु कभी कभी औषधालय का अभाव बडा खटकने लगता था। अत एक औषधालय की स्थापना की गई। सदन की प्रधान सरक्षिका एव भारत सरकार की स्वास्थ्य मन्त्राणी राजकुमारी अमृतकौर ने इस कार्य में भारत सरकार से कुछ सहायता दिलवाई, कुछ राज्य सरकार ने दी और कुछ का भार सदन ने अपने ऊपर उठाने का निश्चय किया। प्रारम्भ मे एक प्रशिक्षित उपचारिका (नर्स) और आवश्यक औषधियो के साथ औषधालय का कार्य प्रारम्भ हुआ। डा० शुक्ल ने इस कार्य में प्रारभ से ही बडी लगन और सेवा भावना से कार्य किया। उनकी अवैतनिक सेवाएं आजतक सदन को प्राप्त है।

तीसरे वर्ष के अन्त में वार्षिकोत्सव का विशाल आयोजन श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर की अध्यक्षता में हुआ। उत्सव का उद्घाटन काका साहब गाडगिल ने किया। सदन की अध्यक्षा श्रीमती सुचेता कृपलानी भी इस अवसर पर उपस्थित थी। बालिकाओ के हाथ की बनी हुई चीजो की एक प्रदर्शिनी भी आयोजित की गई जिसका उद्घाटन श्रीमती जानकीदेवी बजाज ने किया। शिक्षा परिषद की अध्यक्षता डा० हरि रामचन्द्र दिवेकर ने की। सारा कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ और आगत अतिथियो ने सदन का मार्ग दर्शन करने के साथ साथ उसके कार्य की प्रशसा करके उसे अत्यधिक प्रोत्साहित किया।

इस वर्ष भारत सरकार के तत्कालीन खाद्यमन्त्री डा० राजेन्द्रप्रसाद भी सदन में पधारे। उन्होंने ध्यान से उसकी विभिन्न प्रवृत्तियो को देखा तथा आशीर्वाद दिया।

चौथा वर्ष

शिक्षा परिषद के निश्चय के अनुसार इस वर्ष अजमेर राज्य के शिक्षा विभाग से विद्यालय को मान्यता दिलाने का प्रयत्न किया गया और वर्ष के अन्त में सदन के मिडिल स्कूल को शिक्षा विभाग से मान्यता प्राप्त हो गई। इस वर्ष के अन्त तक बालिकाओ की सख्या ७५ तथा अध्यापिकाओं की सख्या ८ हो गई। इसी वर्ष भारत सरकार ने पजाब की शरणार्थी बालिकाओं को जिनकी सख्या २५ थी शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजा। सौभाग्य से 'बुनियादी तालीम' के एक प्रशिक्षित अध्यापक श्री राजकुमार निरुला की सेवाए भी सदन को प्राप्त हो गई जिससे प्रारभिक कक्षाओ में बुनियादी शिक्षा प्रारभ करने तथा कताई विभाग को विकसित करने में बडी सहायता मिली। इसी वर्ष शिक्षा विभाग से प्राथमिक सहायता भी मिली और आर्थिक समस्या बहुत अशो में हल हो जाने की सम्भावनाए बढी। सदन की बालिकाओं ने इस वर्ष जयपुर काग्रेस में सेवा कार्य भी किया।

पाचवा वर्ष

सदन की प्रवृत्तियो के विकास तथा कुछ नवीन प्रवृत्तियों के श्रीगणेश की दृष्टि से पाचवा वर्ष काफी महत्व रखता है। इस वर्ष पाच कार्यकर्ता एव २४ बालिकाओं ने वस्त्र स्वावलम्बन का व्रत लिया। सदन के आचार्य श्री बाबूराव जोशी की अध्यक्षता में कताई मण्डल की स्थापना हुई तथा कताई बुनाई के काम में काफी प्रगति हुई। इस वर्ष कताई विभाग को व्यय के पश्चात् १५० रु० का, कृषि विभाग को ६०१ रुपये का तथा सिलाई विभाग को ९७ रु० का लाभ हुआ जो आगामी वर्षो में और भी बढता गया। स्वावलम्बन की दिशा में यह एक अच्छा प्रयास था।

सरदार पटेल की वर्षगाठ पर बालिकाओ को साइकलिंग और 'नर्सिंग' की शिक्षा देने का कार्य आरभ किया गया। साइकलिंग सिखाने के लिए इस वर्ष एक साइकिल खरीदी गई और आगामी वर्ष दो और साइकिलें खरीद ली गई। इधर औषधालय से अबतक चिकित्सा का लाभ ही मिलता था अत यह निश्चय किया गया कि बालिकाओ के 'बैच' बनाकर उन्हें प्राथमिक चिकित्सा एव नर्सिंग आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान कराया जाय। सरदार पटेल के जन्म दिवस पर ये दोनो कार्य प्रारम्भ कर दिये गए।

इसी वर्ष सदन के कार्यकर्ताओं ने हटूण्डी मल्टीपरपज कोआपरेटिव सोसायटी नामक एक सहकारी समिति का श्रीगणेश किया। अजमेर से सात मील के फासले पर होने के कारण प्रत्येक वस्तु के लिए अजमेर का मुह देखना पडता था। सोसाइटी के निर्माण से हटूण्डी में ही एक स्टोर बनाया गया और आवश्यकता की लगभग सभी चीजें इसके द्वारा प्राप्त होने लगी। आगे चलकर सदन में नल, बिजली और आटे की चक्की लगाने का

काम भी इसी सोसायटी ने अपने ऊपर लिया और उसकी सेवाओ से सदन को प्रकाश और जल प्राप्त करने में सुविधा मिली। इसी वर्ष सर्वोदय वाचनालय की स्थापना हुई। श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने अपने व्यक्तिगत वाचनालय की ३५० पुस्तकें सदन को भेंट कर दी और कुछ पुस्तकें सदन ने मगवाकर यह शुभारभ भी कर दिया।

सदन के विद्यालय ने इस वर्ष विज्ञान की कक्षाए प्रारभ की। विज्ञान के वर्ग के लिए श्री सेठ सोहनलाल दूगड ने ४ हजार रुपये की सहायता दी जिससे आवश्यक सामान खरीदा गया। आगामी वर्षो मे इस विभाग में और रुपया खर्च किया गया और २–३ वर्ष में ही वह हाईस्कूल तक की शिक्षा के लिए अच्छा बन गया। विज्ञान विभाग का यह विकास डा० ताराचन्द की प्रेरणा का फल था। उन्होने सदन में पधार कर अपने भाषण में इस बात पर बल दिया कि अग्रेजो के जाने के बाद महिला डाक्टर और नर्सों की बडी कमी दिखाई देती है। भारतीय महिलाओ को इस क्षेत्र में आगे बढना चाहिए। यह क्षेत्र उनके स्वभाव और रुचि के अनुकूल होगा तथा रोगी-परिचर्या एक विशुद्ध सेवाकार्य भी है। इस वर्ष 'दीपिका' नामक एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका प्रारभ की गई। सदन की बालिकाओ और अध्यापिकाओ के सम्पादन में प्रति तीसरे महीने यह पत्रिका निकलने लगी। बालिकाओ में साहित्यिक रुचि पैदा करने में इस पत्रिका ने बडा योग दिया।

इस वर्ष के प्रारभ में नवी कक्षा प्रारभ करना आवश्यक हो गया। आठवी कक्षा पास कर के सदन की बालिकाए बाहर नही जाना चाहती थी और उनके सरक्षक भी सदन के वातावरण में ही शिक्षा दिलाना पसन्द करते थे। अत नवी कक्षा खोल दी गई और हाईस्कूल की मान्यता के लिए अजमेर बोर्ड को आवेदन पत्र भेज दिया गया। वर्ष के अन्त में बोर्ड ने तीन निरीक्षको की नियुक्ति की जिन्होने आकर विद्यालय का निरीक्षण किया और उसे अस्थायी मान्यता देना स्वीकार कर लिया।

२६ नेपाली छात्राओ के आने से इस वर्ष बालिकाओ की सख्या ११३ हो गई और हाईस्कूल का श्रीगणेश करने के लिए अध्यापिकाओ की सख्या भी बढा दी गई। अब विद्यालय में १४ अध्यापिकाए, छात्रालय में ६ कार्यकर्त्रियाँ, गोशाला एव कृषि में ८ कार्यकर्ता तथा कार्यालय में ४ कार्यकर्ता हो गये। इस वर्ष श्री रामेश्वरप्रसाद नेवटिया ने तैरने का हौज बनाने के लिए ५००० की सहायता दी, जिससे हौज बना और श्री शकरराव देव के हाथो उसका उद्घाटन हुआ। इस हौज के बनने से तैरने की शिक्षा देने का एक और साधन उपलब्ध हो गया।

अन्य प्रवृत्तियो में इस वर्ष वृक्षारोपण का कार्य विशेष उत्साह से किया गया। पिछले वर्ष लगभग ३०० पेड लगाये गये जिनमें से काफी पेड पुष्ट भी हो गए अत पुराने अनुभव से प्रोत्साहित होकर ३५० पेड और लगाये गये। इसके बाद तो आगामी २ वर्षो तक एक एक हजार पेड लगाये गये तथा उनको अधिक सख्या में सुरक्षित रखने के लिए अजमेर राज्य सरकार की ओर से लगातार दो वर्ष तक 'शील्ड' मिलती रही।

सातवा, आठवा और नवा वर्ष सदन के जीवन में उसकी स्थिति सुदृढ बनाने की दृष्टि से अपना निजी महत्व रखता है। इसी अवधि मे पहिला आम चुनाव सम्पन्न हुआ और श्री हरिभाऊ उपाध्याय अजमेर राज्य के मुख्य मन्त्री बने। इस घटना से सदन के कार्यकर्ताओ और बालिकाओ को जहा प्रसन्नता हुई वहा इस बात का दु ख भी हुआ कि उनका प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त करने के मार्ग में कठिनाइयाँ आने लगी है। उनको अजमेर रहना पडा और सदन को वयस्क पुत्र या पुत्री की तरह अपने पैरो पर खडे होने के लिए विवश होना पडा। इसमें कुछ लाभ हुआ, कुछ हानि भी। लाभ तो यह कि उन्हें स्वावलम्बन की दिशा में प्रयत्न करने का अवसर मिला और हानि यह कि उनके व्यक्तित्व से जो आर्थिक और अन्य प्रकार की सहायता

मिलती थी वह लगभग बन्द सी हो गई जिसके अभाव मे उसकी प्रवृत्तियो का और अधिक विकास न हो सका। केवल सरकारी सहायता के भरोसे कार्य चलाना पडा जिससे वेतन देने में देर होने लगी और कार्यकर्ताओ को कठिनाई का सामना करना पडा। इस वर्ष हाईस्कूल का पहिला वैच परीक्षा मे सम्मिलित हुआ और दुर्भाग्य से पाच में से एक ही वालिका पास हो सकी। लेकिन आगामी वर्षो में इस दिशा में प्रयत्न किया गया तथा सन् १९५३ की हाईस्कूल परीक्षा मे ८० प्रतिशत, १९५४ की परीक्षा मे ९० प्रतिशत, १९५५ की परीक्षा मे ६५ प्रतिशत तथा १९५६ की परीक्षा में ९० प्रतिशत परिणाम रहा जो काफी सन्तोषजनक था। इससे उसकी प्रतिष्ठा वढी और अजमेर राज्य के अच्छे-अच्छे विद्यालयो में इसकी गिनती होने लगी।

वस सर्विस

इन वर्षो में अजमेर के सरक्षको ने यह इच्छा वार वार व्यक्त की कि अजमेर की वालिकाओ को भी सदन की प्रगतिशील शिक्षा का लाभ मिले। सदन में वालिकाओं की सख्या भी लगभग १००—१२५ ही रहती थी और इनमें से अधिकाश वालिकाए छात्रावास मे ही रहती थी अत सचालक मण्डल ने एक वस चलाने की योजना वनाई। हटूण्डी मल्टीपरपज सोसायटी ने एक ट्रक खरीद कर और उसकी वॉडी तैयार करवाकर एक वस उपलब्ध करवा दी। १९५३-५४ मे इस वस से लगभग ५० वालिकाए आने जाने लगी। इससे सदन के छात्राओ की सख्या १५० हो गई। दूसरे वर्ष स्व० श्री रफी अहमद किदवई की सहायता और प्रेरणा से एक और वस उपलब्ध हो गई और सन् १९५४-५५ से दो वसे चलने लग गई। अव तो छात्राओ की सख्या और वढ गई और वह २०० हो गई। वढते वढते यह सख्या सन् १९५६-५७ के अन्त तक ३०० तक पहुच गई। वस सर्विस प्रारभ होने से अजमेर शहर की वालिकाओ को भी सदन की शिक्षा का लाभ मिलने लग गया।

वाल मन्दिर की स्थापना

सन् १९५४-५५ में सदन मे एक और नवीन प्रवृत्ति का श्रीगणेश हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में पिछले २५-३० वर्षो में ६ वर्ष तक के वालको की शिक्षा की ओर प्रगतिशील देशो के शिक्षा शास्त्रियो का ध्यान जिस प्रकार आकर्षित हुआ और इस दिशा में उन्होने जो प्रगति की वह किसी से छिपी नही है। इस क्षेत्र में विदुषी मान्टेसरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे भारत भी इस सम्वन्ध में पधारी थी और यहा भी अनेक स्थानो पर वाल-मन्दिरो की स्थापना हुई थी। उन्हीके प्रयत्नो से प्रेरणा लेकर इस वर्ष वाल मन्दिर की स्थापना यहा भी हुई। दूसरे वर्ष श्रीमती दुर्गावाई देशमुख के हाथो उसके भवन का शिलान्यास करवाया गया और आगामी वर्ष उसका एक भाग वनकर तैयार हो गया।

कमला नेहरू विद्यालय का शिलान्यास

अव तक सदन की शिक्षा विद्यालय के ५-७ कमरो तथा ५-७ ओपन एअर क्लासेज के रूप में पेडो के नीचे चल रही थी। न्यूनातिन्यून व्यय में शिक्षा व्यय चलाने तथा वडे वडे भवनो के असहनीय व्यय से वचे रहने पर अनेक शिक्षा शास्त्रियो ने उसकी प्रशसा ही की थी, किन्तु जैसे जैसे कताई, वुनाई, सिलाई, सगीत, नृत्य, वाचनालय, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गृहविज्ञान आदि विभागो का विकास होता जाता था, वैसे वैसे शिक्षण सामग्री भी वढती जा रही थी तथा कमरो की आवश्यकता भी वढती जा रही थी। सौभाग्यवश जुलाई सन् १९५४ में जव अखिल भारतीय महासभा का अधिवेशन अजमेर में हुआ तथा नेहरूजी यहा पधारे तो उनके हाथो ही कमला नेहरू विद्यालय का शिलान्यास करवाने का निश्चय किया गया। नेहरूजी ने कृपापूर्वक यह प्रार्थना स्वीकार

प० जवाहरलालजी नेहरू का
'सदन' की बालिकाओ द्वारा स्वागत

'सदन' में पंडित जवाहरलाल नेहरू

बोधि वृक्षारोपण

पंडित नेहरू 'सदन' में बोधिवृक्ष लगाने के बाद

छोटी-छोटी बालिकाओं का एक कार्यक्रम

कमला नेहरू विद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर आयोजित समारोह का एक दृश्य

कमला नेहरू विद्यालय का शिलान्यास करते हुए

पंडितजी ने विद्यालय का शिलान्यास करते हुए कहा--"देश में जगह-जगह ऐसे दीपक जलाये जाय।"

पडित नेहरू 'सदन' की बालिकाओं के स्वागत के निमित्त रखे
गये सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेने वाली लड़कियों के बीच

पडित नेहरू 'सदन' के उद्योग मन्दिर में
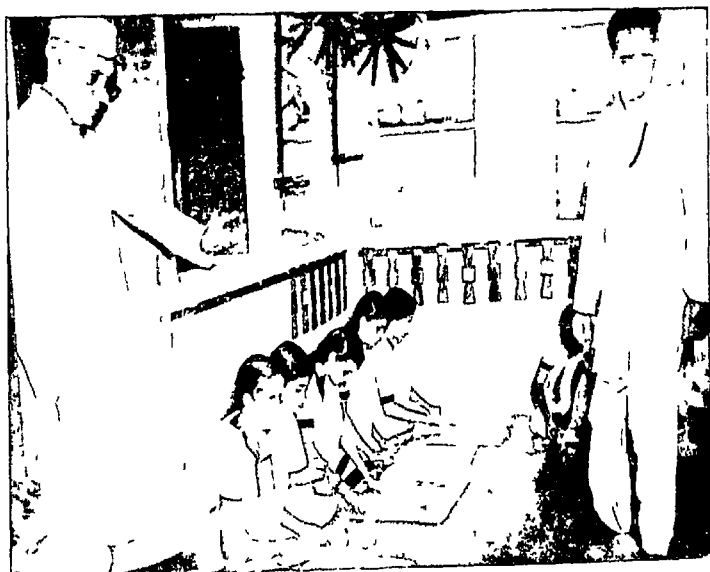
की। वे सदन में पधारे। अपने हाथो उन्होंने बोधिवृक्ष की एक शाखा सदन की भूमि में लगाई तथा नये विद्यालय भवन का शिलान्यास भी किया।

इस अवसर पर पडितजी ने सदन को आशीर्वाद देते हुए कहा था—"मुझे खुशी हुई कि एक चीज जिसकी हवाई तस्वीर मन में थी उसको देखा और उसके काम को देखा, उसके बारे में सुना कि किस तरह् बढा है और बढता जाता है। जाहिर है कि यह काम अच्छा है। आप लोगो के साथ मेरा आशीर्वाद है ही। दिन में भी हम विद्या का दीया जलाते हैं तो कुछ रोशनी उससे इधर-उधर होती है। यहा के बच्चो को देखकर मुझे इत्मीनान है कि काम अच्छी तरह् से बढेगा।" प्रसन्नता की बात है, उसका कार्य प्रारभ हो गया है। सन् १९५६-५७ में राजस्थान सरकार ने उसके निर्माण के लिए २५ हजार तथा केन्द्रीय सरकार ने ३६००० रुपया भी दे दिया है। आशा है, भवन जल्दी ही तैयार हो जायगा।

बहूद्देशीय माध्यमिक विद्यालय

दसवें वर्ष सन् १९५५-५६ में इस विद्यालय को बहूद्देशीय उच्च माध्यमिक विद्यालय बनाने के लिए राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार से सहायता देने की प्रार्थना की गई। कुछ प्रयत्न के बाद वह स्वीकार कर ली गई और ११ वें वर्ष सन् १९५६-५७ में उसका श्रीगणेश कर दिया गया। सर्वप्रथम ललित कला तथा गृह विज्ञान की शिक्षा प्रारभ की गई। सदन की प्रगति की दृष्टि में यह एक अन्य प्रगतिशील कार्य था। इससे अध्यापको की सख्या २० हो गई तथा छात्राओ की ३००।

इस आश्रम में रचनात्मक और राजनैतिक प्रवृत्तियाँ ही जब प्रमुख रूप से चल रही थी तब सन् १९३२ में डा० सैयद महमूद ने एक बार झडा फहराते हुए कहा था—यह स्थान एक विद्यालय के लिए उपयुक्त है। अच्छा होता यहा एक विश्वविद्यालय बनता। वर्षों बाद अकस्मात् उनके वाक्य का एक भाग सत्य हो गया। क्या आश्चर्य यदि कुछ वर्षों बाद उसका दूसरा भाग भी सत्य हो जाय।

—बाबूराव जोशी

'सदन' की प्रवृत्तियों का परिचय

महिला शिक्षा सदन केवल विद्यालय नही है और न उनकी तरह परीक्षाएँ पास करवाना ही उसका लक्ष्य है। वह जीवन के सर्वांगीण विकास पर दृष्टि रखनेवाली सस्था है और इस लक्ष्य को प्राप्त करना ही उसका प्रमुख उद्देश्य है। वस्तुत यह एक वहुत वडा लक्ष्य है और इसे प्राप्त कर लेना भी आसान कार्य नही है तथापि पिछले १२ वर्षों में उसने विनम्रतापूर्वक अपने सीमित साधनो से उसी दिशा में चलने का प्रयत्न किया है। जीवन कोई ऐसी वस्तु नही जो उसका विकास केवल विद्यालय और उसकी पढाई लिखाई में सिमिट कर समा जाय। विद्यालय की पढाई लिखाई के वाद भी ऐसी बहुत-सी चीजें वच जाती हैं जो कम महत्त्व की नही होती, कभी-कभी तो अधिक महत्त्वपूर्ण भी होती है। जैसे हाथी के सिर, पैर या पूछ देखने वाला उन्हें हाथी कह देता है किन्तु केवल सिर, पैर या पूछ हाथी नही होता। हाथी तो सिर, पैर, पूछ, सूड, नाक, कान, पीठ, पेट सवको मिलाकर ही होता है, उसी प्रकार विद्यालय जीवन के एक अग के विकास का साधन हो सकता है, उसके द्वारा सारे अगो के विकास की आशा नही की जा सकती। अत सर्वांगीण विकास को अपना लक्ष्य वनाकर सदन के सञ्चालको ने जैसे-जैसे अनुकूलता मिली उसके आसपास ऐसी प्रवृत्तियाँ खडी करने का प्रयत्न किया जो उसके विभिन्न अगो के विकास में भी योग दे सके। वालिकाएँ विद्यालय में विद्याध्ययन करने के वाद जीवन का विकास करने वाली अन्य प्रवृत्तियो के द्वारा उस कमी को पूरा करने का प्रयत्न करे जो विद्यालय में पूरी नही हो पाती। सदन की ये विभिन्न प्रवृत्तियाँ हैं—कमला नेहरू वहूद्देशीय उच्चतर माध्यमिक पाठशाला, प्रायमरी स्कूल, वाल मन्दिर, छात्रावास, औषधालय, गोशाला और कृषि, कताई-बुनाई विभाग, कोआपरेटिव सोसायटी आदि। यहाँ सक्षेप में उन्हीका परिचय दिया जा रहा है।

कमला नेहरू वहूद्देशीय उच्चतर माध्यमिक पाठशाला

विद्यालय सदन की प्रमुख प्रवृत्ति है। उसीके साथ सदन का श्रीगणेश हुआ था। उस समय वह केवल प्रायमरी स्कूल के रूप में था। सन् १९४९ में वह मिडिल स्कूल वना, ५१ में हाई स्कूल तथा ५६ में वहूद्देशीय उच्चतर माध्यमिक पाठशाला। प्रारम्भ में उसमें १०–१२ वच्चे शिक्षा पाते थे, अव उनकी सख्या लगभग ८० है और अध्यापिकाओ की सख्या १५। लगभग सभी अध्यापिकाएँ ट्रेण्ड ग्रेजुएट या पोस्ट ग्रेजुएट हैं। हिन्दी, अगरेजी, गणित, साधारण विज्ञान आदि विपयो के अतिरिक्त विज्ञान, गृह विज्ञान, चित्रकला, सगीत, नृत्य, कताई, सिलाई आदि समयोपयोगी विपयो की शिक्षा का समुचित प्रवन्ध है। इस समय ललित कलाओ तथा गृह विज्ञान के विपयो की शिक्षा ही ऐच्छिक विषयो के रूप में दी जाती है। विद्यालय का अपना एक वाचनालय है जिसमें विभिन्न विषयो की लगभग पाँच हजार पुस्तके हैं तथा लगभग २५ दैनिक, मासिक, साप्ताहिक पत्र आते रहते हैं। विद्यालय के सिलाई, कताई और वुनाई के विभाग काफी समृद्ध हैं। कताई प्रत्येक कक्षा के लिए अनिवार्य है। वुनाई में स्वावलम्वन की दृष्टि प्रमुख है। वुनाई सव वालिकाओ को नही सिखाई जाती। इस विभाग का ज्यादातर उपयोग कते हुए

सूत का कपडा वना लेने में ही होता है। विद्यालय की एक त्रैमासिक पत्रिका 'दीपिका' विद्यार्थियो और अध्यापको के सहयोग से निकलती है। इस पत्रिका को निकलते हुए छ वर्ष का समय हो गया है।

विद्यालय में खेल और व्यायाम पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। वेडमेन्टन, रिंग, लाठी, लेजिम, ड्रिल, डम्बेल्स आदि साधारण खेल और व्यायाम के अतिरिक्त सदन का अपना तरणताल है जहाँ वालिकाओ को तैरना सिखाया जाता है। सदन की दो सायकिलें है जो सायकिलें चलाने की शिक्षा के काम में आती है। इसी प्रकार वालिकाएँ खेती, वागवानी और गोशाला में भी कभी नियमित रूप से, कभी मुख्य अवसरो पर वारीवारी से कार्य करती है।

सन् १९५१ से १९५६ तक विद्यालय से लगभग ५० वालिकाओ ने अजमेर वोर्ड की हाई स्कूल परीक्षा दी। एक आध वर्ष को छोड कर प्राय प्रत्येक वर्ष परीक्षा फल ९० फीसदी के आसपास रहा।

प्रायमरी स्कूल

प्रायमरी स्कूल सदन की वैसे कोई अलग प्रवृत्ति नही है लेकिन शिक्षा-विभाग के नियमो के अनुसार वह एक अलग प्रवृत्ति के रूप में चल रहा है। कमला नेहरू वहूद्देशीय उच्चतर माध्यमिक पाठशाला से अलग वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। इस विभाग में पहली से लेकर पाँचवी कक्षा तक की शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रम सरकारी ही है तथापि कताई, चित्रकला, सगीत, नृत्य आदि की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस विभाग में ४ अध्यापिकाएँ और १२० वालिकाएँ है। यहाँ वालक-वालिकाएँ साथ-साथ पढते है जवकि माध्यमिक विभाग में केवल लडकियाँ ही शिक्षा पाती है।

कस्तूरवा छात्रावास

विद्यालय की भाँति 'कस्तूरवा छात्रावास' भी सदन की मुख्य प्रवृत्ति है। यदि शिक्षा को जीवन की कला मान लिया जाय तो यह कला जीवन से और जीवन के द्वारा ही सिखाई जा सकती है, जीवन से दूर भाग कर नही। प्रारम्भ से ही छात्रावास को चलाने एव उसकी सुव्यवस्था का ध्यान रखने में सञ्चालको का यही हेतु रहा है। प्रारम्भ से सव वालिकाएँ छात्रावास में रहती थी लेकिन जव अजमेर से हटूण्डी तक सडक वन गई और आदर्शनगर, नगरा, विहारीगञ्ज आदि मुहल्लो के निवासियो की माँग हुई कि वहाँ के वच्चो को भी सदन के विद्यालय का लाभ मिलना चाहिए तो सन् १९५३ मे एक वस चलाई गई। माँग इतनी वढी कि दूसरे ही वर्ष एक और वस चलानी पडी और लगभग १५० वच्चे अजमेर शहर से पढने के लिए आने लगे। यद्यपि वस चलने से अजमेर के वच्चो की सख्या वढ गई है तथापि छात्रावास के महत्त्व पर सञ्चालको का आग्रह कम नही हुआ है।

छात्रावास में प्रारम्भ में ८-१० लडकियाँ थी लेकिन वढते-वढते सन् १९५२ में उनकी सख्या १३५ तक पहुँच गई। लेकिन जव सख्या वढ गई तो यह अनुभव हुआ कि अव व्यक्तिगत रूप से एक-एक वालिका पर ध्यान नही दिया जा सकता। स्थान भी कम था ही, अत ज्यादा वालिकाएँ वढाने का आग्रह छोड दिया गया। वैसे अव शिक्षा की व्यवस्था भी सव कही वढती जा रही है अत सदन के छात्रावास में हरिजन और पिछडी हुई जाति की वालिकाओ को विशेप सुविधा दी जाने लगी है। इस समय ऐसी वालिकाओ की सख्या १२ है। छात्रावास में कुल लडकियाँ २२ है।

छात्रावास में अपना वहुत-सा प्रवन्ध और कार्य वालिकाएँ स्वय ही करती है। अपने कमरे की सफाई, रसोईघर की सफाई, सब्जी काटना, अपने-अपने वर्तन साफ करना आदि कार्य वालिकाएँ अपने हाथ से करती है। कपडे धोने और खाना वनाने के लिए आदमी का प्रवन्ध है, फिर भी प्रति इतवार को वालिकाएँ स्वय भोजन वनाती हैं और कुछ वालिकाएँ कपडे भी अपने हाथ से ही धोती है। छात्रावास में रहने वाले वच्चो के लिए खादी पहिनने का आग्रह रखा जाता है।

छात्रावास में नियमितता, समय की पाबन्दी, हाथ से काम करना तथा मेल-जोल से रहने पर विशेष जोर दिया जाता है। विद्यालय में अपना कार्य सब बालक बालिकाएँ प्रार्थना करके ही प्रारम्भ करते हैं, किन्तु उस प्रार्थना के अलावा छात्रावास में प्रतिदिन दो बार प्रार्थना होती है। प्रातःकालीन प्रार्थना प्रातःकाल ५ बजे और सायंकालीन प्रार्थना सायंकाल ७ बजे। इन दोनों प्रार्थनाओं में सदन परिवार के सब लोग भी सम्मिलित होते हैं। सदन किसी धर्म-विशेष की संस्था नहीं है। अतः प्रार्थनाओं में सभी धर्मों के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों पर जोर दिया जाता है और इस प्रकार उनके द्वारा नैतिक शिक्षा दी जाती है। उत्सवों का आयोजन प्रायः बालिकाएँ करती हैं तथा खेल, गोशाला, बागवानी आदि के कार्यों में भी वे नियमित रूप से भाग लेती हैं। नियमित जीवन, समय की पाबन्दी, सच्चरित्रता, स्वावलम्बन, सफाई, सहयोग, अनुशासन आदि जिन गुणों की आवश्यकता जीवन में होती है उन्हीं का विकास छात्रावास में करने का प्रयत्न किया जाता है।

औषधालय

स्वास्थ्य रक्षा का हमारे जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है। स्वास्थ्य जहाँ हजार नियामत के बराबर है वहाँ वह आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करने का साधन भी है। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्यरक्षा का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होना चाहिए। सदन में उसका ज्ञान नियमित और व्यवस्थित जीवन, सफाई तथा खेल व्यायाम आदि के द्वारा तो दिया ही जाता है, किन्तु कभी-कभी बीमारियाँ हो जाती हैं तो उनके इलाज का ज्ञान भी आवश्यक है। सदन अजमेर से सात मील दूर है। प्रारम्भिक वर्षों में जब सदन में इलाज का कोई प्रबन्ध नहीं था तो सिर दर्द, बुखार, चोट तथा फोड़े-फुन्सी आदि साधारण बातों के लिए भी बराबर अजमेर का मुँह ताकना पड़ता था। उन दिनों कर्मचारियों और बालिकाओं की संख्या भी कम थी, लेकिन जब सदन परिवार बढ़ा और सन् ४७ में शरणार्थी बालिकाएँ तथा ४९ में नैपाली बालिकाएँ भी एक बड़ी संख्या में आई, तो यह कमी और अधिक अनुभव होने लगी। यद्यपि डा० रामरिखपालजी शुक्ल, वैद्य रमेशचन्द्र जी, डा० मानकरणजी शारदा समय-समय पर सदन में आकर बालिकाओं को देख जाते थे तथापि इस अभाव की पूर्ति नहीं हो पा रही थी, अतः यह तय किया गया कि सदन में अपना ही एक औषधालय खोला जाय और सन् १९४९ में एक औषधालय खोल दिया गया। अजमेर के एक रिटायर्ड डा० साहब की सेवाएँ प्राप्त हो गईं और वे प्रतिदिन दो घण्टे के लिए आने लगे। दूसरे वर्ष एक नर्स भी रखी गई और उसके आगे तो डा० रामरिखपाल जी शुक्ल ने इस विभाग को अपनी पूरी सेवाएँ प्रदान करके काफी अच्छा बना दिया। औषधालय के श्रीगणेश से चिकित्सालय तो प्राप्त हुआ ही यह व्यवस्था भी की गई कि छात्रावास में रहने वाली बालिकाएँ तीन-तीन चार-चार के ग्रुप में चिकित्सा का ज्ञान और अनुभव प्राप्त करने के लिए काम के घण्टों में वहाँ उपस्थित रहें तथा रोगी परिचर्या का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार पिछले ७–८ वर्षों से औषधालय यह दुहरा कार्य कर रहा है। उससे सदन परिवार के अतिरिक्त आसपास के हटूंडी, खाजपुरा, राजोरी, ककलाना आदि ग्रामों के लोगों को भी लाभ मिल रहा है। प्रतिदिन उससे लाभ उठाने वाले लोगों की संख्या २०–२५ रहती है।

कृषि और गोशाला

महिला शिक्षा सदन के पास लगभग २०–२५ बीघा कृषि योग्य भूमि है। इस भूमि से साग-सब्जी और अनाज का उत्पादन करने का प्रयत्न तो प्रारम्भ से ही किया गया था किन्तु बालिकाओं को इसकी क्रियात्मक शिक्षा का कार्य सन् १९४९ में प्रारम्भ किया गया। छात्रावास की सब बालिकाओं तथा शिक्षकों ने प्रतिदिन एक घण्टा खेतों में शरीर श्रम करने का नियम बनाया और वह कितने ही दिनों तक चलता रहा। सन् १९५० में जब तत्कालीन

राष्ट्रमाता कस्तूरबा
जिनकी स्मृति में 'सदन' में बालिकाओं का छात्रावास चल रहा है

सरदार वल्लभभाई पटेल
जिनके नाम से 'सरदार बाल मंदिर' की स्थापना 'सदन' में की गई

खाद्य मन्त्री मान० श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने 'अधिक वृक्ष लगाओ' आन्दोलन प्रारम्भ किया तो वृक्ष लगाने के कार्य को सदन ने वडे उत्साह से प्रारम्भ किया और आगामी ४-५ वर्षो में लगभग ४ हजार वृक्ष लगाये। इतना ही नही इतनी वडी सख्या में लगाये हुए लगभग ९० प्रतिशत वृक्षो को जीवित भी रखा तथा इस कार्य के लिए लगातार तीन वर्ष तक अजमेर राज्य सरकार से पुरस्कार प्राप्त किया।

कृषि और वागवानी के साथ गोपालन की ओर भी इन्ही दिनो सदन के सञ्चालको का ध्यान गया। सौभाग्य से सेवाग्राम की गोशाला के इन्चार्ज वावा वलवन्तसिह की सेवाएँ प्राप्त हो गई। वावा वलवन्तसिहजी ने सदन के सेवाभावी कार्यकर्ता वावा सेवादास के साथ अथक परिश्रम करके लगभग १० अच्छी नस्ल की गाएँ प्राप्त की और गोशाला का श्रीगणेश कर दिया। इस गोशाला का उद्घाटन १५ अगस्त सन् १९५६ को स्व० श्री कृष्णदासजी जाजू के हाथो करवाया गया। उसके वाद लगातार तीन-चार वर्षों तक गोशाला सन्तोपजनक प्रगति करती रही किन्तु वाद में सेवादासजी के निधन और अनावृष्टि से इस दिशा में अनेक वाधाएँ आ गई और उसकी समुचित प्रगति न हो सकी। गोशाला अव भी चल रही है। किन्तु वावा सेवादास जैसे कार्यकर्ता के अभाव में उसका विकास रुका हुआ है।

सहकारी समिति

हटूडी एक छोटा-सा ग्राम है। अत आवश्यकता की लगभग सभी वस्तुएँ अजमेर से प्राप्त करनी पडती है। अजमेर से हटूडी तक सडक न होने के कारण सदन परिवार को प्रत्येक वस्तु अजमेर से प्राप्त करने में वडी कठिनाई होती थी। इस कठिनाई को हल करने के लिए सन् १९४९ में हटूडी कोआपरेटिव मल्टीपरपज सोसायटी का श्रीगणेश किया गया। सदन के कार्यकर्ता तथा कुछ ग्रामीण भाइयो की सहायता और सहयोग से उसका निर्माण हुआ। प्रारम्भ में उसकी ओर से एक स्टोर चलाया गया। जव वह अच्छी तरह कार्य करने लगा तो आटे की चक्की, कुट्टी की मशीन, विजली, पानी के नल आदि का काम एक के वाद एक उसने अपने ऊपर ले लिया और आगामी ४-५ वर्षो में सदन के लिए प्रकाश, पानी आदि की व्यवस्था भी कर दी। आजकल इन कार्यों के अतिरिक्त निवोली के तेल से सावुन वनाने का कार्य भी वह कर रही है। अजमेर के सस्ता साहित्य प्रेस के श्री नारायण राव पाठक इसमें विशेष दिलचस्पी लेते रहते हैं।

सरदार वाल मन्दिर

आजकल सव ओर वालशिक्षा का जो आन्दोलन चल पडा है और उसके कारण ३ से ६ वर्ष की आयु के वालक वालिकाओ को ऐन्द्रिय शिक्षण देने की जो प्रणालियाँ निकल पडी है वे अपनी वाल विकास सम्वन्धी उपयोगिताओ के कारण दुनिया भर में लोकप्रिय वनती जा रही हैं। भारत में भी उसका श्रीगणेश हो चुका है। उसीका लाभ प्राप्त करके वालको का विकास वैज्ञानिक तरीको से करने के लिए २७-८-५४ को सरदार वल्लभ भाई पटेल की स्मृति में 'सरदार वाल मन्दिर' की स्थापना की गई। वाल मन्दिर में वालको की सख्या ३५ है तथा दो अध्यापिकाएँ हैं। माटेसरी पद्धति से शिक्षा दी जाती है तथा लगभग दो हजार रुपये के शिक्षण उपकरण तथा दो-तीन हजार का खेल का सामान प्राप्त करके यह कार्य सुचारु रूप से चलाया जा रहा है। वाल मन्दिर के वालक वालिकाओ से कोई शिक्षण शुल्क नही लिया जाता। अजमेर के वालको से ४।।) वस फीस तथा २) नाश्ते की फीस ली जाती है। वालको को प्रतिदिन नाश्ता दिया जाता है। वालक वगीचे में काम करते हैं, खिलौने वनाते है, कागज के फूल आदि वनाते है तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करते हुए शिक्षा प्राप्त करते है।

—शिवराम उपाध्याय

आश्रम की झांकियां-झलकियां

आश्रम का नाम आते ही मेरे मन में एक गुदगुदी उठती है। क्योंकि एक आश्रम (सत्याग्रहाश्रम, सावरमती) से मैंने वैसे ही पाया है जैसे वच्चा माता-पिता से पाता है और दूसरे आश्रम (गान्धी आश्रम, हटूडी) को अव तक हरा-भरा रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु जव यह ख्याल आता है कि वापू इस आश्रम को अव देखें तो क्या कहेगे, तो मन उदास हो जाता है। जो कुछ वे चाहते थे, या जो हम लोग सोचते रहते हैं, वैसा वह अभी नही वन पाया है। अव तो एक "महिला शिक्षा सदन" तथा उसकी आनुषगिक कुछ प्रवृत्तियां ही उसके नाम को कायम रक्खे हुए हैं। यद्यपि वे अपने आपमें कम महत्त्वपूर्ण अश नही हैं—फिर भी उन सवको मिलाकर भी "आश्रम" नाम सार्थक नही हो सकता। किन्तु इसके साथ ही जव "आश्रम" की कुछ झाँकियाँ नजरो में तैरने लगती हैं तो मन फिर प्रफुल्ल होने लगता है—मैं चाहता हूँ कि आज के दिन (दीपावलि) पाठको को ऐसी कुछ झलकिया दिखाऊँ।

पहले आश्रम में सुवह ४ वजे उठकर प्रार्थना करने, मकान, कमरा, रास्ते, कुए के आसपास की जगह, पाखाने खुद ही साफ करने का नियम था। हम लोग वडी निष्ठा और लगन से इन कार्यों को करते थे। वाद में ग्राम-सफाई का कार्यक्रम आया। वापू जो भी नई चीज चलाते हम लोग यहाँ उसके अनुकरण और पालन की कोशिश करते। वापू ने ग्राम-सफाई के सिलसिले में ग्रामो की सफाई का कार्यक्रम वनाया। हमने भी हटूडी और खाजपुरा में सफाई शुरू की। एक वार भाई व्यासजी (लोकनायक श्री जयनारायण व्यास) आश्रम में आये हुए थे। कुछ दिन ठहरे। शायद वे दिन वही थे जव हम लोगो ने आश्रम के पुराने नीम-वृक्ष पर एक मचान वनाया था और उसी पर वैठ कर दफ्तर का काम किया करते थे। हम लोग झाडू-टोकरी लेकर खाजपुरा पहुँचे—व्यासजी भी, सदा खुश मिजाज, हमारे साथ गये। रास्ते में कचरे के ढेर के अलावा कुत्ते विल्ली का मैला भी पडा था। हमने वडे चाव से वह सव साफ किया। गाँव के लोग स्त्री-पुरुष-वूढे-वच्चे सव देखने आये। उन्हे वडा ताज्जुव हो रहा था कि आज यह सव क्या हो रहा है। हमने उन्हें शामिल होने का निमन्त्रण नही दिया। देखते थे कि अपने आप इन पर क्या प्रतिक्रिया होती है? उनमें से कोई शामिल न हुआ—हम लोग सारा रास्ता साफ करके वापस आये।

मेरे मन में जिज्ञासा हुई कि जहाँ वापू और विनोवा यह काम करते है वहाँ क्या होता है? उसके वाद ही मुझे वर्धा जाने का अवसर मिला। पूज्य विनोवा नालवाडी में रहते थे। यह मेहतरो की वस्ती है। विनोवा और उनके साथी यहाँ वस्ती की सफाई करते थे। मैंने हमारा अनुभव विनोवा को वताया और उनसे पूछा कि आप तो वहुत मेहनत से यहाँ यह काम कर रहे हैं—आपका क्या असर इन पर हुआ? वे हँस कर वोले—"असर? असर यह कि तुम्हारे आने से कुछ समय पहले एक मेहतर वुढिया मुझे उलाहना देने आई कि विनोवा तुम्हारे आदमी ठीक काम नही करते हैं—फलाँ जगह कुत्ते का मैला पडा हुआ है।" मालूम हुआ कि विनोवा के कार्यकर्ताओ के सफाई करने के वाद कोई कुत्ता वहाँ टट्टी फिर गया था। यहाँ याद रहे कि वह वस्ती मेहतरो की थी और यह उलाहना देने वाली वुढिया भी मेहतर थी। वह समझती थी कि विनोवा ने गाँव के रास्तो की सफाई के लिए इतने आदमी रख छोडे हैं।

तब हमें काम की कठिनाई और धीरज का अनुभव हुआ। उस समय का वह कार्यक्रम आज भी मेरी आंखों में सुवर्ण रेखा की तरह चमकता रहता है।

* * *

बाद में जब 'महिला शिक्षा-सदन' बन गया तो मेहतर रखना पडा। छोटी बडी, अमीर गरीब हर किस्म की लडकियों का छात्रावास रहा, एक कलोनी-सी ही बन गई। तब भी खास-खास त्योहारों पर मेहतर को छुट्टी दे दी जाती है और पाखाना-पेशाबघर सबकी सफाई सदन-निवासी करते हैं। जहां तक मुझे याद है बापू के जन्म दिन की बात है। पाखाना-पेशाबघर की सफाई के लिए लडकियों तथा दूसरों की टुकडियां बन गई। एक टुकडी के जिम्मे मेरे मकान के आसपास की मोरियों की सफाई हुई। उसमें नैपाल की कुछ बडे घराने की लडकियां भी थी। उनके लिए यह बडी कठिन ही नही, परन्तु बहुत अशतक घृणित काम था। मैं इत्तिफाक से देखने गया तो कुछ लडकियां बेतुका काम कर रही थी और नैपाली लडकियां दुविधा में खडी थी। मैं समझ गया। मैंने लडकियों से कहा—"लाओ मुझे फावडा दो—मैं बताता हूँ, कैसे सफाई करनी चाहिए।" नैपाली लडकियां चकित हुई। मैंने फावडा लिया और ज्यों ही उठाया, उनमें से एक शायद मोहिनी या कौशल्या ने मेरा हाथ पकड लिया। कहा—"दा साहब, यह काम हम आपको नही करने देंगे। हम करेंगे।" मैंने कहा—"तुम तो करोगी ही—पर मैं यह बताना चाहता हूँ कि सफाई अच्छी तरह कैसे की जा सकती है ?" उन्होंने हँसते हुए कहा—"तो आप क्या हमारे मास्टर है ?" मैंने कहा—"हाँ, मैंने पाखाने की विधिवत् सफाई सीखी है और यहाँ के मेहतरों को मैंने थोडे पानी या मिट्टी से पाखाना साफ करना खुद सिखाया है।" फलस्वरूप सब लडकियां सफाई में जुट गई। मोहिनी, कौशल्या उस घराने की लडकियां थी जिनके यहां पानी का नल भी नौकर खोलता था।

* * *

आश्रम या 'सदन' में कोई अहाता या डण्डा खिचा हुआ नही है। फिर भी लडकियों का विद्यालय, छात्रावास चलता है और गृहस्थ लोग भी रहते हैं। अक्सर छोटी-बडी चोरियां हो जाती है क्योंकि आसपास तमाम जगल, पहाडी नाले हैं। सिर्फ स्टेशन पर कुछ बस्ती थी। एक बार खुद मेरे घर चोरी हुई। मैं दिल्ली के अस्पताल में पडा था। मेरी धर्म-पत्नी भागीरथीदेवी जिस कमरे में सोई थी, उसमें चोर घुसा। मेरे छोटे भाई, बृहस्पति की पत्नी इलाहाबाद से आई हुई थी। उसकी एक सन्दूक उठाकर चोर जाने लगा। इतने ही में भागीरथीजी की नीद खुली और उन्होंने देखा। उसके पीछे भगी। चोर एक खिडकी में से नीचे के एक कमरे की छत पर कूदा। भागीरथीजी भी उसके पीछे कूदी। रात अँधेरी थी, उनके पाँव में मोच आ गई। चोर साहस करके कमरे की छत से नीचे कूद गया। पाँव में चोट आने से भागीरथीजी वहाँ रुक गई। चोर सन्दूक लेकर भाग गया। उन्हें अपने पाँव में मोच आ जाने का अब तक दु ख है। वे कहती है कि ऐसा न हुआ होता तो मैं चोर से सन्दूक छीन लेती। जिस कमरे की छत पर यह वाकया हुआ वह चि० शकुन्तला (उनकी बेटी) का था। वह उस रात वहाँ नही थी। जब उसे मालूम हुआ तो कहने लगी—"यदि मैं उस रात वहाँ होती तो या तो मैं मरती या चोर मरता। मेरे रहते वह भाग नही सकता था।"

जब अस्पताल में मैंने यह वृत्तान्त सुना तो भागीरथीजी को धन्यवाद दिया कि उन्होंने चोर का पीछा किया। इस बहादुरी पर मुझे बहुत खुशी है।

* * *

एक मित्र आश्रम के एक मकान पर अपना हक समझने लगे थे। वास्तव में ऐसी बात नही थी। फिर भी इस प्रश्न को लेकर उनके मन में उतार-चढाव आया करता था। एक बार शाम को मुझे एक सज्जन ने इत्तिला दी

खाद्य मन्त्री मान० श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने 'अधिक वृक्ष लगाओ' आन्दोलन प्रारम्भ किया तो वृक्ष लगाने के कार्य को सदन ने बड़े उत्साह से प्रारम्भ किया और आगामी ४–५ वर्षों में लगभग ४ हजार वृक्ष लगाये। इतना ही नहीं इतनी बड़ी संख्या में लगाये हुए लगभग ९० प्रतिशत वृक्षों को जीवित भी रखा तथा इस कार्य के लिए लगातार तीन वर्ष तक अजमेर राज्य सरकार से पुरस्कार प्राप्त किया।

कृषि और बागबानी के साथ गोपालन की ओर भी इन्हीं दिनों सदन के सञ्चालकों का ध्यान गया। सौभाग्य से सेवाग्राम की गोशाला के इन्चार्ज बाबा बलवन्तसिंह की सेवाएँ प्राप्त हो गई। बाबा बलवन्तसिंहजी ने सदन के सेवाभावी कार्यकर्ता बाबा सेवादास के साथ अथक परिश्रम करके लगभग १० अच्छी नस्ल की गाएँ प्राप्त कीं और गोशाला का श्रीगणेश कर दिया। इस गोशाला का उद्घाटन १५ अगस्त सन् १९५६ को स्व० श्री कृष्णदासजी जाजू के हाथों करवाया गया। उसके बाद लगातार तीन-चार वर्षों तक गोशाला सन्तोपजनक प्रगति करती रही किन्तु बाद में सेवादासजी के निधन और अनावृष्टि से इस दिशा में अनेक बाधाएँ आ गई और उसकी समुचित प्रगति न हो सकी। गोशाला अब भी चल रही है। किन्तु बाबा सेवादास जैसे कार्यकर्ता के अभाव में उसका विकास रुका हुआ है।

सहकारी समिति

हटूंडी एक छोटा-सा ग्राम है। अतः आवश्यकता की लगभग सभी वस्तुएँ अजमेर से प्राप्त करनी पड़ती हैं। अजमेर से हटूंडी तक सड़क न होने के कारण सदन परिवार को प्रत्येक वस्तु अजमेर से प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती थी। इस कठिनाई को हल करने के लिए सन् १९४९ में हटूंडी कोआपरेटिव मल्टीपरपज सोसायटी का श्रीगणेश किया गया। सदन के कार्यकर्ता तथा कुछ ग्रामीण भाइयों की सहायता और सहयोग से उसका निर्माण हुआ। प्रारम्भ में उसकी ओर से एक स्टोर चलाया गया। जब वह अच्छी तरह कार्य करने लगा तो आटे की चक्की, कुट्टी की मशीन, बिजली, पानी के नल आदि का काम एक के बाद एक उसने अपने ऊपर ले लिया और आगामी ४–५ वर्षों में सदन के लिए प्रकाश, पानी आदि की व्यवस्था भी कर दी। आजकल इन कार्यों के अतिरिक्त निबोली के तेल से साबुन बनाने का कार्य भी वह कर रही है। अजमेर के सस्ता साहित्य प्रेस के श्री नारायण राव पाठक इसमें विशेष दिलचस्पी लेते रहते हैं।

सरदार बाल मन्दिर

आजकल सब ओर बालशिक्षा का जो आन्दोलन चल पड़ा है और उसके कारण ३ से ६ वर्ष की आयु के बालक बालिकाओं को ऐन्द्रिय शिक्षण देने की जो प्रणालियां निकल पड़ी हैं वे अपनी बाल विकास सम्बन्धी उपयोगिताओं के कारण दुनिया भर में लोकप्रिय बनती जा रही हैं। भारत में भी उसका श्रीगणेश हो चुका है। उसीका लाभ प्राप्त करके बालकों का विकास वैज्ञानिक तरीकों से करने के लिए २७-८-५४ को सरदार वल्लभ भाई पटेल की स्मृति में 'सरदार बाल मन्दिर' की स्थापना की गई। बाल मन्दिर में बालकों की संख्या ३५ है तथा दो अध्यापिकाएँ हैं। मांटेसरी पद्धति से शिक्षा दी जाती है तथा लगभग दो हजार रुपये के शिक्षण उपकरण तथा दो-तीन हजार का खेल का सामान प्राप्त करके यह कार्य सुचारु रूप से चलाया जा रहा है। बाल मन्दिर के बालक बालिकाओं से कोई शिक्षण शुल्क नहीं लिया जाता। अजमेर के बालकों से ४।।) बस फीस तथा २) नाश्ते की फीस ली जाती है। बालकों को प्रतिदिन नाश्ता दिया जाता है। बालक बगीचे में काम करते हैं, खिलौने बनाते हैं, कागज के फूल आदि बनाते हैं तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करते हुए शिक्षा प्राप्त करते हैं।

—शिवराम उपाध्याय

"मेरी माताजी ने बता दिया था कि आप सब लोग ऐसा ही करेंगे।"

दो-तीन महीने बाद जब गिब्सन साहब जेल में मुआयना करने आये तो मुझसे शकुन्तला की हाजिर-जवाबी और सूझ-बूझ की तारीफ की। मुझे यह भी कहा कि तुम्हारा बगीचा हरा-भरा है—मैं खुद वहाँ जाता रहता हूँ और बढिया लाल-लाल टमाटर खाता हूँ। प्रेमीजी जेल में कहते थे—आश्रम छोडते वक्त और तो नही पर इस बात का बुरा लगता है कि बढिया टमाटर वही रह गये। जब तक गिब्सन साहब रहे, उन्होंने बगीचे को बिगडने नही दिया था।

यह बापू का पुण्य था। मुझे खुशी है कि शकुन्तला अब सदन के काम में अपनी माँ का हाथ बँटा रही है। उसके पति श्री० नारायण व पाठक को शिकायत है कि वह इस काम की धुन में न मेरी परवा करती है न बाल-बच्चो की, न खुद के स्वास्थ्य की। इसे शिकायत समझें या सर्टिफिकेट ?

* * *

जब भारत के दो टुकडे हुए तो उस वक्त के दगो से अजमेर बहुत दिनो तक अछूता बना रहा। अन्त में वह आग यहाँ भी फैली और अजमेर शहर में साम्प्रदायिक उपद्रव हुए। गान्धी आश्रम जो हटूडी गाँव की हद में बसा है, उसमें ९० फीसदी मुसलमान (चीता-मेरात) रहते हैं। वह आश्रम के दक्षिण की ओर है और उत्तर की ओर है खाजपुरा, जिसमें ९५ फीसदी हिन्दू हैं। हटूडी और खाजपुरा दोनो गाँवो के लोग आपस में डरते थे कि हम पर दूसरे की ओर से हमला होगा। इस चिन्ताजनक वातावरण से आश्रम-सदन में कुछ घबराहट आने लगी। आश्रम हमले की अवस्था में बचाव करने की दृष्टि से बिल्कुल अरक्षित स्थान—न कोई चहारदीवारी, न कोई सरकारी या गैर सरकारी रक्षा-दल या रक्षा-साधन। लडकियो का मामला। सैंकडो माँ-बाप के सामने बालको का उत्तरदायित्व। हम लोग भी चिन्ता में पड गये। कई व्यावहारिक-लौकिक उपाय सोचे—अन्त में अपने आत्म-विश्वास पर और भगवान पर भरोसा रखने का उपाय सर्वश्रेष्ठ मालूम हुआ। अन्दर से प्राय सब जिम्मेदार व्यक्तियो को ऐसा लगता था कि आश्रम-सदन का कुछ नही बिगड सकता। हटूडी-खाजपुरा गाँव के लोग तो उलटा आक्रमण की बजाय रक्षा ही करेंगे—ऐसा विश्वास था। तत्कालीन चीफ कमिश्नर श्री शकरप्रसाद तथा पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट श्री सुघडसिंह ने पूछा कि हम कुछ मदद करे—पुलिस इत्यादि भेज दें। मैंने सबको मना कर दिया।

बडी लडकियो, अध्यापिकाओ तथा दूसरे सम्बन्धित व्यक्तियो के सामने आश्रम-सदन की रक्षा का प्रश्न रक्खा गया। सबने एक चित्त से आत्म-विश्वास का परिचय दिया—एक बहन ने सुझाया आश्रम में एक पिस्तौल का लाइसेन्स ले लिया जाय, मैंने तुरन्त ना कह दिया। मैंने बताया—आश्रम की ओर से रक्षा के लिए पिस्तौल तो दूर एक डण्डे का भी प्रबन्ध नही किया जायगा। सबको शान्तिपूर्वक आत्मरक्षा की तैयारी कर लेनी चाहिए, ऐसे ही अवसरो पर तो हमारे विश्वास और श्रद्धा की परीक्षा होती है। मैंने उन्हे पुराने ऊपर लिखित हमले की धमकी तथा लडकियो की रक्षा की तैयारी का उदाहरण दिया। फिर भी मैंने कहा कि अलबत्ते जिसे भय लगता हो और जो पिस्तौल से ही आत्मरक्षा सम्भव मानता हो वह अपने लिए पिस्तौल रख सकता है। किन्तु पिस्तौल की बात तो वही खतम हो गई। अलबत्ते दूसरे दिन से मैंने लडकियो को लाठी सिखाने का प्रबन्ध कर दिया—वह भी मुख्यत इस दृष्टि से कि लडकियो का शरीर भी शारीरिक हमले का बचाव करने की स्थिति में रहे।

भगवान् की कृपा से आश्रम में कुछ नही हुआ। खाजपुरा गाँव के दो मुसलमान कुटुम्ब डर के मारे भाग निकले, वे दो-तीन महीने तक आश्रम के आश्रय में रहे। खाजपुरा वालो को यह मन-ही-मन बहुत अखरा, लेकिन अन्त मे सब शान्त हो गये।

इसके कुछ दिन बाद मै दिल्ली में सरदार पटेल से मिला। उन्होंने और बातो के साथ यह भी पूछा कि उन

दिनों आश्रम का क्या हाल रहा। मैंने उन्हें सविस्तार बताया तो बहुत सन्तुष्ट हुए। कहा—"बापू का यही मार्ग है।" फिर दिल्ली की एक शिक्षण संस्था का जिक्र किया और कहा कि, "वह तो उल्टा मुझसे पुलिस की सहायता माँगने आये—लेकिन तुमने उससे इन्कार कर दिया यह मुझे अच्छा लगा।"

मैंने जवाब दिया—"बापू का पुण्य है।'

* * *

माताजी—रामेश्वरीजी (नेहरू) ने पाकिस्तानी हिन्दुओं की कुछ निराश्रित लडकियों को सदन में भेजा। स्वभावत ही वे मुसलमानों से बहुत चिढी हुई थीं। उनके आने के शायद ५–७ रोज बाद ही मेरे दो बडे मुसलमान मित्र, जो अजमेर के ही थे, मुझसे मिलने आश्रम में आये। शाम का वक्त था—मैं सरल भाव से उन्हें प्रार्थना में ले गया। उनके चेहरे देखते ही पञ्जाबी लडकियाँ भडक उठीं। सबने कुहराम मचाया कि हमें दिल्ली भेज दो—हम यहाँ नहीं रहेंगे—यहाँ तो मुसलमान आते हैं। बडी मुश्किल से उन्हें समझाकर रक्खा। फिर यहाँ की शिक्षा-दीक्षा और वातावरण का असर उन पर होने लगा। कोई दो साल के बाद १९५१ का आम चुनाव आया। अजमेर के सेठ अब्बासअली कांग्रेस की ओर से अजमेर क्षेत्र में चुनाव लड रहे थे। पञ्जाबी लडकियाँ इनकी मदद के लिए भेजी गईं। उन्होंने बडे उत्साह से काम किया। ऐसी-ऐसी गलियों और घरों में अकेली गईं जहाँ एकाएक मर्द भी जाते हिचकते हैं। तमाम मुसलमान औरतों में काम किया और उन्हें घर से निकाल-निकाल कर वोट डलवाये। सेठ अब्बासअली जीत गये। वे इन लडकियों की सहायता और हिम्मत की आज भी तारीफ करते हैं।

इस प्रसग में, कम-से-कम मुझे तो, आश्रम की आत्मा के दर्शन होते रहते हैं।

* * *

'आश्रम' में भारतवासी-मात्र एक निगाह से देखे जाते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब जाति की लडकियाँ पढती हैं, छात्रावास में सब एक साथ रहती हैं—हरिजन, जन-जाति, विमुक्त जाति आदि सब लडकियाँ बहनों की तरह, एक घर की तरह रहती हैं। शिक्षक-शिक्षिका भी सभी धर्मों के हैं। एक खानदानी मुस्लिम मित्र का—सैयद अमीर हसन, जो अर्से तक दरगाह शरीफ के बहुत परिश्रमी और सच्चे खुदापरस्त रह चुके हैं, परिवार रहता है। और तो ठीक परन्तु उनकी बहन रजिया बीबी कोई दो साल तक छात्रावास की सुपरिन्टेण्डेण्ट रही हैं, सो भी सेवा भाव से, अवैतनिक। किसी छात्रावास में लडकियों के, कोई मुस्लिम लेडी सुपरिन्टेण्डेण्ट भारत में शायद ही दूसरी जगह हो। सबने अपनी माता का दर्शन उनमें किया था।

जब सदन का यह चित्र मेरे सामने आता है तो थोडी देर के लिए मुझे वास्तविक भारत-माता के दर्शन यहाँ होने लगते हैं और मेरा सिर उनके चरणों में झुक जाता है।

* * *

एक बार अजमेर में मुझे हटूडी से टेलीफोन मिला—"आप यहाँ कब तक आवेंगे? मोहनलालजी दूगड आये हुए है।" मुझे ताज्जुब हुआ। दूगडजी को न मैंने अभी बुलाया, न उनका ही कोई आने का पत्र था—एकाएक कैसे आ गए? मेरे मन में न जाने कितनी कल्पनाएँ दौड गई। मैंने पूछा—"वे एकाएक कैसे आ गये?"

"मालूम नहीं, कहीं उनकी मोटर फेल हो गई, अजीब हालत में आये हैं। सिर पर पगडी नहीं, कपडे भी ठीक-ठाक नहीं।"

मुझे चिन्ता होने लगी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जल्दी ही हटूडी पहुँचा तो मोहनलालजी ने मोटर फेल हो जाने और किसी तरह अजमेर पहुँच जाने का किस्सा बताया। वह उन जैसे धनी-मानी व्यक्तियों के लिए कष्टदायी तो था ही। पर सदन में आकर उन्होंने एक लड़के को साथ लिया और सब प्रवृत्तियाँ देख डाली। मुझे कहा—

"मैंने यहाँ सब देख लिया—जहाँ आप हैं वहाँ देखना क्या है ? यहाँ फिलहाल मुझे पानी के लिए कुएं आदि की कमी मालूम होती है और उसके लिए जितना रुपया चाहिए सो मैं भिजवा दूंगा।"

*　　　　*　　　　*

सस्ता साहित्य मण्डल १९२५ में स्थापित हो गया था। १९२७ में 'गान्धी आश्रम' स्थापित होते ही उसके कार्यकर्ता वहाँ रहने लगे। वह आश्रम-जीवन या लक्ष्य की एक मुख्य प्रवृत्ति थी। जीवन भिन्न-भिन्न विभागो में नही बाँटा जा सकता। उसके अलग-अलग टुकडे नही किये जा सकते। अत 'गान्धी-विचार' और उसपर चलने वाला 'गान्धी-आश्रम' भी भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियो का केन्द्र बना। प्रत्यक्ष राजनैतिक क्षेत्र में—कांग्रेस में—वह नही पडा। उसकी ओर से, उसकी छत्रछाया में कांग्रेस का काम नही चलता था, फिर भी उसके सदस्य कांग्रेस से सहानुभूति रखते थे, उसका काम भी करते थे—करते रहे। इसी तरह 'सस्ता साहित्य मण्डल' के कार्यकर्ता भी कांग्रेस, सत्याग्रह के साथ सहानुभूति रखते थे। मण्डल की मुखपत्रिका-स्वरूप 'त्यागभूमि' के द्वारा तथा राजनैतिक पुस्तक-प्रकाशन द्वारा आश्रम के निवासी राजनैतिक सेवा भी करते थे। अत तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के अधिकारियो की कुदृष्टि उस पर रहना स्वाभाविक था। चुनाँचे अजमेर में नमक सत्याग्रह चालू होते ही सरकार ने 'सस्ता साहित्य मण्डल' पर छापा मारा। बाबाजी तो पहले ही पकड लिये गये थे—अबकी जीतमलजी आदि का भी नम्बर आ गया। सिर्फ चि० मार्तण्ड बाकी बच रहा, जो उस समय मण्डल में काम सीख रहा था। असहयोग में श्रद्धा रखने के कारण उसकी पढाई सरकारी स्कूल में मिडिल से आगे न हो पाई—अलबत्ते सत्याग्रहाश्रम, साबरमती के विद्यालय में उसने कुछ शिक्षा पाई, फिर अजमेर में खानगी तौर पर कुछ गुरुजनो से जिनमें सर्वश्री क्षेमानन्दजी राहत (अब श्री भगवान्), स्व० प्रो० देवकीनन्दनजी, श्री कृष्णचन्द्र विद्यालकार (अब सम्पादक 'सम्पदा' दिल्ली), प० जयदेव विद्यालकार (अब वनस्थली) आदि से भिन्न-भिन्न विषयो की शिक्षा पाता रहा। प्रत्यक्ष कार्य का अनुभव तो, उसकी साहित्यिक अभिरुचि थी, इसलिए साहित्य-सस्था में काम का अनुभव ले, इस दृष्टि से वह जीतमलजी के पास काम सीखने रक्खा गया। उन दिनो वह 'त्यागभूमि' के पते लिखने का काम करता था। सभी प्रमुख कार्यकर्ताओ के एकाएक एक साथ गिरफ्तार हो जाने, प्रेस के भी जब्त हो जाने से, सारा काम सँभालने का बोझ एकाएक उसी पर आ पडा। उसने धीरज, होशियारी, समझदारी और दृढता से काम को सँभाल लिया—फिर कुछ समय के बाद, जब मण्डल को दिल्ली ले जाने का प्रस्ताव हुआ तो उसके अध्यक्ष श्री घनश्यामदासजी बिडला ने इसी शर्त पर वहाँ ले जाना मञ्जूर किया कि चि० मार्तण्ड वहाँ जाय और काम-काज को सँभाले। ऐसा ही हुआ—मुझे खुशी है कि आज मार्तण्ड बावजूद कई उतार-चढाव के एकनिष्ठा से मण्डल में सेवा कर रहा है। हिन्दी प्रकाशको में उसका एक स्थान हो गया है, उसे श्री यशपालजी, ब्रह्मानन्दजी, भूपसिंहजी, विष्णु प्रभाकरजी जैसे सुयोग्य और निष्ठावान् साथी मिल गये हैं। आश्रम की शिक्षा आज भी मार्तण्ड के जीवन को प्रकाशित कर रही है।

*　　　　*　　　　*

बिजौलिया का नाम मेवाड में ही नही, सारे भारत में प्रसिद्ध है। राजस्थान में स्व० विजयसिंहजी पथिक ने पहली बार किसानो के आन्दोलन को जन्म देकर एक नवीन जागृति की। श्री माणिक्यलाल वर्मा उसमें उनके अनन्य सहयोगी रहे। जब गान्धी आश्रम स्थापित हुआ, तो बिजौलिया की पञ्चायत का सलाहकार मुझे बनाया गया, श्री जेठालालजी वस्त्र स्वावलम्बन का काम वहाँ कुछ पहले से कर रहे थे, श्री वर्माजी उसमें भी उनके सहायक थे। बाद में स्व० जमनालालजी का और मेरा सम्बन्ध बिजौलिया से बहुत बढता गया—बापू की पद्धति से वहाँ राजनैतिक काम होने लगा—इससे स्वभावत गाधी आश्रम वहाँ की प्रवृत्तियो का प्रधान केन्द्र बन गया। वर्माजी इस आश्रम के एक अग हुए—उनका परिवार आश्रम-परिवार में मिल गया, और आज भी हमारा

पारिवारिक सम्वन्ध और ममत्व अक्षुण्ण है। उन दिनो की कई मधुर और स्फूर्तिदायक स्मृतियाँ लिखने योग्य है। विजौलिया के सत्याग्रहो का इतिहास जव कभी लिखा जायगा—राजस्थानियो के लिए गौरवास्पद होगा। मुझे गर्व है कि आज वर्माजी राजस्थान के प्रमुख नेताओ में है और आश्रम को उमी स्नेह की दृष्टि मे देखते है। परिवार-सहित वर्षो उन्होने आश्रम और उसके वातावरण को प्रफुल्लित किया है।

* * *

भाई वैजनाथजी महोदय का स्थान हमारे आश्रम और उपाध्याय-परिवार मे मेरे वाद समझना चाहिये। मार्तण्ड सगा भाई है, परन्तु वैजनाथजी के वाद घर में उसकी गिनती होती है। १९१९-२० से ही मेरा उनमे इन्दौर में सम्पर्क हो चुका था—हम दोनो लगभग एक साथ वापू के चरणो में पहुँचे थे और हिन्दी-नवजीवन का काम आरम्भ किया था। कोई १२ साल तक एक साथ रहे—एक शरीर के दहने-वायें हाथ की तरह हमारी प्रवृत्तियो को भिन्न कहना कठिन था।

नमक सत्याग्रह के प्रारभ की घटना है। मै उस सत्याग्रह का प्रथम डिक्टेटर था और मैंने तय किया था कि दो टोलिया एक-एक दल-नेता के नेतृत्व में अजमेर से ग्रामो में प्रचारार्थ जायें। जिस नायक की टोली शुरू दिन जाने वाली थी उसके नायक ने एकाएक इन्कार कर दिया। सभा का ऐलान हो चुका—उनकी टोली का नाम प्रकाशित हो चुका, मैं उस टोली को विदा देने के लिए, सभा स्थान पर पहुँचा—तो मुझे खवर मिली कि टोली के नायक ने जाने से इन्कार कर दिया—मुझे काटो तो खून नही। भगवान् गजव हुआ! खूव मुह काला किया तूने। मेरी वेदना वैजनाथजी ने समझ ली। वोले—"दासाहव, चिन्ता क्यो करते है—मेरी टोली चली जायगी। आप उसके नाम का ऐलान कर दें।" मुर्दे में जान आ पडी। महोदयजी के इस आश्वासन ने मेरी आँखो में कृतज्ञता के आसू ला दिये। वह दृश्य भुलाये नही भूलता।

कौनसा ऐसा काम था—जिसमें मै यह विश्वास नही रखता था कि कोई वात नही, महोदय सा० साथ है। वे कर देंगे। वे उन देवोपम् व्यक्तियो में हैं, जिनके आलोचक शायद ही हो, जिनको सकीर्णता, छल-कपट, द्वेष की छूत तक नही लगी। आजतक के अपने सम्पर्क में मैंने उन्हें कभी क्रोधित नही देखा।

* * *

इसीसे मिलता-जुलता व्यक्तित्व भाई लादूरामजी जोशी का है। उनके अकृत्रिम स्नेह का वर्णन कैसे किया जाय? सेवा करते तो वे थकते ही नही। छोटे-से-छोटा सेवा का कार्य हो लादूरामजी सदा तैयार। कष्ट सहन को कुछ समझते ही नही। सस्कृत के पडित, परन्तु नवीन-से-नवीन विचार को ग्रहण करने की तत्परता। आश्रम में उनके हाथ की खाई मोटी रोटी और मूग की दाल वरावर याद आती है। नम्र भी, तेजस्वी भी। सदा सच्चाई का पक्ष लेने वाले। राजस्थान में जितनी वार वे जेल गये है, शायद ही कोई दूसरा गया हो। आज वे सीकर-शेखावाटी के 'सर्वमान्य' व्यक्ति है—ऐसा कहें तो अत्युक्ति नही।

* * *

वावूराव जोशी मालवे के एक गाव में अध्यापक थे—वी० ए० की परीक्षा दे चुके थे। साहित्यिक अभि-रुचि थी। मुझे एक साहित्यसेवी मानकर मेरे पास आ गये—साहित्यिक उन्नति की अभिलाषा से। सम्भवत १९४४ में। १९४५ में 'सदन' खुला—१९४६ में ही एकाएक वहाँ की मुख्य अध्यापिका साल के वीच में ही 'सदन' छोड गईं। वावूराव को धर्म सकट में मुख्य अध्यापक वना दिया। इधर 'सदन' वढता गया—इधर वे भी परीक्षाए पास कर-करके, लेख-कविता-पुस्तकें लिखकर अपना विकास करते गये। आज वे M A, L T, 'साहित्यरत्न' हो चुके हैं। अभी-अभी वे 'सदन' से मुक्त हुए है।

वे आये ही थे कि एक दु खद घटना हो गई। अपने परिवार को लाये। बूढी मा और छोटा भाई भी साथ आया। मकानो की तगी आश्रम में शुरू से ही रही थी। कभी तो एक-एक कोठरी में एक एक परिवार को गुजर करना पडता था। लादूरामजी, गोपीकृष्णजी, प्रेमीजी कई इसी तरह रहे थे। इनकी माता और भाई रसोई के कमरे में ही सोते थे। उसीमें एक तरफ ईंधन-लकडी का ढेर, मकान के पीछे झाडी जगल। भाई हटूण्डी से अजमेर पढने जाता। एक रोज एकाएक दोपहर को घबराया हुआ आया और बेहोश हो गया। तीसरे पहर तो हमारे देखते-देखते चल बसा। सुबह मे ही उसकी तबीयत खराब थी। घर में किसीसे कहा नही। स्कूल गया—वहाँ से लौटा तो बेहोश—हम लोग उसे नसीराबाद ले गये तो वहा के डाक्टर भी समझ नही पाये कि आखिर क्या हुआ। सबका यही अनुमान रहा कि रात में किसी जहरीले कीडे ने काट खाया होगा। बाबूराव के लिए तो यह कठिन परीक्षा का अवसर था। जवान भाई, बूढी मा, नई जगह, एकाएक यह बिजली टूटी, लेकिन हम सबने देखा कि बाबूराव ने बडे धैर्य से उस दु ख को सहा। कठिन और दुखदायी परिस्थितियो को उन्होने बडी शान्ति के साथ सँभाला।

अब सर्वोदयी लेखको में और विनोबा के भक्तो में उनकी गिनती है।

* * *

१९४४ में शिवराम उपाध्याय अजमेर आये। बीमा का काम करने लगे। उपाध्याय-परिवार के ही है। जब भागीरथीजी ने 'महिला शिक्षा-सदन' का काम हाथ में लिया तो इन्हें मन में बडा उत्साह हुआ। अपने परिवार की एक महिला को ऐसे काम में अग्रसर होते देख इनके मन में आया कि मै भी इसमें हाथ बटाऊ। मुझसे अपनी इच्छा प्रदर्शित की और जब मैंने बढावा दिया तो बडा उल्लास इन्हें हुआ। हिसाब-किताब की जिम्मेदारी ली—अपनी मेहनत और कार्य कुशलता से प्रधान व्यवस्थापक बनाये गये।

आगे चलकर 'सदन' की आर्थिक स्थिति बिगडी। उन्होने खुद ही 'सदन' से वेतन लेना बन्द कर दिया—आज अवैतनिक रूप से 'सदन' की सेवा करते हैं—बावजूद कई उतार-चढाव के स्वतत्र रूप से जीविका उपार्जन में लगना पडा है, फिर भी 'सदन' के काम को प्राथमिकता देते है, और उनकी 'जीजी' को उसी तरह उनका भरोसा रहता है।

* * *

सुधीन्द्र तो अब चले गये—एकाएक, बालक का-सा सरल हृदय—इतना निष्ठुर कैसे हो सकता है, इसका ख्याल किसी को नही था। कोटा के चार नवयुवको की मडली थी—सुधीन्द्र, राजेन्द्र, नाथूलाल और विमल। प्रथम दो आश्रम में आये—सुधीन्द्र मेरे निजी मत्री हो गये—राजेन्द्र ग्राम सेवा मडल में गये। सुधीन्द्र सपरिवार आये—बूढी मा, नई पत्नी। पत्नी को हिस्टीरिया के फिट आते थे। महीनो तक हम किसी को पता न लगा—एक बार मुझे मालूम हुआ तो पूछने पर पता चला कि सुधीन्द्र भी उतने ही अनजान है जितना हम लोग। कविता, लेख और अध्ययन यह उनका व्यसन था। बी० ए० होकर आये थे। 'जीवन-साहित्य' के सपादन में मेरे दाहिने हाथ थे। मेरे परिवार के अग बन गये। एक बार पूछ बैठे, "दा साहब, मेरी कविताए आप बहुत सुनते है पर यह तो बताइए आपको कैसी लगती है?' मैंने कहा—"लगती तो अच्छी है, परन्तु अभी तुम्हारा कवि बाह्य में भटकता है, अन्तर का स्वाद नही पाया है। तुम अन्तर्मुख होकर कविता लिखो। अपने आपको एड्रेस करो।"

उनका रुख बदला—गण्यमान्य कवियो में गिनती होने लगी—प्रोफेसर हुए, डाक्टरी के लिए थीसिस लिखी। हिन्दी साहित्य के अच्छे विद्वान आलोचक कहे जाने लगे। इतने लोकप्रिय और सज्जन थे कि उनका अभाव आजतक खलता है। वे गये और ऐसा शून्य छोड गये कि वही वह दिखाई पडता है।

* * *

पिछले आम चुनाव (१९५०) के दिनो की वात है। अजमेर नगरपालिका के चुनाव में काग्रेस की तगडी हार हुई थी। इससे आम चुनाव में काग्रेसी की जीत के वारे में काग्रेस-जनो की चिन्ता वढ गई थी। उन दिनो वालकृष्ण गर्ग अजमेर प्रा० का० क० के अध्यक्ष थे। वहुत से लोग महसूस कर रहे थे कि कोई पुराना प्रभावशाली व्यक्ति काग्रेस की वागडोर सभाल ले तो चुनाव की सफलता का इत्मीनान हो सकता है। उन दिनो दलवन्दी का जोर वढ रहा था और काग्रेस के वडे-वडे नेता परेशान हो रहे थे। मैं 'सदन' के काम में जुटा हुआ था—नामका ही काग्रेसी वना हुआ था। मित्रो के सुझाव आये कि मै काग्रेस की जिम्मेदारी सभालूं। वैसे लोग वालकृष्ण को मुझसे जुदा नही समझते थे। फिर भी यह प्रश्न था ही कि वालकृष्ण की जगह दासाहव को (मुझे) कैसे लाया जाय। मित्र लोग मुझे समझाने में सफल हो गये। मैंने उनकी दुविधा दूर कर दी। मैंने कहा मै ही वालकृष्ण से वात करूँगा। मैंने वालकृष्ण के सामने सुझाव रखा। अजीव वात थी न। नौजवान गद्दी से खुद होकर उतरे और वुड्ढा वहा जाकर वैठे! और प्रस्ताव भी खुद ही करे। ययाति वाला ही किस्सा हुआ। उसने वेटे से जवानी मागी—वेटे ने उसी क्षण दे दी। यहा भी लगभग ऐसा ही हुआ। वालकृष्ण ने कहा—"दासाहव, मैं भी महसूस करता हूँ कि इस अवसर पर मेरी जगह आपको होना चाहिए। परन्तु आप कुछ दिन ठहर जाइए। मेरा कुछ हिसाव है वह सिद्ध हो जायगा तो दूसरे ही दिन मैं खुद आकर प्रस्ताव करूँगा और आप जिम्मेवारी ले लेना।" मैंने मसलहत समझ ली—मियाद समाप्त होते ही वालकृष्ण ने खुद कुर्सी छोड दी—मुझे विठा दिया!

यह सपना नही, सच्ची वात है। इस छीनाझपटी के युग में आपको इस पर विश्वास न होगा, इसे आप सतयुग की वात कहेंगे, पर है यह कलियुग की ही और सो भी ५–७ साल पहले की, आज वालकृष्ण अजमेर जिले के एक माने हुए और मजे हुए नई पीढी के अगुआ है।

* * *

हमारी सुवह ४ वजे की प्रार्थना और घटी से देशपाडेजी कभी-कभी परेशान हो जाया करते थे। एक रोज तो हमसे लड भी वैठे। राजस्थान चरखा सघ के सेक्रेटरी थे—वी० एस-सी० करते ही वापू के चक्कर में आ गये। गुजरात कालेज की प्रोफेसरी छोडकर सूत कातने लगे। सेवा भाव के साथ व्यवसाय-वुद्धि अच्छी थी। जव मैं यहा आया तो मुझे उन्हीके साथ चर्खा सघ में प्रचार-मत्री का काम मिला। हमारे स्वभाव सस्कार जुदा-जुदा परन्तु दोनो दूध-रोटी की तरह हो गये। वे मेरी आदर्शवादिता की खिल्ली उडाते, वापू की कई वातो की टीका-टिप्पणी करते। आखिर तो महाराष्ट्रीय थे। रचनात्मक कामो की मर्यादा का पूरा ख्याल रखते, फिर भी जहा राजनैतिक आन्दोलन आया, वलिदान का अवसर आया कि फौरन तैयार। अपने साथियो को भी लाते। मैंने उनका नाम कमाडर देशपाडे रखा था। 'भारत छोडो' आन्दोलन में जव जयपुर में टाँय-टाँय फिस हो गई तो देशपाडे और उनकी टोलीवालो ने ही जयपुर की नाक रक्खी। वावा हरिश्चन्द्र, रामकरण जोशी आदि ने आजाद मोर्चा वनाया था, देशपाडेजी उसके भीतरी प्रेरणाकार थे। आज वे सेवाग्राम–गोपुरी में अ० भा० गो सेवा सघ के मत्री के रूप में महान् जिम्मेवारी सँभाल रहे हैं। उन सव मूल्यो को महत्व देते हैं जिनकी अजमेर में आलोचना किया करते थे।

* * *

अजमेर में एक चुनाव था। सभवत म्यु० के चेयरमैन का। अमीर हसन खाँ साहव आये यह पूछने के लिए कि मैं 'वोट' किधर दू। उन्हें विश्वास था कि मै सही सलाह दूगा। मेरी सलाह उन्हें पसन्द आई—शायद उसकी वजह से उन्हें कुछ नुकसान भी उठाना पडा। किन्तु यही सलाह थी कि वे मेरे मित्र और साथी वन गये। उसके वाद वे अपनी दयानतदारी की वजह से दरगाहशरीफ के मुतवल्ली हुए, और हुए हमारे आश्रम-परिवार के एक अग। सपरिवार आश्रम में रहते है, उनके वच्चे वही पढते हैं। वे अव मुतवल्ली नही रहे—नये दरगाह-कानून में वह जगह

नही रक्खी गई, मगर वे खुदा पर भरोसा रख के मस्त रहते है। उनकी सादगी, सरलता, ईमानदारी बाबा सेवादास की याद दिलाती है।

* * *

भाई अभयदेवजी ने एक कार्यकर्ता भेजा। वह अपनी पत्नी के साथ आश्रम में काम करने आया। पहली बार जब मै उससे मिला—पत्नी इस तरह घूंघट मार के बैठी कि मालूम होता था—कोई गठरी है। उससे सीधी बात करना मुश्किल हो गया। कोई प्रश्न मै करता—तो पति उससे पूछता, वह धीरे से या इशारे से हाँ-ना करती। मुझे चिन्ता हुई कि यह व्यक्ति किस तरह काम कर सकेगा। लेकिन नही, थोडे ही दिनो में उसने पत्नी को इतना तैयार कर लिया कि वह वर्धा के महिलाश्रम में पढने के लिए भर्ती हुई और वहाँ काम सीखने के बाद महिला शिक्षा-सदन में कताई की शिक्षिका तथा छात्रावास की व्यवस्थापिका के काम पर नियत हुई। आज इस देश सेवक का सारा परिवार अपने गाँव में रचनात्मक सेवा कर रहा है। जो जहाँ पैदा होता है वह वहाँ अक्सर लोकप्रिय होता हुआ नही दिखाई देता —लेकिन यह परिवार शाहपुरा में स्नेह और आदर का पात्र बन रहा है।

रमेशचन्द्रजी ओझा 'खाटीतट सेवा सघ' के सस्थापक और यशस्वी मत्री है तथा उनकी धर्मपत्नी रमादेवी एक कन्या पाठशाला चला रही है। उनके बेटी-दामाद भी खादी तथा भूदान में जीवन लगा रहे है। लडका कम्युनिस्ट पार्टी का अच्छा कार्यकर्ता है।

* * *

बिजोलिया का सत्याग्रह चल रहा था—स्व० श्री जमनालालजी बीच-बचाव में पडे थे और उनकी तरफ से श्री शोभालालजी गुप्त बिजोलिया गये थे। वे उन दिनो 'त्याग-भूमि' के सम्पादक वर्ग में थे। बिजोलिया में उन दिनो दमन का दौर-दौरा था। जिस सद्भावना का पैगाम लेकर शोभालालजी गये थे—उसकी कद्र तो दूर, सदेह मे पुलिस वालो ने उनके साथ बुरी तरह व्यवहार किया—उन्हें मारा-पीटा और अपमानित किया। शोभालालजी ने बडी शान्ति और धैर्य के साथ उसे सहा। जब मुझे मालूम हुआ—मै उन दिनो पचायत सलाहकार और सत्याग्रह का मार्ग-दर्शक था —मैं ग्लानि से मर-सा गया। मैने अनुभव किया कि यह अपनाम या पिटाई शोभालालजी की नही, मेरी हुई है और उनके धैर्य तथा शान्ति का स्मरण सदैव बना रहता है। आज वे 'हिन्दुस्तान' दैनिक (नई दिल्ली) के सपादक वर्ग में ऊँचा स्थान रखते हैं। इस घटना से शोभालालजी हम सबके अधिक प्रिय और प्रीतिपात्र हो गये है।

* * *

बाबाजी (स्व० नृसिहदास जी) राजस्थान में अपने ढग के निराले थे। उनसे मतभेद रखते हुए भी सभी दल के कार्यकर्त्ता उनके त्याग, सेवा तथा अपनेपन के प्रति आदर रखते थे। यह गुण बहुत कम लोगो में होता है। उनका घनिष्ट सबध आरम्भ से ही आश्रम से रहा है। आश्रम छोडकर अन्यान्य प्रवृत्तियो में लग गये थे, जब वापिस आये तो मैने कहा—"बाबाजी, आपके आश्रम को मैने हरा-भरा ही रखा है—मै आपका कपूत वारिस नही हूँ। शुरू से कुछ-न-कुछ बढता ही रहा है।" बाबाजी को इस पर बडी प्रसन्नता थी। आखीर वक्त में जब हृदय का दौरा होने लगा तो कहते—"आप मेरी क्यो फिक्र करते हो—जीना तो आपको अधिक चाहिए।" यह जीवन के प्रति उनकी निस्पृहता का और पर-गुणग्राहकता का उत्तम नमूना है।

भागीरथीजी को वह अपनी बहन-बेटी की तरह मानते थे। पुरानी प्रथा के अनुसार वट-सावित्री (पूर्णिमा) के दिन वह आश्रम के पास एक वट की पूजा के लिए गई। बाबाजी को उनकी यह 'धर्मान्धता' सहन न हुई। हरिभाऊ की स्त्री ऐसा कैसे कर सकती है? वे कुल्हाडा लेकर उस वट को काटने चले। किसी ने सुझाया बाबाजी, इसके

बारे में बापूजी की राय तो ले लीजिये, फिर कुछ करना ठीक होगा। यह बात उनके गले उतर गई। बापूजी ने इस पर राय दी—"यदि भागीरथी ने पेड समझकर पूजा की हो तो यह अच्छा नही है—यदि उसमें परमेश्वर का वास समझकर पूजा की हो तो ठीक किया।" बाबाजी शान्त हो गये।

जब बात उन्हें अनुचित लगी तो वे जी-जान से उसके विरोध के लिए कटिबद्ध हो गये, जब उनकी समझ में दूसरी बात आ गई तो फौरन उसके अधीन हो गये। यही बाबाजी के स्वभाव की विशेषता थी।

* * *

जगल में होने के कारण 'आश्रम' में कभी-कभी चोर आ जाया करते थे। आश्रमवासी सतर्क रहते थे, कभी-कभी खास मौके पर पारी-पारी से पहरा भी देते थे। एक बार चोर घुसा। श्री शिवकुमार मिश्र वहाँ थे—उन दिनो सभवत ग्राम सेवक मडल में काम करते थे। हिम्मत कर के गये और पकड लिया। काफी हाथा-पाई हुई, लेकिन उस जवामर्द ने उसे आखीर तक पकड ही रखा। फिर एक कोठरी में बद कर दिया। मुझे जहाँ तक याद है, बाद में उसे छोड दिया था। शिवकुमारजी आज खादी की एक स्वतन्त्र सहकारी समिति अजमेर में चला रहे है और उसके एक प्रभावी कार्यकर्ता है।

* * *

१९३२ में दुबारा सत्याग्रह शुरू हुआ था। राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स से बापू लौटे ही थे कि फिर सत्याग्रह की नौबत आ गई। साबरमती आश्रम से इस बार बहनो की तगडी टोली ने सत्याग्रह में भाग लिया। उसके बाद, जहाँ तक सख्या का सबध है, अजमेर का दूसरा नम्बर था। बहनें एक के बाद दूसरी बडे उत्साह से सत्याग्रह के लिए तैयार हो रही थी। जिनके लिए कभी कल्पना भी नही की जा सकती थी, उन्होने अपने नाम दे दिये। उस समय के कई अनूठे और मीठे अनुभव लिखने लायक है। यहाँ एक दे रहा हूँ। भाई काशीनाथजी त्रिवेदी अजमेर से जाकर इन्दौर मजदूर-सघ के मत्री पद पर काम कर रहे थे। मैं इन्दौर बहनो की भरती करने के लिए गया हुआ था। काशीनाथजी की पत्नि सौ० कलावती अकेली थी—काशीनाथजी काम से अहमदाबाद गये हुए थे। और बहनो का उत्साह देखकर वह भी अजमेर जाकर सत्याग्रह करने को तैयार हो गई। मगर एक कठिनाई थी। वह गर्भवती थी, फिर काशीनाथजी मौजूद नही। मैंने सुझाया कि तुम चली चलो—मैं फोन से काशीनाथजी से बात कर लेता हूँ—वे भी अजमेर आ जावेंगे, वहाँ उनकी राय हो तो जेल चली जाना, वर्ना दोनो इन्दौर वापिस आ जाना—दूसरी बहनो को विदाई दे आना। काशीनाथजी मुझे बडे भाई की तरह मानते है। उन्होने बडे उत्साह से इस प्रस्ताव का स्वागत किया, कलावती की उस अवस्था में भी उन्होनें उसके सत्याग्रह का हृदय से समर्थन किया। मुझे इस दम्पति के इस शौर्य पर आज भी गर्व है। काशीनाथजी जब तक अजमेर रहे, सस्ता साहित्य मडल तथा आश्रम की शक्ति सिद्ध हुए। उनका जीवन बापू के आदर्श और कार्यक्रम के लिए समर्पित है। हिन्दी के सुलेखक, शिक्षण-शास्त्री, सेवाशील, भावुक काशीनाथजी बार-बार याद आते रहते है। उनकी इन योग्यताओ के सामने, उनका आरम्भ काल में मध्य भारत के मन्त्रिपद पर रहना, कोई बडी बात नही मालूम होती। लगभग सारा परिवार इसी रग में रगा हुआ है।

* * *

आश्रम में एक लडकी बीमार हुई—एक वृद्ध डाक्टर देखने आये, सस्कृत के—खासकर आयुर्वेद सबधी—श्लोक बोलते जाते थे, लडकी को देखकर आयुर्वेदिक दवा तजबीज़ की। लडकी एक जागीरदार की थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस व्यक्ति को लोग डाक्टर कैसे कहते है। बाद में डा० शुक्ला नियमित रूप से 'सदन' में आने लगे और बीमारो की देखभाल और चिकित्सा करने लगे। गाँव के लोग, उनके सेवा-भाव से प्रभावित होकर

दवा दारू के लिए आने लगे। गरीबो की, ग्रामवासियो की, सेवा के लिए कडी धूप मे पैदल चले जाते। ७५ से ऊपर अवस्था है, उनके जैसा इतने बुढापे में इतना कठिन परिश्रमी, सेवाभावी, लगनवाला डाक्टर मैंने दूसरा नही देखा। दैवयोग से एक दिन पहले 'सदन' की लडकियो को लाते हुए बस उलट गई तो उसमें बुरी तरह घायल हो गये। उस अवस्था में भी उन्हे लडकियो की चिन्ता रही—अपनी जान की तनिक भी परवाह नही। उस दुर्घटना के और घायल सब अच्छे हो गये—परमात्मा ने सबको बाल-बाल बचाया, डाक्टर अपना टूटा हुआ हाथ बाँधे आज भी अस्पताल में हैं, बडी वेदना होती है, परन्तु उनके चेहरे पर कभी मुस्कुराहट के सिवा विषाद नही देखा। मुझे उनसे मिल के और प्रणाम करके बडा सुख मिलता है। वे हमारे आश्रम के डाक्टर ही नही, बुजुर्ग हो गये है।

* * *

कमल (कमलनयन बजाज) व्याघ्रमुख गऊ की तरह है। बाज साधु ऐसे देखे है, जो उलटी बातें बोलते है, गाली देते है, पत्थर मारते है, लोग उनकी इन चेष्टाओ को प्रसाद और आशीर्वाद मानते हैं। कमल का भी कुछ ऐसा ही हाल है। हमारे परिवार से तथा आश्रम से उनका आज भी वैसा ही घनिष्ट सबंध है, जैसा कि स्व० काका जी (जमनालालजी) के समय था। नमक सत्याग्रह के समय काकाजी ने उन्हें खासकर अजमेर भेजा था, उनके प्रतिनिधि रूप में खुद उनकी वहाँ से जेल जाने की इच्छा थी, परन्तु मध्य-प्रदेश का अधिकार बडा साबित हुआ, अत उनका बेटा ही राजस्थान के पल्ले पडा। कमल ने बडी बहादुरी से वहाँ पिकेटिंग मे हिस्सा लिया और पुलिस से पिटा भी।

इस समय एक कोमल पारिवारिक स्मरण याद आ रहा है। एक बार कमल आश्रम में आया—सयोग से वह उसका जन्म दिन था। शकुन्तला ने बडे उत्साह और चाव से अपने इस भाई का जन्म-दिन मनाने की तैयारी की। रात को बडी देर तक जागती रही और काम में लगी रही। दूसरे दिन सुबह ही कमल आश्रम से रवाना हो गया। बाद में देखा कि शकुन्तला की छोटी लडकी की जो शायद २-४ मास की होगी, हालत खराब है और मृत्यु की राह देख रही है—हम सब लोग चिन्तित हुए, नसीराबाद अस्पताल में ले गये—लेकिन वह चल ही बसी। न जाने कैसे उसकी तबीयत खराब हुई। वह चली गई इतना ही हम लोग जानते हैं।

भगवान् की यह अजीब लीला थी। कमल ने बडा सुन्दर पत्र अपनी इस बहन को लिखा। बच्ची को आश्रम की हद में ही गाडा गया—जब मैं आश्रम में रहता हूँ नियमित रूप से एक-दो फूल उस स्थान पर चढाता हूँ—न जाने क्यो, मुझे यह विश्वास है कि बच्ची शुभा इस आश्रम और 'सदन' में 'खाद' का काम दे रही है।

* * *

मैंने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि 'आश्रम' और 'सदन' मे हिसाब किताब जाननेवाले विश्वसनीय आदमी रक्खे जायें। पहले शिवराम उपाध्याय पर यह जिम्मेदारी थी—अब भी प्रधान व्यवस्थापक के नाते तो नैतिक जिम्मेदारी उनपर ही है, परन्तु प्रत्यक्ष जिम्मेदारी श्री गोवर्धनजी दिवाकर पर है। जब कभी मैं भागीरथी से हिसाब-किताब के बारे में पूछता हूँ, वे आत्मविश्वास के साथ दिवाकरजी का उल्लेख करती है। जब कभी कोई दिक्कत सामने आई कि दिवाकरजी अपनी 'जीजी' को तसल्ली दे आते है और वे मुझे तसल्ली दे देती है। 'जीजी' का इतना विश्वासपात्र बनना 'सदन' में आसान नही है। जब कभी अपनी घरेलू कठिनाइयो के कारण दिवाकरजी 'सदन' से छुट्टी लेने की बात कहते है तो उनकी जीजी को चिन्ता होने लगती है और उन्हें चिंतित देखकर दिवाकरजी अपना विचार बदल देते है। इस कठिन युग में यह दृश्य मुश्किल से ही दिखाई देता है।

[शेष पृष्ठ १८० पर]

कठिनाइयाँ-समस्याएँ

किसी भी संस्था का महत्त्व उसके कामों से तो होता ही है, लेकिन यह भी आवश्यक है कि वह बराबर नये-नये प्रयोग करती रहे। इससे उसकी क्षमता बढ़ती है और साधना का मार्ग उत्तरोत्तर प्रशस्त होता है। हमें हर्ष है कि 'मदन' के इन १२ वर्षों में तरह-तरह के प्रयोग किये गए। कठिनाइयाँ आई, कुछ अब भी बाकी है, कुछ समस्याएँ अपना हल ढूँढती हुई खड़ी है। इस अवसर पर उनकी चर्चा कर देना अप्रासंगिक न होगा।

यह संस्था काफी अर्से तक स्वतन्त्र रूप से चली और बराबर उसका विकास होता गया। लेकिन आर्थिक कठिनाई का उसे हमेशा सामना करना पड़ा। बाद में सरकार की मान्यता प्राप्त करने के फलस्वरूप सरकार से नियमानुसार अनुदान मिलने लगा, परन्तु उससे दूसरी कठिनाइयां खड़ी हो गई। पहले 'मदन' जब अपने पाँवों पर खड़ा था, तो सेवाभावी पुरुष और महिलाएँ उसमें खिचकर आती थी, आई थी। कम वेतन लेकर अधिक काम और परिश्रम करना वे अपना कर्तव्य मानते थे, उसमें सन्तोष और कुछ गर्व भी अनुभव करते थे। सरकारी अनुदान मिलने के बाद सरकारी नियमों के अनुसार सब अध्यापिकाओं तथा कर्मचारियों को सरकारी ग्रेड के अनुसार वेतन देना अनिवार्य हो गया। पहले जो ग्रेजुएट अध्यापिका ६०–७० रु० मासिक में सतोष मानती थी, उसे अब १००–१२५ रु० देना जरूरी हो गया। इससे खर्च का बोझ तो बढ़ा ही, उनका त्यागभाव भी धीरे-धीरे लुप्त होने लगा—वे जहाँ थोड़े में गुजर कर लेती थीं, वहाँ अधिक खर्च करने लगीं, उनकी रहन-सहन का मानदण्ड बढ़ गया। 'मदन' की सादगी के वातावरण में फर्क आ गया। सेवाग्राम और साबरमती पर से दृष्टि हटकर सरकारी विद्यालयों के मानदण्ड पर जमने लगी, जिससे 'मदन' के 'आश्रमत्व' को धक्का लगा—'सेवा' की जगह 'नौकरी' की भावना स्टाफ में बढ़ने लगी—पुराने कुछ व्यक्तियों की भावना चाहे न बदली हो, परन्तु मानदण्ड तो बढ़ ही गया—नयों में तो यह भावना भी बहुत कम पाई जाती है। खर्च की यह बढ़ती सरकार के आश्रय को अनिवार्य बनाती जा रही है। एक शिक्षण-संस्था में यह लाचारी उसके स्वतन्त्र विकास में साधक होने के बजाय बाधक ही हो सकती है।

दूसरी कठिनाई आई अध्यापिकाओं के स्थिर न रहने की। जब उनके सामने सरकारी स्तर के ग्रेड की सुविधा आई, तो कई अध्यापिकाएँ पहले तो सुविधा के खातिर या अपना कदम जमाने 'मदन' में आ गई, फिर उसकी प्रतिष्ठा का लाभ उठाकर दूसरी जगह जाने की तैयारी करने लगीं—कुछ चली भी गई। 'मदन' जगल में, रहने के लिए सादे, छोटे मकान, शहर की-सी आधुनिक सुविधाओं से वंचित—बहुत आकर्षण तो नहीं पैदा कर सकता। सेवा-प्रधान जीवन-निर्माण की उच्च आकांक्षा रखनेवाले कार्यकर्ता कम—अधिकार, सुविधा, चाहने वाले ज्यादा। सेवाभावी, अनुभवी, आश्रम-जीवन के अनुकूल नये कार्यकर्ता और अध्यापिका मिलने कठिन हो गये। जो मिलते हैं उन्हींसे काम चलाना पड़ता है। इससे खर्च अधिक, आश्रमजीवन के अनुकूल काम कम—ऐसी अवस्था उत्पन्न हो रही है। कहीं उपयुक्त कुमारी लड़कियाँ मिल भी गई तो शादी के बाद या तो उनके पति को भी वही व्यवस्था करो, या वे उनके पास जाने के लिए स्वभावत बाध्य होती है। इन कारणों से स्टाफ का स्थिर रखना दु साध्य हो रहा है।

तीसरी कठिनाई धन की है। स्वराज्य प्राप्ति के पहले दाताओ में सेवाभाव था। अब धीरे-धीरे उनकी वह वृत्ति लुप्त होती जा रही है। कुछ स्थिति बदली, कुछ नीयत बदली। कुल मिलाकर सार्वजनिक दान पर चलने वाली सस्थाओ की आज बुरी हालत हो रही है। एक ओर सरकार से सहायता मिलने के नियम-कानूनो के शिकजे से सफलता-पूर्वक निकल जाना महान् कष्ट-साध्य है, दूसरी ओर दान या चन्दा मिलना उतना ही कठिन हो रहा है। जवाब मिलता है—"अब तो आपका कल्याणकारी राज्य है। सरकार से क्यो सहायता नही मिलती ? हमें आपकी सरकार ने अब रखा किस लायक है ? पहले चन्दा देकर दानी कहलाते थे, आप लोग आदर करते थे, अब चन्दा-दान देने के बाद उलटा पूछा जाता है—यह पैसा कहाँ से लाये ? चन्दा देकर उलटा चोर कौन कहलावे ? स्वराज्य के पहले जो हम दानी थे, वह आज हम चोर हो गये ! फिर सरकार ने हमारे पास छोडा ही क्या ? तरह-तरह के टैक्स लगाकर जो आमदनी है वह प्रकारान्तर से ले रही है—ऐसे विधि-विधान बन रहे है जिनसे हमारे पास पैसा सग्रह हो ही नही सकता तो आपको दें कहाँ से ?" हम इसका क्या जवाब दें ? एक ओर सरकारी लाल-फीता-शाही से परेशान, दूसरी ओर धन-दाताओ से दान के बजाय उलटे उलहने मिलते है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि आगे क्या हो ?

जब सत्ता अग्रेजो के हाथ में थी तब उससे हमारा विरोध था। उसतक हमारी पहुँच भी नही होती थी। अब सत्ता अपने ही लोगो के हाथ में है तो उनमे लोगो की आशाएँ-अपेक्षाएँ बहुत बढ गई है। स्वतत्रता पाने पर जो हमारी दृष्टि थी वह अब उसके उपयोग करने, उसमे लाभ उठाने की ओर चली जा रही है। पैसेवाला अब उसे पैसा देता है, जिससे उसका काम निकलता है।

अब सेवा, गुण की कदर कम, प्रभाव, सत्ता, स्वार्थ का असर ज्यादा। यदि आप मत्री या सत्ताधारी है, किसीका काम बना-बिगाड सकते है तो कुछ मिल सकता है, नही तो अपना-सा मुँह लेकर बैठे रहिए। इसमे कुछ अपवाद भी हैं, लेकिन अधिकाश व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी निगाह अपने ही लाभ तक सीमित रहती है।

ये बडी कठिनाइयाँ हैं, कटु अनुभवो का परिणाम है, जो पाठकों के सामने रखी गई है। अब एक-दो समस्याएँ है, उन्हें भी देख लीजिए। उनमें मुख्य है शिक्षा-प्रणाली की। इसमें मतभेद होते हुए भी बहुताश में यह माना जाता है कि अँग्रेजो की चलाई शिक्षा-प्रणाली हितकर नही, उसे बदलना चाहिए। बुनियादी शिक्षा या नई तालीम की तरफ सबका ध्यान जा रहा है, परन्तु वह अभी प्रयोगावस्था में ही है। इसी बीच बहूद्देशीय शिक्षा का कार्यक्रम निकला है। फिर पुरुष और स्त्री शिक्षा में क्या भेद रक्खा जाय—यह समस्या अभी हल होने ही नही पाई है। शिक्षा का सबध जीवन से है। अत जीवन का मुख्य लक्ष्य क्या हो, जीवन-प्रणाली क्या हो, यह जबतक निश्चित नही कर लेते, तबतक शिक्षा-प्रणाली स्थिर करने में दिक्कत आती है। हमारे समाज का, उसके व्यक्ति का, जीवन-लक्ष्य समाजवाद हो, साम्यवाद हो, सर्वोदय हो, यह विवाद अभी समाप्त नही हुआ है। लेकिन दिशा निश्चित करके देश को उस ओर तेजी से आगे बढाना जरूरी है। हमारी सरकार ने समाजवादी लक्ष्य स्वीकार किया है, परन्तु क्या वर्तमान शिक्षण-प्रणाली उसे लाने के अनुकूल है—या बनाई जा रही है ?

पाठ्यक्रम, योग्य अध्यापक, पाठ्यपुस्तकें, शिक्षा के उपकरण आदि सबधी समस्याओ का जिक्र यहाँ करना प्रासगिक न होगा। किसी भी सस्था के लिए श्रमनिष्ठा, सादगी, घर का वातावरण, स्वच्छता, शान्ति आदि मूल्यो की प्रतिष्ठा पर जोर देना जरूरी है। लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि सारे राष्ट्र में इसके अनुकूल हवा पैदा हो। स्त्री-पुरुष में समान भाव आवे, परन्तु इसमें खतरे भी है। 'सदन' मे इसके मीठे-खट्टे दोनो प्रकार के अनुभव हुए है। फिर भी उसके महत्व पर से श्रद्धा नही डिगी है। मूलत सिद्धान्त, आदर्श या लक्ष्य अच्छा है तो जो उसकी पूर्ति में कमियाँ रह जाती है, वे व्यक्तियो की होती है। उससे सिद्धान्त, आदर्श, लक्ष्य दूषित नही होता। अत

अपने कटु अनुभवों, असफलताओं और कष्टों के प्रकाश में अपना शोधन करते हुए, उनमे शिक्षा व लाभ उठाते हुए, आगे बढते रहना है।

"भावे साडी जान जावें कदी नही हारना।"

यह सफलता का मूलमत्र है।

"सुख वा यदि वा दु ख, प्रिय वा यदि वाऽप्रियम् ।
प्राप्तमप्राप्तमुपामीत हृदयेनापराजित ॥"

चाहे सुख हो या दु ख, प्रिय हो या अप्रिय, प्राप्ति हो या अप्राप्ति, जग में कभी हारो नहीं।

—यशपाल जैन

सरदार बालमन्दिर के चौथे वार्षिकोत्सव पर उत्सव के अध्यक्ष श्री कमलनयन बजाज सदन की अध्यापिकाओं के साथ

'सरदार बालमंदिर'
का
वार्षिकोत्सव

'सदन' की सहायक मंत्री शकुंतला पाठक बालमंदिर में चौथे वार्षिकोत्सव पर कार्यविवरण पढते हुए
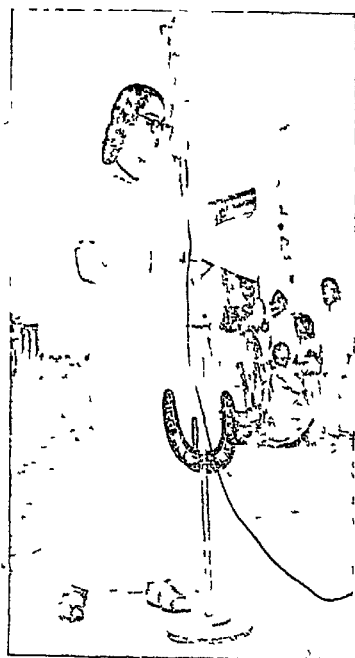
बालमंदिर के वार्षिकोत्सव पर श्री कमलनयन बजाज अध्यक्षीय भाषण देते हुए

बालमन्दिर के
चौथे वार्षिकोत्सव पर बालिकाओं के अभिनय
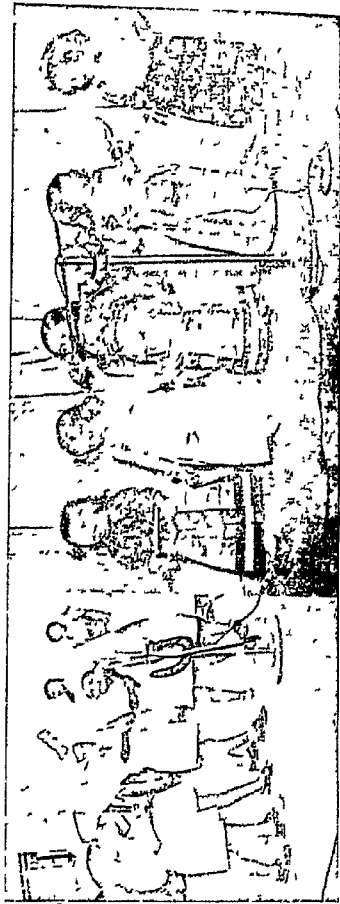
बालकों के कार्यक्रमों के कुछ और दृश्य

सरवार बालमन्दिर के
दूसरे वार्षिकोत्सव पर बालिकाओं के अभिनय

बालमन्दिर के वार्षिकोत्सव पर अभिनय के दो दृश्य

वार्षिकोत्सव पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम के दर्शक

बाल-मंदिर

खेल तथा पढ़ाई

बालमन्दिर के बालक कहानी सुनते हुए

वृक्षो की छाया में प्राथमिक कक्षायें
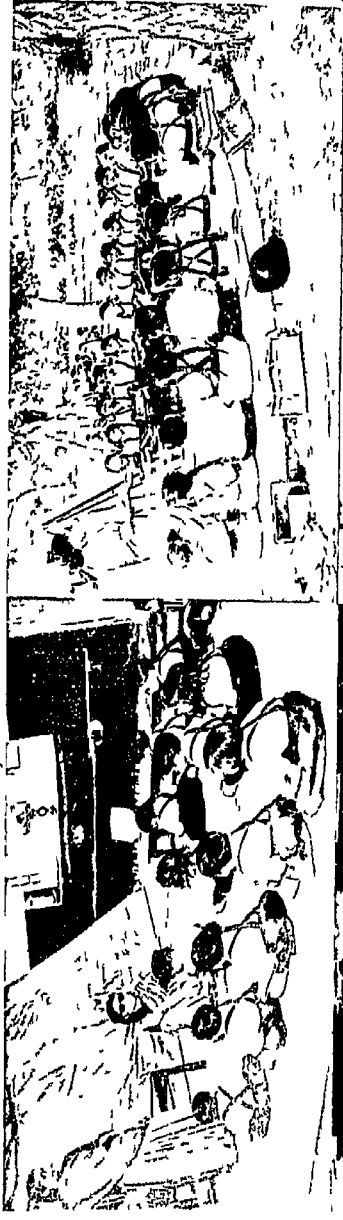
बालमन्दिर का एक दूसरा दृश्य

भारत की अन्य शिक्षा-संस्थाओं के परिचय

संस्थाओं के परिचय

श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र, पाण्डीचेरी

योगिराज श्री अरविन्द की महान् शिक्षाओ और उच्च जीवनादर्शो को विश्वमानव के निकट व्यापक रूप में प्रस्थापित करने तथा उसे सबके लिए सुलभ बनाने के उद्देश्य से श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र की

योगिराज अरविन्द और माताजी

स्थापना की गई थी। सन् १९४३ में आश्रम के वालको के लिये श्री अरविन्द की परम सहयोगिनी श्री माताजी ने एक स्कूल की स्थापना की जो जनवरी १९५२ में विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया। किंडर-गार्डन से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का यहा प्रवन्ध है, मातृभाषा के अतिरिक्त विविध विदेशी भापाओ के अध्ययन की भी समुचित व्यवस्था

श्री अरविन्द आश्रम पाण्डीचेरी के युवक खेल के मैदान में
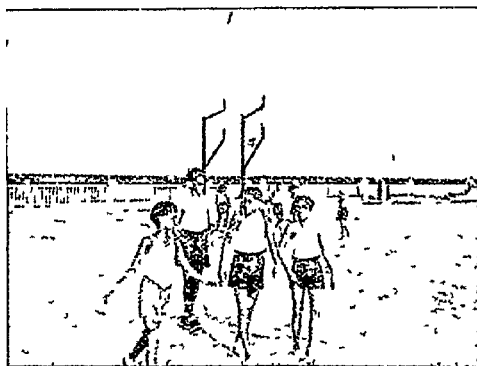
है। सहशिक्षा के अतिरिक्त यहा की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वालको को पूर्ण स्वतत्रता दी जाती है। पढने-लिखने तथा घर पर पाठ तैयार करने आदि में उनकी रुचि, प्रवृत्ति का पूरा ध्यान रखा जाता है। कक्षाओ में उपस्थित होने के लिए उन्हें वाध्य नही किया जाता, परीक्षाओ के भार से उन्हें मुक्त रखा जाता है। प्रगति और योग्यता पर ही उनकी उन्नति आधारित होती है। शिक्षको को अनिवार्य रूप से सुमधुर और सुशिष्ट व्यवहार वालको से करना होता है तथा शिक्षा के प्रति उनमें अनुराग उत्पन्न करने के लिए पारितोपिक आदि की व्यवस्था भी की जाती है। पाठ्यक्रम के अतिरिक्त वालको को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास की समुचित सुविधाए विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जाती है। इस प्रकार सभी दृष्टिकोणो से यह सस्था शिक्षा के क्षेत्र में सर्वथा अनुपम और अनूठी है।

अन्तर्राष्ट्रीय कला केन्द्र, वीसेण्ट गार्डन्स, अडियार, मद्रास

सस्या की स्थापना अडियार में १९३६ में श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने की थी। भारतीय व विदेशी विद्यार्थियो को यहा शास्त्रीय भरतनाट्य, कत्थकली, सगीत और कला व उद्योगो की शिक्षा दी जाती है। केन्द्र का अपना एक वुनाई विभाग है, जो आकर्षक भारतीय साधनो के उत्पादन के लिए विख्यात है। प्रकाशन विभाग व तामिल रिसर्च लाइब्रेरी भी केन्द्र के अतर्गत कार्यशील है। दो अन्य शिक्षण सस्थाए वीसेंट थियोसोफिकल हाई स्कूल और अरुडेल ट्रेनिंग सेंटर माटेसरी शिक्षा पद्धति के आधर पर अध्यापको के शिक्षण का कार्य केन्द्र के सहयोग से कर रहे हैं।

आर्यकन्या महाविद्यालय, वड़ौदा

सस्था की स्थापना स्व० श्री आत्माराम अमृतसरी द्वारा प्राचीन गुरुकुल पद्धति के अनुसार महिला शिक्षण की दृष्टि से सन् १९२५ में की गई। इसका सचालन कार्य आर्य कुमार महासभा द्वारा किया जा रहा है। महाविद्यालय का शिक्षण-क्रम आर्य विश्वविद्यालय की विशारदा व स्नातिका परीक्षा के अनुसार है। स्नातिका होने पर भारती समलकृता व व्यायामाचार्य की उपाधि प्रदान की जाती है। शिक्षण का माध्यम राष्ट्र भाषा हिंदी है।

आर्यकन्या गुरुकुल, पोरवन्दर

गुरुकुल की स्थापना सन् १९३७ में आर्य सस्कृति व महिला शिक्षा के उच्च आदर्शो को लेकर की गई थी। गुरुकुल द्वारा एस० एस० सी० तथा 'भारती' परीक्षाओ के लिये शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा, व्यायाम व मनोरजन का समावेश है।

इन्द्रप्रस्थ कालेज फार वीमेन, दिल्ली

दिल्ली की महिला शिक्षा सस्थाओ में इन्द्रप्रस्थ कालेज का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। वह दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्वद्ध है और राजधानी में प्रथम श्रेणी का विद्यालय माना जाता है। यहा स्नातकोत्तर कक्षाओ तक का अध्ययन होता है तथा अनुसधान कार्य के लिए भी व्यवस्था है। स्थानीय छात्राओ के लिए वस की सुविधा है। कालेज का अपना छात्रावास है जहा सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाए उपलव्ध है। कालेज काफी पुराना है और स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है।

कस्तूरवा वालिका आश्रम, ईश्वरनगर (ओखला), दिल्ली

दिल्ली से ६ मील दूर ओखला रेलवे स्टेशन के पास स्थित इस सस्था का जन्म सन् १९४४ में रामनवमी के दिन हुआ था यह सस्था प्रयाग महिला विद्यापीठ के पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा देती है और साथ ही एक-

कस्तूरबा आश्रम, ओखला की बालिकाएँ चक्की चलाती हुई

कस्तूरबा आश्रम, ओखला की बालिकाओ के सामूहिक खेल का एक दृश्य
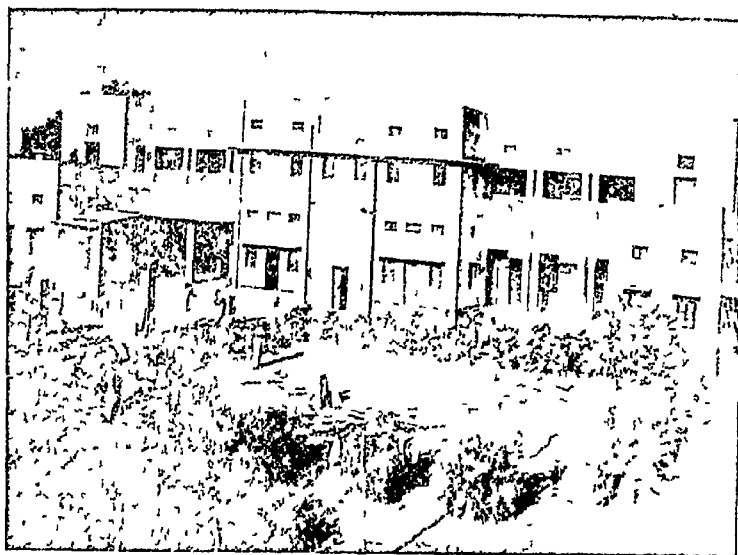
कस्तूरबा बालिका आश्रम, ओखला का मुख्य भवन

दो उद्योगो की शिक्षा भी देती है। यहा पाचवी कक्षा से लेकर विदुषी परीक्षा तक की शिक्षा की व्यवस्था है। उद्योगो मे कताई, धुनाई, सिलाई एव पाकशास्त्र का सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक शिक्षण भी दिया जाता है। कताई करना और खादी पहिनना अनिवार्य है। इनके अतिरिक्त सगीत, चित्रकला, अग्रेजी एव बागवानी की साधारण शिक्षा भी दी जाती है।

इस समय विद्यालय में लगभग १०५ बालिकाए शिक्षा प्राप्त कर रही है जिनमें हरिजन, आदिवासी एव पिछडे हुए वर्ग की बालिकाओ के साथ सवर्ण और विस्थापित बालिकाए भी है। इन बालिकाओ में देश के विभिन्न प्रान्तो के अतिरिक्त नेपाल तक की बालिकाए है। मुक्त वातावरण, खुली हवा, आश्रमानुकूल सयत जीवन और नियमित शरीरश्रम इस सस्था की प्रमुख विशेषता है। यहा से शिक्षा प्राप्त करके लगभग २०० बालिकाए देश के विभिन्न भागो में कार्य कर रही है। आश्रम को आर्थिक सहायता हरिजन सेवक सघ तथा गाधी स्मारक निधि से प्राप्त होती है। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू तथा वियोगीहरिजी के मार्ग दर्शन में सस्था तेजी से प्रगति कर रही है।

कालेज आफ नर्सिग, नई दिल्ली

कालेज की स्थापना भारत सरकार द्वारा देश में महिला परिचर्या को अधिक उन्नत करने के उद्देश्य से जुलाई १९४६ में की गई थी। सस्था में देश के हर भाग से शिक्षार्थियो को प्रवेश दिया जाता है और नर्सिग में बी० एस-सी० आनर्स की उपाधि के लिए यहा शिक्षण दिया जाता है। इसके अतिरिक्त नर्सिग प्रशासन के १० मास के पाठ्य-क्रम का अध्ययन भी यहा किया जाता है। प्रशिक्षित उपचारिकाओ को अधिक महत्वपूर्ण व रचनात्मक कार्य करने की शिक्षा में प्रवृत्त किया जाता है। यहा की स्नातक उपाधि को अ० भा० नर्सिग कौसिल की मान्यता प्राप्त है।

गान्धी विद्यामन्दिर, सरदारशहर (राजस्थान)

राजस्थान के मरु-अचल में पूज्य बापू द्वारा निर्दिष्ट बुनियादी तालीम के प्रचार-प्रसार और क्षेत्रीय आवश्यकताओ के अनुरूप शिक्षा, चिकित्सा और अन्य सेवा कार्य के लिए गाधी विद्या मदिर की स्थापना सन् १९५१ में हुई थी। राजस्थान के उत्साही कार्यकर्ता श्री कन्हैयालाल दूगड ने सस्था के सचालनार्थ पाच लाख रुपये और अपने जीवन के दस वर्ष का समय प्रदान किया।

राजस्थान सरकार और शिक्षा प्रेमी महानुभावो के सहयोग से सस्था को ३२०० वीघा जमीन प्राप्त हुई है, जिसमें वेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, वेसिक हाईस्कूल, बालवाडी, उद्योगशाला आदि के भव्य भवन, कई छात्रावास, उद्योगशाला और गोशाला वनी हुई है। प्रत्येक शिक्षण सस्था के साथ उसका अपना खेत और क्रीडागण है।

गाधी विद्या मन्दिर के अन्तर्गत फिलहाल निम्नलिखित सस्थाओ का सचालन किया जा रहा है—

१ वेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कालेज—वेसिक एस० टी० सी० और वेसिक वी० एड० के दो पाठ्यक्रम चल रहे है, जिनमें क्रमश मैट्रिक परीक्षोत्तीर्ण और विश्वविद्यालय के स्नातको को प्रविष्ट किया जाता है। कालेज मे कई अल्पकालिक पाठ्यक्रम भी चलते है।
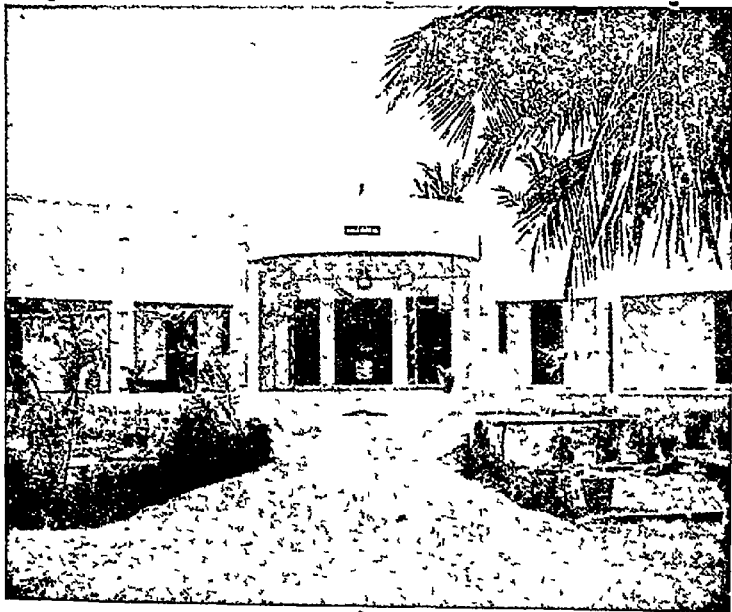
गान्धी विद्यामन्दिर, सरदारशहर का प्रार्थना-भवन और वाचनालय

२ बालवाडी—यह ३ वर्ष से १२ वर्ष तक के बच्चों का हंसता खेलता स्कूल है। इसमें बाल शिक्षण की मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर शिशुओं को शिक्षा के साथ सामाजिक शिष्टाचार, आरोग्य, आहार-विहार का व्यावहारिक ज्ञान भी कराया जाता है।

३ बेसिक हाई स्कूल—इसके दो विभागों में प्राथमिक कक्षाओं से लेकर हाई स्कूल कक्षाओं तक बुनियादी तरीके से तालीम दी जाती है। कृषि और कताई अनिवार्य विषय हैं। विद्यार्थियों के हृदय में शरीरश्रम के प्रति निष्ठा और प्रतिष्ठा की भावना उत्पन्न की जाती है।

४ उद्योगशाला—उद्योगशाला में दरी, गलीचा की बुनाई, काष्ठकला, दर्जीगिरी, कपडे की बुनाई और रंगाई की शिक्षा दी जाती है।

५ महिला विद्यापीठ—यह संस्था सरदारशहर में गांधी विद्या मंदिर की ओर से संचालित की जा रही है। इसमें प्रौढ महिलाओं को सामाजिक ज्ञान, गार्हस्थ्य शास्त्र और सिलाई, कसीदा एवं अन्य महिलोपयोगी विषयों के शिक्षण की व्यवस्था है।

६ गोशाला—गोपालन गांधी विद्या मंदिर के विभिन्न पाठ्यक्रमों में सम्मिलित है। नई गोशाला के निर्माणार्थ माननीय प्रधान मंत्री के कोष से ५०००० रुपये प्राप्त हो चुके हैं और शीघ्र ही नई गोशाला का निर्माण कार्य प्रारंभ किया जावेगा।

७ ग्रामज्योति केन्द्र—ग्रामज्योति केन्द्र गांधी विद्या मंदिर से सम्बद्ध संस्था है, जिसके अन्तर्गत आयुर्वेद विश्वभारती, ग्रामोदय विभाग, आयुर्वेद विद्यापीठ आदि जनकल्याणकारी प्रवृत्तियां चलती हैं। आयुर्वेद विश्व-भारती के द्वारा रजिस्टर्ड वैद्यों के लिए एक रिफ्रेशर कोर्स चलता है। ग्रामोदय विभाग के द्वारा ग्रामसेवा के लिए चलते फिरते औषधालय और पुस्तकालय के अतिरिक्त कई ग्राम्य शिविरों का भी आयोजन किया जाता है।

गांधी विद्या मंदिर के कुलपति प्रसिद्ध सर्वोदय विचारक श्री हरिभाऊ उपाध्याय, वित्त मंत्री, राजस्थान और अखिल भारतीय कांग्रेस के महामंत्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल हैं। इसका संचालन एक कार्य समिति करती है जिसके अध्यक्ष श्री कन्हैयालालजी दूगड हैं।

गांधी विद्या मंदिर सर्वोदय विचारधारा को अग्रसर करने वाली रचनात्मक प्रवृत्तियों का भी प्रमुख केन्द्र है।

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया (राजस्थान)

राज्य सभा के सदस्य स्वामी केशवानन्दजी के मार्गदर्शन और परिश्रम से चलने वाली यह संस्था अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। संस्था की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं—(१) बहुद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, (२) हस्तोद्योग शिक्षा, (३) संगीतशाला, (४) छात्रावास तथा अध्यापक निवास, (५) व्यायामशाला, (६) अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र, (७) आयुर्वेद विभाग, (८) पुस्तकालय तथा जनता वाचनालय, (९) संग्रहालय, (१०) स्त्री शिक्षा महिला आश्रम, (११) प्रकाशन विभाग और (१२) कृषि। विद्यापीठ के संग्रहालय में तिब्बत, चीन, काश्मीर, राजस्थान व अन्य देश विदेशों से लाई गई कारीगरी की सुन्दर वस्तुएं, मूर्तियां, सिक्के, अस्त्र-शस्त्र, आधुनिक एवं प्राचीन शैली की विविध कलाकृतियां इस मरुभूमि के वीरान प्रदेश में जुटाकर रखी गई हैं। वाचनालय भी बड़ा समृद्ध है। उसमें लगभग २५ हजार पुस्तकें हैं। विद्यापीठ के महिला आश्रम में लगभग २०० छात्राएं शिक्षा पाती हैं। उन्हें पाठ्यक्रम के विषयों के अतिरिक्त संगीत, सिलाई, बुनाई, कताई, बागवानी, रसोई का काम आदि भी सिखाये जाते हैं।

ग्राम-सेवा-मण्डल, अजमेर

ग्राम सेवा मण्डल अजमेर जिले के ग्रामो में रचनात्मक कार्य करनेवाली सस्था है। सन् १९३२ में गाधी आश्रम, हटूण्डी के कार्यकर्ताओ का ध्यान जब राजनैतिक कार्य के साथ-साथ रचनात्मक कार्य की ओर भी गया तो श्री वैजनाथ महोदय के साथ एक टोली आसपास के ग्रामो में गई और उसके सुझावो के अनुसार सन् १९३४ में छातडी, बलवन्ता, दाता और खाजपुरा नामक ग्रामो में सेवाकेन्द्र स्थापित कर ग्राम सेवा का कार्य प्रारभ किया गया। सन् १९३७ में ग्रामसेवा केन्द्रो का यह सगठन ही ग्रामसेवामण्डल के रूप में सगठित कर लिया गया। ग्रामो में सेवा-कार्य करते हुए सन् १९३९ में मण्डल ने अकाल के समय वडी उल्लेखनीय सेवा की। सन् १९४० में मण्डल ने एक विशाल खादी प्रदर्शिनी की योजना की जिसका उद्‌घाटन स्व० जमनालाल बजाज ने किया। इस प्रदर्शिनी से खादी प्रचार के काम में बडी सफलता मिली। सन् १९४१ में मण्डल ने हरपाडा ग्राम में एक खादी विद्यालय बनाकर खादी का काम एक वडे पैमाने पर प्रारभ किया। सन् १९४२ में ग्राम सेवामण्डल के सभी कार्यकर्ता आन्दोलन के सिलसिले में गिरफ्तार हो गये। जेल से छूटते ही सन् १९४५ में फिर कार्य दूने उत्साह से प्रारम हुआ। सन् १९-४७ में देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में मण्डल का वार्षिकोत्सव हुआ। इन दिनो अजमेर, ब्यावर, हरपाडा, केकडी, खाजपुरा, सजोद और कादेडा नामक स्थानो में ७ केन्द्र चल रहे थे। अजमेर, ब्यावर और हरपाडा में खादी का, हरिजन सेवा तथा सहकारिता का कार्य हो रहा था, शेष स्थानो पर प्रौढ शिक्षा, रोग-निवारण तथा वस्त्र स्वावलम्बन का।

मण्डल के निमन्त्रण पर सन् १९४९ में आचार्य विनोबा भावे उर्स मेले के अवसर पर अजमेर पधारे और एक सप्ताह तक हिन्दू मुस्लिम एकता का कार्य करते रहे जो बडा सफल हुआ। मण्डल का कार्य निरन्तर बढता जा रहा है। इस समय मण्डल के आठ केन्द्र कार्य कर रहे है, और उनके द्वारा १०७ ग्रामो में खादी उत्पत्ति, बिक्री, सरजाम सुधार आदि का काम हो रहा है। इसके अतिरिक्त एक तेलघानी केन्द्र, एक महिला विकास केन्द्र तथा एक अखाद्य तेल से बनने वाले साबुन का केन्द्र भी चल रहा है। दो अम्बर पर्णिमाल्यो का भी प्रारस किया गया है जिनमें ७०-८० व्यक्ति कार्य कर रहे है। इस सस्था के अध्यक्ष श्री हरिभाऊ उपाध्याय तथा मन्त्री श्री बालकृष्ण गर्ग है।

चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायटी, सप्रू हाउस, नई दिल्ली

इस सस्था की स्थापना सन् १९५५ में भारत सरकार ने की थी। सस्था का उद्देश्य है भारत में बालको के चित्रपट आ दोलन को सबल बनाना। सस्था के अध्यक्ष है पडित हृदयनाथ कुजरू। थोडे से ही समय में इस सस्था ने अच्छा कार्य कर लिया है।

चरोतर एज्यूकेशन सोसायटी, आनन्द

इस सोसाइटी की स्थापना सन् १९१६ में स्व० श्री मोतीभाई अमीन की प्रेरणा से हुई। आरम्भ से ही स्व० श्री विट्ठल भाई पटेल, ठक्कर बापा और जी० वी० मावलकर जैसी महान् आत्माओ का निर्देशन इसे प्राप्त रहा। सोसाइटी का मुख्य ध्येय बिना किसी जाति, रग, धर्म और वर्णादि के भेद के शिक्षा का प्रचार और प्रसार करना है। इस समय सोसाइटी के अन्तर्गत एक बालमन्दिर, एक प्राइमरी स्कूल, मोतीभाई अमीन टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, दादा-भाई नौरोजी हाई स्कूल, कस्तूरबा कन्या विद्यालय आदि सस्थायें कार्यरत है जिनमें लगभग २००० बालक बालि-काए शिक्षा लाभ ग्रहण कर रहे है। इसके अतिरिक्त ए० सी० सी०, एन० सी० सी०, स्काउटिंग और पुस्तकालय आदि की विशेष व्यवस्था है। बच्चे गुजराती में अपना एक पत्र 'बालमित्र' भी प्रकाशित करते है।

जे० जे० स्कूल आफ आर्ट, बम्बई

यह भारत की एक प्रमुख कला सस्था है। वर्षों से कला के शिक्षण, प्रचार और प्रसार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। इस सस्था के द्वारा सचालित विद्यालय में ड्राइग, पेन्टिग, मूर्तिकला, भवन निर्माण, फोटोग्राफी, मुद्रण कला, ब्लाक निर्माण, भवन सज्जा तथा इसी प्रकार की अन्य उपयोगी कला की व्यावहारिक और सद्धान्तिक दोनो प्रकार की शिक्षा दी जाती है। सस्था से सम्बद्ध एक कला सग्रहालय भी है जिसमें भारतीय कलाओ के साथ-साथ पाश्चात्य कला के उत्कृष्ट नमूने सग्रहीत है। इस सस्था द्वारा सचालित परीक्षाओ में हजारो विद्यार्थी प्रति-वर्ष सम्मिलित होते है और देश के बहुत बडे भाग में इन परीक्षाओ के केन्द्र फैले हुए है। कला शिक्षा के क्षेत्र में यह सस्था अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

टाटा इन्स्टीटयूट आफ सोशल साइन्सेज, बम्बई

सस्था की स्थापना जून १९३६ में सर दोराबजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क के रूप में सर दोरा-बजी टाटा ट्रस्ट द्वारा की गई। सस्था मे मान्य विश्वविद्यालयो के स्नातको को २ वर्ष का समाजकार्य सबधी प्रशि-क्षण भी दिया जाता है। इसके अतिरिक्त श्रम कल्याण, व्यवसाय सम्पर्क, शिशु कल्याण, सामुदायिक विकास, सगठन, सामाजिक गवेषणा आदि विशेष कोर्स की शिक्षा भी दी जाती है।

सस्था द्वारा मनोविज्ञान, सामाजिक गवेषणा तथा आदिवासी कल्याण का एक वर्ष का प्रशिक्षण तथा बाल अपराध, ग्राम कल्याण, सामुदायिक विकास व बाल मनोविज्ञान आदि का ६ मास का प्रशिक्षिण भी दिया जाता है।

प्रशिक्षण के अलावा, सस्था द्वारा सामाजिक समस्याओ की गवेषणा के लिए एक अलग विभाग चलाया जा रहा है। सस्था का मुखपत्र, इडियन जर्नल ऑफ सोशल वर्क एक त्रैमासिक निकाला जाता है।

सस्था द्वारा एक बाल निर्देश कार्यालय तथा सामूहिक कल्याण केन्द्र भी चलाये जा रहे है। प्रायोगिक कार्य के लिये एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला भी तैयार की जा रही है।

ठक्कर बापा विद्यालय, त्यागरयानगर, मद्रास

सन् १९३४ में महात्माजी ने हरिजन बालको को विभिन्न उद्योगो मे इस उद्देश्य से प्रशिक्षित कराने की सलाह दी थी कि उन्हें अपने जीविकोपार्जन के लिए परावलम्बी न रहना पडे, कोदम्बकम हरिजन इन्डस्ट्रियल स्कूल की स्थापना इसी उद्देश्य से हुई। आगे चलकर इसी सस्था का नामकरण, हरिजन सेवक सघ के जनरल सेक्रेटरी श्री अ० वी० ठक्कर के नाम पर ठक्कर बापा विद्यालय कर दिया गया। विद्यालय मद्रास सरकार से मान्यता प्राप्त है तथा यहा बढईगीरी, लुहारगीरी, सिलाई व कटाई और कताई आदि उद्योगो की शिक्षा मुख्य रूप से दी जाती है। बिना किसी भेदभाव के सभी जातियो के बालक यहा शिक्षा प्राप्त करते है। आवास के अतिरिक्त नि:शुल्क भोजन और कपडे की व्यवस्था भी शिक्षार्थियो के लिये यहा होती है। शिक्षा समाप्त करके यहा के विद्यार्थी रोजगार प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नही करते। लगभग १५० विद्यार्थी इस समय यहा शिक्षा लाभ ग्रहण कर रहे है।

देवसमाज कालेज फार गर्ल्स, अम्बाला

भारत विभाजन से पूर्व यह कालेज पजाब की एक प्रमुख स्त्री-शिक्षण सस्था मानी जाती थी। कालेज का उद्देश्य बालिकाओ को शारीरिक, नैतिक व मानसिक शिक्षा देना है।

विभाजन के पश्चात् सन् १९४८ में कालेज का पुनर्स्थापन अम्बाला नगर में किया गया। सस्था में इस समय विद्यार्थियो की सख्या ३०० है।

शारीरिक शिक्षा सस्था की एक विशेषता है। यहा राष्ट्रीय कैडेट कोर की एक इकाई सगठित की गई है।

शिक्षण के अतिरिक्त विविध पाठनेतर कार्यो में सस्था को कई शील्ड, पारितोपिक आदि प्राप्त होते रहे है। कालेज का अपना एक स्कूल विभाग है तथा एक छात्रावास भी चलाया जा रहा है। सस्था का सचालन देव समाज रजिस्टर्ड सोसाइटी द्वारा किया जाता है जिसका प्रधान कार्यालय मोगा में है।

पार्वतीवाई ट्रेनिंग कालेज फार वीमेन, पूना

इस सस्था की स्थापना स्वर्गीय प्रो० बापू साहब चिपलूणकर ने सन् १९१७ में की थी। सस्था का नामकरण उसकी आजीवन सदस्या स्वर्गीय श्रीमती पार्वतीवाई आठवले के नाम पर किया गया है। प्रशिक्षण की दो कक्षायें यहा चलती हैं—प्रथम वर्ष और द्वितीय वर्ष। पाठ्यक्रम के अलावा कृषि, कताई, बुनाई और ग्रामोद्योग आदि की शिक्षा देने का यहा पर विशेप प्रवन्ध है। विशुद्ध मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रशिक्षण की व्यवस्था के साथ-साथ देश विदेश की घटनाओ का वोध भी वालिकाओ को कराया जाता है। शिक्षा सम्वन्धी विपयो के अतिरिक्त

पूना सेवा सदन की छात्राएँ सिलाई वर्ग में

छात्रायें शाला-पत्रिका एव पाण्डुलिपियो, खेल-कूद, प्रदर्शनी, स्काउटिंग, होम गार्ड्स तथा वादविवाद में भी विशेष रुचि के साथ भाग लेती है। यह कालेज महर्षि कर्वे द्वारा सस्थापित, हिंगने स्त्री शिक्षा सस्था, हिंगने, पूना के अन्तर्गत कार्य कर रहा है।

पूना सेवा सदन सोसायटी, पूना

सोसाइटी की स्थापना स्व० जस्टिस म० गो० रानडे की धर्मपत्नी श्रीमती रमावाई रानडे तथा श्री देवकर द्वारा २ अक्टूबर १९०९ को की गई। सस्था का मुख्य उद्देश्य स्त्रियो को गृहकार्य व स्वास्थ्य सवधी बहुमुखी शिक्षा देना था। इसी लक्ष्य को लेकर सस्था द्वारा निम्न प्रवृत्तिया चलाई जा रही हैं —

१ मोटलीवाई वाडिया ट्रेनिग कालेज जहा प्रतिवर्ष ४० मे ५० वेसिक अध्यापिकाओ को प्रशिक्षित किया जाता है।

२ प्रौढ स्त्रियो के लिये १०वी कक्षा तक के वर्ग, इसके अलावा नर्सिंग व गृहकार्य की प्रशिक्षा भी दी जाती है। प्रतिवर्ष ४५ महिलाएँ इसका लाभ उठाती हैं।

३ हाई स्कूल जिसमें विद्यार्थियो की सख्या ५४० है।

४ अनाथालय, अतिथिगृह व आवासगृह।

५ यहाँ से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया जाता है।

शोलापुर के मिल क्षेत्र में रहनेवाले बालको के लिए आरोग्य-भवन भी चलाये जा रहे है। सोसाइटी द्वारा पूना, नासिक व शोलापुर में शिक्षार्थी नर्सो व मिडवाइफो के लिये आवासगृह की व्यवस्था की जा रही है। इसके अलावा समय-समय पर नर्सो आदि को सेवाकार्य करने के लिये देश के विभिन्न भागो में भेजा जाता रहा है। अकालसेवा तथा विभिन्न श्रमदान आदि के कार्यो में सोसाइटी द्वारा पूरा भाग लिया जाता है।

अव तक सोसाइटी की सेवा से लगभग ६० हजार महिलाएँ लाभ प्राप्त कर चुकी है।

वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (जयपुर)

१ जन्म—पडित हीरालाल एव श्रीमती रतन शास्त्री की पुत्री शातावाई के वारह वर्ष के उम्र मे अप्रैल १९३५ में आकस्मिक और असामयिक देहावसान के कारण एक करुण प्रसग उपस्थित हो जाने पर अक्टूवर १९३५ में विद्यापीठ का जन्म हुआ।

२ शिक्षा—१ स्तर, शिशु कक्षा से एम० ए० तक। २ विभाग—१ महाविद्यालय। कालेज। २ उच्च माध्यमिक वहूद्देशीय विद्यालय। ३ हाई स्कूल और ४ प्राथमिक विद्यालय, शिशुकक्षा सहित।

३ विशेष—(डिप्लोमा) पाठ्यक्रम (१) सगीत। गायन, (२) सितार, (३) चित्रकला, (४) शारीरिक शिक्षा।

४ पचमुखी शिक्षा—(१) नैतिक, (२) शारीरिक। विभिन्न ड्रिलें, योगिक आसन, खेलकूद, तैरना, साइकिल चलाना, घुडसवारी इत्यादि, (३) व्यावहारिक (सव प्रकार के घर गृहस्थी के काम एव कई हस्त उद्योग), (४) कला विषयक (गायन, वाद्य, चित्रकला एव नृत्य आदि) और (५) पुस्तकीय।

५ विशेषताए—(१) गाव के स्वच्छ और सादे वातावरण में, प्राकृतिक, शरीरश्रम एव समाज सेवा के स्वाभाविक साधनों का उपयोग करते हुए जीवन के साथ योग स्थापित करने वाली सर्वांगीण शिक्षा।

(२) भारतीय आचार विचार की स्वस्थ पृष्ठभूमि में आधुनिक युग के लिए तैयारी तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सामाजिक उत्तरदायित्व और मर्यादा पालन का समन्वय।

(३) अपना निजी एव घरेलू काम स्वय करने पर आग्रह ताकि नौकरो पर कम से कम निर्भर रहना पडे।

(४) छात्राओ तथा कार्यकर्ताओ द्वारा आदतन खादी पहनना।

(५) विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक प्रवृत्तिया यथा— (क) पर्व एव त्यौहार। (ख) वाल मेला। (ग) विभिन्न परिषदें एव छात्रा पार्लियामेंट। (घ) छात्रा पचायत। (ङ) शिक्षण यात्राए और शिक्षण प्रयोजनाए।

३ पुस्तकालय एव वाचनालय—(१) पुस्तक सख्या २०,००० से अधिक, (२) पत्र पत्रिकाए १०० से अधिक।

४ छात्राए—कुल सख्या ६२५।

५ कार्यकर्ता—शिक्षण तथा व्यवस्था सवधी—१०८, अन्य—१०१ (स्त्रिया ३०, पुरुष ७१)।

६ छात्रावास शुल्क तया अन्य

१ छात्रावास शुल्क ४०० रुपये वार्षिक

२ वस्त्र, पुस्तको इत्यादि पर १५० रुपये से २०० रुपये तक प्रति वर्ष

३ शिक्षा शुल्क तथा अन्य किसी प्रकार का शुल्क नही लिया जाता है।

७ अन्य सूचनाए—वनस्थली एक बहुत छोटा सा गाव है जो जयपुर शहर से ४५ मील और निवाई वनस्थली रेलवे स्टेशन से ५ मील दूर है। विद्यापीठ में वस सर्विस, डाक, तार, टेलीफोन, पानी के नल, विजली व हवाई अड्डे आदि की सब आधुनिक सुविधाए उपलब्ध है।

८ भविष्य—कालान्तर में विद्यापीठ को भारतवर्ष के एक स्वतन्त्र महिला विश्वविद्यालय का रूप देने का विचार चल रहा है, जिसमें महिलाओ के विशिष्ट दृष्टिकोण से उनके शिक्षण क्रम का पूर्णतया विकास किया जा सके।

वनिता सेवा समाज, धारवाड

सेवासमाज की स्थापना २२ मार्च सन् १९२८ को महिला-कल्याण के महान उद्देश्य को लेकर की गई थी। समाज का कार्य अनाथ लडकियो के पालन तथा निराश्रितो की रक्षा से प्रारम्भ हुआ। एक प्रारम्भिक पाठशाला से श्रीगणेश करके सन् १९५२ में समाज द्वारा एक वुनियादी प्रशिक्षण कालेज की स्थापना की गई, जिसमें महिला अध्यापिकाओ को प्रशिक्षित किया जाता है। प्रारभिक पाठशाला इस कालेज की प्रायोगिक पाठशाला वन गई है। साथ ही एक अलग हाईस्कूल की स्थापना सन् १९५२ में की गई। समाज द्वारा प्रौढ महिलाओ का वर्ग भी चलाया जा रहा है।

शैक्षणिक प्रवृत्तियो के अतिरिक्त समाज द्वारा एक महिला प्रसूति गृह गरीव महिलाओ की सहायतार्थ चलाया जा रहा है।

सेवा समाज द्वारा एक महिला आवासगृह भी चलाया जा रहा है, जहाँ स्वयसेवा तथा स्वावलवन के सिद्धान्तो पर जीवन यापन सिखाया जाता है। आवास गृह में १८० विद्यार्थियो के रहने की व्यवस्था है। करीव ७५% छात्राओ को नि शुल्क प्रवेश दिया जाता है।

सस्था का कन्नड में एक अपना मासिक मुखपत्र भी निकल रहा है।

वालनिकेतन, जोधपुर

२५ वर्ष पूर्व वालनिकेतन की स्थापना जोधपुर के कतिपय उत्साही कार्यकर्ताओ द्वारा की गई थी। प्रारम्भ में सस्था वालको को सुयोग्य अध्यापको की देखरेख में वेसिक-पद्धति पर शिक्षण देती थी। गत २ वर्षों से सस्था का अपना एक भवन वनने के वाद व्यवस्थित रूप से शिक्षा प्रदान की जा रही है। सस्था

के शिशुवर्ग में ४ वर्ष से ६ वर्ष तथा बाल वर्ग में ७ से १२ वर्ष तक के बालक हैं। शिशुशाला में कला, विज्ञान, हस्त-कला, संगीत आदि की सुव्यवस्थित कक्षाए हैं, जिनमें बालकों के लिए आकर्षक ढग के उपकरणों, चित्रों, मॉडल आदि की सहायता से शिक्षा दी जाती है। उद्योगशाला का अपना अलग भवन है जिसमें साबुन, कागज, सुतारी, कताई-बुनाई आदि गृह उद्योगों की प्रायोगिक शिक्षा दी जाती है। बागवानी व व्यायाम के लिए एक छोटा सा सुंदर बाग तथा अखाड़ा भी है। संस्था का अपना एक क्रीडागण भी है। बाल निकेतन का उद्देश्य बालकों की चतुर्मुखी शिक्षा के अतिरिक्त शिशुओं के कोमल मस्तिष्क में मनोवैज्ञानिक ढग से नये संस्कार उत्पन्न करना है। निकेतन द्वारा बालकों के अभिभावकों को उनकी आदतों तथा क्रिया-कलापों पर आवश्यक निर्देश दिये जाते हैं। प्रत्येक शिशु के पूर्ण प्रगति-विवरण की सूचिका रखी जाती है। संस्था का विचार बालकों के आवास के लिए एक सुरुचिपूर्ण भवन बनाने का है। संस्था का एक सुन्दर बाल संग्रहालय तथा पुस्तकालय भी है।

बालकनजी बारी, बम्बई

सन् १९२३ में परीक्षण के आधार पर दादाजी (बड़े भैया) ने बालकनजी बारी (बाल वाटिका) का आरम्भ किया, जो अक्तूबर १९२६ में देश के बालकों की प्रमुख संस्था बन गई। तभी से इसका क्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता जा रहा है। अब इसकी शाखायें देश के लगभग सभी राज्यों में खुल चुकी हैं। संस्था का उद्देश्य है बालकों का सर्वांगीण विकास करना। इसके लिए लगभग सभी प्रादेशिक शाखाओं में पुस्तकालय, संग्रहालय तथा आधुनिकतम खेल कूद के सामान आदि की व्यवस्था की गई है। मैदान और बाग आदि उपलब्ध करने के लिए भी वे प्रयत्नशील हैं। कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षणार्थ, सरकार से मान्यता प्राप्त, एक शाला भी बम्बई में कार्य कर रही है तथा जगह जगह प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया जा रहा है। साहित्य के क्षेत्र में संस्था के दो सचित्र मासिक 'दी होम एण्ड दी वर्ल्ड' (इगलिश) और 'बालमित्र' (हिन्दी) प्रकाशित होते हैं। इनके अतिरिक्त बाम्बे क्रानिकल, बम्बई समाचार और हिन्दुस्तान आदि पत्रों में भी बाल सदस्यों की व्यवस्था है।

देश के विभिन्न भागों के परिभ्रमण के साथ साथ बालक विदेशी बच्चों से भी, भेंटों के आदान प्रदान तथा पत्र व्यवहार आदि के द्वारा, सम्पर्क स्थापित करते हैं। जहा से भी हो सके गुण ग्रहण करना ही संस्था का ध्येय है। सन् १९५४ से एक युवक शाखा "अखिल हिन्द युवक सघ" के नाम से आरम्भ की गई है जिसका लक्ष्य नवयुवकों और नवयुवतियों को राष्ट्रीय तथा सामाजिक भार वहन कर सकने योग्य बनाना है। इस संस्था के बाल सदस्यों की संख्या साठ सहस्र से अधिक है।

बाल मन्दिर, वर्धा

इस बाल मन्दिर की स्थापना सन् १९३७ में स्व० जमनालालजी बजाज द्वारा महिलाश्रम, वर्धा में की गई। सन् १९४२ तक मदिर का कार्यक्षेत्र पड़ोस के बालकों तक ही सीमित रहा। पर सन् १९४७ से बाल मदिर का काम वर्धा के नागरिकों के सहयोग से एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में चालू है। संस्था में २॥ से लेकर ६ वर्ष की आयु के लगभग २०० बच्चों को, माटेसरी पद्धति से शिक्षा दी जाती है। साथ ही बागवानी, गृह-कार्य एव उद्योगों की प्रारम्भिक शिक्षा भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दी जाती है।

भारतीय विद्या-भवन, चौपाटी, बम्बई

भवन विविध प्रकार से शास्त्रीय अध्ययन, पुरातत्व गवेषणा (पाश्चात्य आधार पर) और नवभारत की गतिशील सास्कृतिक प्रवृत्तियो के शिक्षण का अद्वितीय केन्द्र है। शास्त्रीय अध्ययन के लिए सस्कृत महाविद्यालय, हिंदू धर्म के अध्ययन के लिए गीता विद्यालय, पुरातत्व गवेषणा और उत्तर स्नातकीय अध्ययन के लिए सशोधन मदिर, ललित कलाओ व हस्तकलाओ के लिए सरस्वती मदिर, सगीत शिक्षापीठ, भारतीय नर्तन शिक्षापीठ, एम० एम० आर्ट्स कालेज तथा एन० एम० इन्स्टीटयूट ऑफ साइन्स (जो बी० ए० व बी० एस-सी० के लिए बम्बई विश्वविद्यालय से सयुक्त है) भवन के अतर्गत कार्य कर रहे है।

विश्वविद्यालय की पुस्तको के प्रकाशन के अतिरिक्त, त्रैमासिक पत्र 'भारतीय विद्या' तथा १० भागो में भारतीय जनता के इतिहास और सस्कृति का प्रकाशन कर रहा है। पाक्षिक पत्र 'भवन्स जर्नल' जिसमें कुलपति के जीवन साहित्य और सस्कृति सबधी पत्र भी सम्मिलित है प्रकाशित होता है। इसके ३५ अक निकल चुके हैं व लगभग इतने ही प्रेस में है व लिखे जा रहे है। अध्ययन व गवेषणा के लिए अनेक छात्रवृत्तियो व पीठो की स्थापना भी की गई है। भवन के सग्रहालय और पुस्तकालय में बहुमूल्य सग्रह है। भवन के अध्यक्ष व सस्थापक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी है। सस्था वर्षों से अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

विद्याभवन, उदयपुर

२१ जुलाई १९३१ को स्थापित 'विद्याभवन' नामक चार कक्षाओ के एक छोटे से स्कूल ने सन् १९४१ में विद्याभवन सोसायटी का रूप धारण किया और २५ वर्षो के सघर्षो के पश्चात् अब यह अपने २६वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। सस्था के अतर्गत हाई-स्कूल के साथ एक बाल मन्दिर भी है जहाँ ढाई से पाँच वर्ष तक के बालक शिक्षा ग्रहण करते है।

सन् १९३६ में बालहित मासिक-पत्र-प्रकाशन प्रारभ हुआ और धीरे धीरे एक प्रकाशन-विभाग की स्थापना हुई।

सन् १९४० में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो के आधार पर एक बुनियादी स्कूल कुछ गावो के केन्द्र-स्थल पर खोला गया जो उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा है। सन् १९४२ में अध्यापको के प्रशिक्षणार्थ ट्रेनिंग कालेज खोला गया। तब सी० टी० की ट्रेनिंग दी जाती थी। बाद में बी० एड०, एम० एड० और पी-एच० डी० की ट्रेनिंग क्रमश प्रारभ की गई। सन् १९४४ में अध्यापको को दस्तकारी की शिक्षा देने के लिए हेन्डीक्राफ्ट्स इस्टीटयूट खोला गया। इस वर्ष जनवरी में सेवा-विस्तार की योजना हाथ में ली गई। ट्रेनिंग कॉलेज के तत्वावधान में एक प्रसार विभाग खोला गया जिसका मुख्य कार्य है सेवारत-शिक्षको के कार्य में सहायता करना, उनकी समस्याओ को हल करने में सहयोग देना तथा उनके ज्ञान को नवीन बनाये रखना और उसमें वृद्धि करना। यह आस-पास के लगभग पचास मील के क्षेत्र के शिक्षको के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जनवरी १९५६ में एक समाज-शिक्षा-व्यवस्थापको का पाच माह का प्रशिक्षण दिया गया था।

इस वर्ष २६वें वर्ष के प्रादुर्भाव के साथ साथ १५ अगस्त से एक ग्राम-उच्च शिक्षा-सदन (रूरल इस्टीटयूट) भी खोल दिया गया है, जिसने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। इसमें अभी दो पाठ्यक्रम चलाये गये है—१ सिविल इजीनियरिंग और २ डिप्लोमा इन रूरल सर्विसेज।

विद्याभवन सोमायटी के तत्वावधान में चलने वाली सस्थाओ की अपनी कुछ विशेपताएँ है, जो निम्नानुसार है —

(१) वच्चो को यहा सर्वागीण विकास का पर्याप्त अवसर मिलता है। प्रत्येक वच्चे पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जाता है तथा उसके व्यक्तित्व का सम्मान किया जाता है।

(२) सर्वागीण विकास के लिए जैसा वातावरण तथा जैसे साधन आवश्यक है, यथासभव उनको जुटाने का प्रयत्न किया जाता है।

(३) शिक्षा-मसार में हो रहे शिक्षा के नवीन प्रयोगो को ध्यान में रखकर अपने वातावरण में उनकी उपयुक्तता को आकने का प्रयत्न होता रहता है जो उपयुक्त सिद्ध हो रहे है। यथासभव उनका समावेश विद्याभवन के कार्यक्रम में किया जाता है।

(४) कक्षा की पढाई के अतिरिक्त अन्य जीवनोपयोगी विपयो तथा समस्याओ को समझने के अवसर विद्यार्थियो के सामने प्रस्तुत किये जाते है जिसमे वे सजीव-शिक्षा का आनन्द प्राप्त करके उसमे लाभ उठा सकें।

(५) वच्चो के घर से स्कूल का अधिकाधिक मवध जोडने का प्रयत्न किया जाता है जिससे घर और स्कूल दोनो मिल-जुल कर वच्चे के विकास में सहायक हो मकें।

(६) वच्चे पर जितना भी अनुचित नियत्रण या दवाव है उसको कम करके उमको अधिकाधिक स्वतत्र वातावरण मे अपनी क्षमता के अनुमार विकाम करने का अवसर देने का प्रयत्न किया जाता है।

(७) प्रशिक्षण के लिए आये हुए छात्राध्यापको के लिए भी अपने साधारण प्रशिक्षण के अतिरिक्त ऐमे अवमर जुटाये जाते है जिनमे कि वे जीवन तथा ममाजोपयोगी समस्याओ को ममझने तथा सुलझाने का दृष्टिकोण वना सकें।

विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन

विश्वभारती की स्थापना सन् १९२१ में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा की गई। गुरुदेव के शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण के अनुमार इसका ध्येय व्यक्ति के मानस का मत्य की खोज में विभिन्न पक्षो से अध्ययन करना है। इस आदर्श को ध्यान में रखते हुए (शातिनिकेतन, बोलपुर) में एक सास्कृतिक केन्द्र खोला गया, जो राष्ट्रीयता, धर्म, मम्प्रदाय व जाति के ममस्त द्वन्द्वो से विमुक्त है। विश्ववन्धुत्व व शाति के आधार पर पश्चिम तथा पूर्व की सस्कृति और सभ्यता के समन्वयात्मक दृष्टिकोण से यहाँ धर्म, साहित्य, इतिहास व विज्ञान आदि का अध्ययन, अध्यापन व अनुसन्धान किया जाता है।

विश्वभारती एक अतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विश्वविद्यालय है, जिसमें भारत तथा विदेशो मे विद्यार्थी व अध्यापक विद्याध्ययन व गवेपणा मे रत हैं। यहा गुरु व शिष्यो के पारस्परिक सवध अतरग हैं, व जीवन का आधार मामूहिक व मामाजिक है।

विश्वविद्यालय द्वारा एक विशाल पुस्तकालय सचालित है, जिममें लगभग १० हजार ग्रथ हैं। विभिन्न विभागीय पुस्तकालय इसमे सम्बद्ध है। विश्वविद्यालय का अपना अस्पताल है तथा आगन्तुको के लिए एक अतिथि गृह की व्यवस्था है।

विश्वविद्यालय के विभिन्न शिक्षण सस्थान, विद्याभवन, सगीतभवन, कलाभवन, पाठभवन, विनयभवन,

चीनाभवन व हिंदीभवन देश के सुख्यात मनीषियो व आचार्यों द्वारा सचालित किये जा रहे हैं। विश्वभारती के कुलपति प० जवाहरलाल नेहरू हैं।

विश्वविद्यालय के शिक्षण सस्थानो के अतिरिक्त, ग्रामपुनर्निर्माण कार्य के लिए श्रीनिकेतन में पल्लिसगठन विभाग द्वारा ग्राम्यजीवन सवधी, सामाजिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक समस्याओ के विपद अध्ययन की व्यवस्था है। प्रकाशन कार्य के लिए एक अलग विभाग है, 'विश्वभारती' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी इसी विभाग द्वारा होता है।

सस्था द्वारा एक माध्यमिक विद्यालय चलाया जा रहा है, जिसमें गाव के वालको को ग्रामीण रीति से प्राविधिक शिक्षा दी जाती है। लोक तथा समाज शिक्षण को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से अध्यापको के प्रशिक्षण का एक केन्द्र भी चल रहा है। विभिन्न ग्रामोद्योगो तथा उपयोगी कलाओ के प्रशिक्षणार्थ एक पृथक विभाग खोला गया है। वन विहार यात्रा, गोष्ठिया व विविध गतिविधियाँ यहा के वातावरण की प्रमुख विशेषताए हैं।

महारानी सुदर्शना कालेज, बीकानेर

कालेज की स्थापना वीकानेर राज्य सरकार द्वारा सन् १९४६ में की गई थी। सस्था का नामकरण बीकानेर की राजमाता महारानी सुदर्शना कुमारी के नाम पर, जिन्होने निरतर कालेज की प्रगति में विशेष रुचि ली है, किया गया है। कालेज में हाईस्कूल और इन्टरमीजिएट आर्ट्स की शिक्षा दी जाती है। यह सस्था राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। २०० से भी अधिक छात्रायें यहा विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। यहा की छात्रायें खेलो, राष्ट्रीय पर्वो-उत्सवो व अन्य सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियो में विशेष उत्साह से भाग ले रही है।

महिला-मडल, उदयपुर

यह सस्था उदयपुर में है। महिला समाज की सर्वांगीण उन्नति करने के उद्देश्य से इसकी स्थापना १० नवम्बर, १९३८ को हुई। लगभग १३०० व्यक्ति प्रतिदिन इसके विभिन्न विभागो से लाभ उठाते है।

सर्वश्री डॉ० मोहनसिंह मेहता, लक्ष्मीलाल जोशी, भागीरथ कनोडिया, रामेश्वरी नेहरू, मोहनलाल सुखाडिया, विजयलक्ष्मी पडित, वैद्य भवानीशकर, कमला देवी श्रोत्रिय और दयाशकर श्रोत्रिय इसके सस्थापको में से हैं।

महिला जागृति का कार्य करने वाले इस विकासोन्मुख मडल की रचनात्मक और प्रचारात्मक कई वर्तमान प्रवृत्तियो में से मुख्य यह है जिनसे महिलाओ को शिक्षित, सुगृहिणी और अच्छी नागरिका वनाने के प्रयत्न हुए।

इस समय १ साक्षरता प्रसार के लिए साक्षरता आन्दोलन, २ शहर में और गावो में ३० पाठशालाए, ३ हाईस्कूल, ४ प्रयाग महिला विद्यापीठ की सरस्वती और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा तक की परीक्षाओ की तैयारी के लिए साहित्य महाविद्यालय, ५ ग्राम शिक्षण केन्द्र, ६ ज्ञान वर्द्धन के लिए व्याख्यान माला, ७ "जागृत महिला" मासिक पत्र, ८ सार्वजनिक पुस्तकालय, ९ वाचनालय, १० दो गश्ती पुस्तकालय, ११ ट्रेनिंग कैम्प, १२ गरीव वहिनो की सहायतार्थ महिला उद्योगशाला और सिलाई शिक्षण की विशेष कक्षाए, १३ निर्मित वस्तुओ के विक्रय के लिए दूकान, १४ कमरे और मैदान के खेलो के लिए क्रीडागण, १५ मासिक सभा, १६ समाज सुधार का कार्य, १७ शाखाए, १८ वालको के विकास के लिए नूतन शिक्षण पद्धति के ५ वाल मदिर, १९ कार्यकर्ता परिपद्, २० विद्यार्थिनी सभा, २१ महिला जागृति

के कार्य को शहर तक ही सीमित न रख देहात और गावो में भी अपने कार्य का विस्तार करने और शहरो और गावो में सास्कृतिक, राजनैतिक व आर्थिक दृष्टि से जो गहरी खाईं पडी हुई है उसे पाटने के लिए ग्राम सेविकाओ को ट्रेनिंग देने के लिए श्री कस्तूरवा ट्रेनिंग विद्यालय। ट्रेनिंग विद्यालय की स्नातिकाओं के अब तक ७ समूह निकले हैं। इसमें राजस्थान सरकार की अध्यापिकाए भी ट्रेनिंग में आती हैं। २२ श्री कस्तूरवा छात्रालय, आदिवासी वहिनो की सेवा का कार्य इत्यादि छोटी वडी प्रवृत्तिया योग्य, अनुभवी और सेवाभावी वैतनिक और अवैतनिक ९०-९५ सहयोगियो द्वारा १,२५,००० रुपये वार्षिक खर्च से चल रही हैं जिससे हजारो वहिनें प्रतिदिन लाभ उठा रही हैं। इन उपयोगी, आवश्यक और राष्ट्र निर्माण के वुनियादी कार्य का वडे से वडे नेताओ, विद्वानो, उद्योगपतियो, विदुषियो और राजाओं, महाराजाओ द्वारा समय-समय पर निरीक्षण हुआ। कार्य की उपयोगिता निर्विवाद है। नारी जागरण के पुनीत कार्य को अपनी ताकत तौलते हुए विकास और विस्तार देने की भी कई महत्वपूर्ण योजनाए हैं, जिनकी सफलता देश के दानियो, शिक्षा शास्त्रियो, समाज सुधारको और सुयोग्य कार्यकर्ताओ पर निर्भर है।

श्री म० गु० आर्यकन्या पाठशाला, अजमेर

पाठशाला की स्थापना सन् १८९८ में आर्य सस्कृति के पुनीत आदर्शो के अनुसार वालिकाओ के शिक्षण के लिए की गई। सस्था की प्रतिष्ठापिका श्री गुलावदेवीजी (चाचीजी) द्वारा एक ट्रस्ट के अतर्गत सस्था का सचालन होता है। शिक्षा नि शुल्क दी जाती है व इसमें धार्मिक (वेदमत्र, हवनादि), गृहकार्य व व्यायाम का समावेश है। सस्था द्वारा लगभग ५०० कन्याओ को शिक्षा दी जाती है।

महारानी कालेज, कोटा

राजस्थान निर्माण के पश्चात् इस सस्था को हाई स्कूल से इटर कालेज का स्तर प्राप्त हुआ है। इतने अल्पकाल में ही मस्था ने जो प्रगति की है वह निस्सदेह उल्लेखनीय है। इस समय यहा लगभग ३०० छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। अध्यापिकाए व छात्राए विभिन्न सामाजिक व सास्कृतिक प्रवृत्तियो में भाग लेती है। वालिकाओ के सर्वागीण विकास पर वल दिया जाता है। सस्था राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्वद्ध है।

महारानी कालेज, जयपुर

यह सस्था राजधानी में स्थित होने के कारण विशेप रूप से उल्लेखनीय है। लगभग १००० छात्रायें यहा पर विद्याध्ययन कर रही हैं। जयपुर के तत्कालीन प्रधानमत्री सर मिर्जा इस्माइल के सत्प्रयासो के फलस्वरूप 'इटरमीजिएट कालेज फार वीमेन' के रूप में १ अगस्त १९४१ में इसकी स्थापना हुई। तत्पश्चात् श्री वी० टी० कृष्णमाचारी की रुचि के फलस्वरूप १२ जुलाई १९४७ को इसे डिग्री कालेज का रूप दिया गया। अव तक जो परीक्षाफल रहे हैं वे सस्था की लग्नशीलता के परिचायक है।

मिराण्डा हाउस कालेज फार वीमेन, दिल्ली

दिल्ली विश्वविद्यालय की वी० ए०, वी० एस-सी०, एम० ए०, एम० एस-सी० की छात्राओ को शिक्षा देने के उद्देश्य से यह कालेज २६ जुलाई १९४८ को स्थापित किया गया। यहा पर छात्राओ के आवास का भी प्रवध है। समस्त कमरे आधुनिक ढग की सुविधाओ तथा साज-सज्जा से युक्त है।

मेयो कालेज, अजमेर

सस्था की स्थापना भारत के वायसराय लॉर्ड मेयो की स्मृति में सन् १८७५ में हुई। सन् १९४२ तक सस्था के निजी पाठ्यक्रम के अनुसार देशी राज्यों के राजवशो को ही शिक्षा दी जाती थी। किन्तु सन् १९४२ मे एक नवीन योजना के अनुसार राजपूताना बोर्ड की परीक्षायें होने लगी। सन् १९४९ में सस्था का रूपान्तर एक सार्वजनिक विद्यालय (पब्लिक स्कूल) के रूप में हो गया, व तब से इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग के बालक शिक्षा प्राप्त करने लगे।

सस्था की शिक्षण-प्रणाली आधुनिक शिक्षा व मनोविज्ञान के अनुकूल है। अध्यापको के सरक्षण में मानसिक, शारीरिक व सेवात्मक शिक्षा दी जाती है। श्रमदान व अन्य रचनात्मक कार्यो का भी विद्यार्थियो के शिक्षण में स्थान रहता है। सस्था का एक कारखाना है, जिसमें लकडी व लोहे की वस्तुओं के निर्माण की प्रायोगिक शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थियो को प्रौढ शिक्षण व सामाजिक जीवन के अध्ययन के कार्य मे भी प्रवृत्त किया जाता है।

राजमहल कालेज, जोधपुर

यह कालेज जो अब तक इटर कालेज के रूप में कार्य कर रहा था, इस वर्ष से डिग्री कालेज हो गया है। सस्था मे लगभग ३०० छात्रायें शिक्षा प्राप्त कर रही है। छात्राओ के चतुर्मुखी विकास और व्यायामादि की समस्त सुविधायें यहा प्राप्त है। सस्था, राजस्थान विश्वविद्यालय मे सम्बद्ध है।

राजस्थान महिला विद्यालय, उदयपुर

विद्यालय की स्थापना सन् १९१६ में हुई। उदयपुर क्षेत्र में अपने प्रकार की यह अनोखी सस्था है। यह राजस्थान सरकार द्वारा मान्यता व सहायता प्राप्त सस्था है। किंडरगार्टन से लेकर इटर तक की शिक्षा यहा दी जाती है। गृहविज्ञान, ललित कला, हस्त कला, सगीत व खेलकूद का यहा विशेष प्रबन्ध है। सक्षेप में सस्था छात्राओ के व्यक्तित्व के विकास मे प्रयत्नशील है। लगभग ३०० छात्राए यहा विद्यालाभ कर रही है।

माण्टेसरी स्कूल, पिलानी

बिडला एजूकेशन ट्रस्ट के अतर्गत चलाये जाने वाले विभिन्न शिक्षण सस्थानो मे माण्टेसरी स्कूल का अपना निजी स्थान है। अध्यापक वर्ग के शिशुओं तथा बालको के शिक्षण की दृष्टि से इस विद्यालय की स्थापना २५ वर्ष से भी पूर्व की गई थी। सस्था में माण्टेसरी-पद्धति के आधार पर शिशुओं तथा बालको को शिक्षा दी जाती है। भारत के विभिन्न भागो से प्रतिवर्ष अनेक बालक यहा प्रवेश प्राप्त करते है। अध्यापन-कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है। अन्य विशेषताओं में तैरना, क्रीडाए, मनोरजन आदि की समुचित व्यवस्था है।

रूपायतन, जूनागढ

रूपायतन का शाब्दिक अर्थ है वह वातायन जिसके माध्यम से सौंदर्य के दर्शन प्राप्त हो। यह सस्था गिरनार पर्वत की गोद में कला तथा सस्कृति का सुरम्य केन्द्र है। इसकी स्थापना ७ वर्ष पूर्व श्री नवीन तथा धीरेन गाधी बन्धुओ द्वारा की गई। सस्था को सौराष्ट्र रचनात्मक समिति तथा सौराष्ट्र सरकार द्वारा

सुविधाएं प्राप्त हुईं, व उन्हीं के सहयोग से संस्था अपने आदर्श "सौंदर्य तथा श्रम के समन्वय" को प्राप्त करने में संलग्न है।

संस्था का अपना एक लघु संग्रहालय है। संस्था द्वारा एक मासिक "प्यारा बापू" प्रकाशित किया जाता है। शांतिनिकेतन को आदर्श मानकर संस्था प्रगति के मार्ग पर बढ़ रही है।

लेडी हार्डिंज मेडिकल कालेज फार वीमेन, नई दिल्ली

कालेज की स्थापना १७ फरवरी १९१६ को हुई थी। इसमें केवल महिलाओं के लिए दिल्ली यूनिवर्सिटी की एम० बी० बी० एस० उपाधि की शिक्षा दी जाती है। छात्रावास में २०० छात्राओं के आवास की व्यवस्था है। संस्था विशिष्ट रोगों से पीड़ित महिलाओं व बच्चों की चिकित्सा का समुचित प्रबंध भी करती है। महिलाओं को चिकित्सा का प्रशिक्षण देने तथा उनकी चिकित्सा करने के क्षेत्र में इस विद्यालय का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

लेडी इरविन कालेज फार वीमेन, नई दिल्ली

इस कालेज की स्थापना १० नवम्बर सन् १९३२ को भारतीय नारियों को विज्ञान एवं गृह विज्ञान की शिक्षा देने के उद्देश्य से हुई थी। विकास करते-करते आज यह संस्था पांच महत्वपूर्ण परीक्षाओं के लिए महिलाओं को प्रशिक्षण देती है—(१) सिविल वर्क डिप्लोमा, (२) टीचर्स ट्रेनिंग डिप्लोमा, (३) होम साइन्स डिप्लोमा, (४) बी० एस-सी० तथा (५) बी० एड०। इनके अलावा संगीत, नृत्य, चित्रकला, उद्योग, शीघ्र-लिपि और टाइप की भी शिक्षा दी जाती है। कालेज की निर्देशिका बी० ताराबाई हैं। अपने क्षेत्र में यह कालेज महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। यहां शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाएं देश के विभिन्न स्थानों में कार्य कर रही हैं।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

आज से ३०-३५ वर्ष पूर्व १९२५ में, गांधीजी के आशीर्वाद तथा श्री जमनालाल बजाज और हरिभाऊ जी उपाध्याय की प्रेरणा एवं प्रयत्न से 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हुई।

पहले-पहल उसका कार्यालय अजमेर में रखा गया और उसके उद्देश्य निम्न प्रकार निश्चित किये गए

१ हिन्दी में उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण करना तथा उसको प्रोत्साहन देना।

२ उस साहित्य को जन-साधारण के लिए यथासंभव सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ करना।

३ इन उद्देश्यों की पूर्ति में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहायक विविध कार्य करना, जैसे पुस्तकों तथा पत्रों का प्रकाशन, पुस्तकें लिखने, उनका संकलन व संपादन करने अथवा अन्य भाषाओं से अनुवाद कराने आदि के लिए योग्य व्यक्तियों की सेवाएं प्राप्त करना।

इस कार्य के संपादन में मुनाफे की भावना को कोई स्थान न तब था, न अब है। 'मंडल' का विधान तथा नियमावली तैयार की गई और उसे सन् १८६० के सोसाइटीज एक्ट के अन्तर्गत एक लोकहितार्थ संस्था के रूप में रजिस्टर्ड करा दिया गया। उसके संस्थापक-सदस्यों में स्वर्गीय श्री जमनालाल बजाज, श्री घनश्यामदास बिड़ला, स्वामी आनन्द, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री महावीर प्रसाद पोद्दार, श्री जीतमल लूणिया आदि थे।

'मडल' ने अपने कार्य का शुभारम्भ गाधीजी की सुविख्यात पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास' से किया, जो १९२५ में प्रकाशित हुई।

१९२८ में 'मडल' ने 'त्याग-भूमि' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अपने साहित्यिक महत्व तथा ऊचे मानदड के कारण यह पत्रिका हिन्दी के पाठको मे खूब लोकप्रिय हो गई, परन्तु जब तत्कालीन सरकार ने उससे जमानत मागी तो सन् १९३० में उसका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया।

अबतक 'मडल' ने अपना ध्यान मुख्यत गाधीजी की तथा कतिपय अन्य भारतीय एव टाल्स्टाय, स्वेट मार्डन आदि पश्चिमी विचारको की पुस्तको के प्रकाशन पर ही केन्द्रित किया था, लेकिन अब उसका ध्यान अन्य भारतीय विद्वानो तथा नेताओ की रचनाओ की ओर भी गया। दिल्ली आने पर सबसे बडा ग्रथ डा० पट्टाभि सीतारामैया लिखित 'काग्रेस का इतिहास' प्रकाशित हुआ। यह १९३५ की बात है, जबकि काग्रेस ने अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाई थी। अगले वर्ष, १९३६ में, 'मडल' ने प० जवाहरलाल नेहरू की विश्वविख्यात पुस्तक 'मेरी कहानी' निकाली। इस महान् लेखक की और भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई, जिनमें 'विश्व इतिहास की झलक', 'हिन्दुस्तान की कहानी' आदि मुख्य है। श्री राजगोपालाचार्य, श्री विनोबा भावे, श्री वियोगी हरि, श्री काका साहेब कालेलकर, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री घनश्यामदास बिडला तथा अन्य व्यक्तियो की पुस्तकें भी प्रकाशित हुई और अनेक नामी पश्चिमी विचारको एव विद्वानो की भी रचनाए 'मडल' से निकली।

सन् १९४० में 'मडल' ने समाज का अहिंसा के आधार पर नवनिर्माण करने के उद्देश्य से 'जीवन-साहित्य' नामक मासिक पत्र प्रारम्भ किया, जो अब तक चल रहा है।

इधर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य कई दिशाओ में काफी प्रगति कर गया है और वहाँ से कई मालाएँ निकल रही है। कोई ४०० से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर

इस सस्था की स्थापना का श्रेय स्व० प्रोफेसर लालजी श्रीवास्तव तथा उनकी धर्मपत्नी को है, जिन्होने एक प्रायमरी पाठशाला के रूप में अपने निवासस्थान पर ही ४ फरवरी सन् १९१४ को इसका श्रीगणेश किया। अपने निजी भवन में स्थानान्तरित होने से पूर्व इस सस्था ने नगर के विभिन्न भागो में सन् १९३२ तक मिडिल स्कूल के रूप में कार्य किया। १९३३ में हाई स्कूल के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। १९४३ में महाविद्यालय अपने वर्तमान भवन में, जो ४॥ एकड जमीन पर ४७ कमरो से युक्त ऐतिहासिक आनासागर के पास स्थित है, आ गया। १९४३ में इण्टरमीडिएट कालेज के रूप में मान्यता प्राप्त करके आगरा विश्वविद्यालय से बी० ए० के लिए १९५१ में सम्बद्ध हो गया। अब यह राजस्थान विश्वविद्यालय से भी सम्बद्ध हो चुका है। इस समय महाविद्यालय में १६०० छात्राए शिक्षा ग्रहण कर रही है। सगीत, गृह विज्ञान, खेल कूद, कला और सस्कृति, नैशनल कैडेट कोर और आग्जीलरी कैडेट कोर का विशेष प्रबन्ध है। इसके अतिरिक्त सस्था के पुस्तकालय में ९५७१ पुस्तके है और प्रतिभा नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। छात्राओ का एक सघ है तथा आवास का भी प्रबन्ध है।

एस० एम० डी० ठाकरसी वीमेन्स यूनीवर्सिटी, बम्बई

इस विद्यालय की स्थापना १३ जनवरी सन् १९५१ को हुई। दीवान बहादुर श्री के० एम० झवेरी इसके उपकुलपति चुने गये। विश्वविद्यालय से २ आर्ट्स कालेज, २ हाई स्कूल और तीन कालेज स्थायी रूप से तथा १ कालेज अस्थायी रूप से सम्बद्ध है।

सरस्वती विद्यापीठ, कोटा

संस्कृत शिक्षा के महत्त्व को जागृत रखने के उद्देश्य से श्री सरस्वती विद्यापीठ की स्थापना कोटा राज्य के राज्य पाठक श्री सदाशिव शास्त्री के सद्प्रयत्नो से आज से लगभग १७ वर्ष पूर्व हुई थी। उस समय इस संस्था का प्रारम्भ केवल १) माहवार की कोठरी किराए पर लेकर हुआ था। परन्तु लक्ष्य प्राप्ति की अटूट लगन के कारण आज यह पर्याप्त व्यापक स्वरूप अपना चुकी है। आज यह संस्था सोसाइटीज एक्ट के अन्तर्गत रजिस्टर्ड और राजस्थान सरकार द्वारा शास्त्री तक की परीक्षाओं के लिए मान्य और सहायता प्राप्त है। प्राथमिक विभाग (बाल-मन्दिर) में इस वर्ष ६ठी तक की कक्षाएँ प्रारम्भ हो चुकी हैं। कुल विद्यार्थियो की संख्या लगभग ३०० है। संस्था के पास अपना निजी भवन है जिसका आवश्यकताओं के अनुसार विस्तार होता जा रहा है।

इस संस्था के आधारभूत उद्देश्य निम्न हैं —

१ मानव संस्कृति और सभ्यता की निर्माणकर्त्री देववाणी संस्कृत का जन-जन में प्रसार।

२ संस्कृत विश्वविद्यालय का रूप अपनाकर विशाल संस्कृत वाङ्मय का व्यापक शोध कार्य।

३ प्राचीन और नवीन दोनो विचारधाराओं की समन्वयात्मक शिक्षा प्रणाली।

४ संस्कारों में प्रविष्ट होने वाली नैतिक और व्यावहारिक बाल-शिक्षा की प्रगतिशील योजना।

५ स्वावलम्वी और श्रमजीवी बनने की प्रेरणा देने वाला औद्योगिक प्रशिक्षण।

६ सांस्कृतिक पुनरुत्थान।

इनके लिए संस्था के अन्तर्गत कतिपय विभिन्न प्रवृत्तियो का विस्तार किया गया है जिनमें मुख्य ये हैं —

१ "शैक्षणिक प्रवृत्तियाँ"—इसके अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय, रात्रि कक्षा और बाल मन्दिर हैं। बाल मन्दिर के दो विभाग हैं—एक में ३ से ६ वर्ष तक की आयु वाले और दूसरे में ६ से १३-१४ वर्षतक की आयु वाले बालक-बालिकाएँ हैं। संस्कृत, संगीत और उद्योग पर प्रारम्भ से ही विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है।

२ "सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ"—बालको की कलात्मक प्रतिभा के विकास के लिए यह संस्था इस क्षेत्र में अग्रसर हुई है। संस्कृत नाटक और जनजीवन में से खोज निकाले गए लोक-नृत्य इसकी विशेषताएँ हैं जो बालक-बालिकाओं के हाथो में पडकर आश्चर्यजनक रूप से मनोमुग्धकारी हो जाते हैं। इन प्रवृत्तियो का सञ्चालन करने के लिए इस संस्था के अन्तर्गत "भारती-कला-परिषद्" की स्थापना की गई है जो केन्द्रीय सरकार के सूचना एव प्रसार मन्त्रालय (गीत एव नाट्य विभाग) से मान्य है।

३ "औद्योगिक प्रवृत्तियाँ"—प्रारम्भ से ही बालक और बालिकाओ को उनकी रुचि के अनुकूल उद्योग की ऐसी शिक्षा दी जाती है जिससे कि वह श्रम के महत्त्व को समझ सके। इसके लिए एक विशाल उद्योगशाला की स्थापना की योजना है।

४ "शिक्षा-समारोह एव बाल-मेला"—इनको प्रतिवर्ष मनाने की योजना बनाई गई है जिससे कि बालक अपने कार्यो का लेखा-जोखा जनता के सामने उपस्थित कर सकें और भविष्य के लिए प्रेरणा पा सके। साथ ही देश भर की शिक्षण-संस्थाओ से अपना सम्पर्क भी स्थापित कर सके।

संस्था की कार्यप्रणाली मौलिक रूप से प्रगतिशील और विकासोन्मुख है जिसमें प्राचीन और नवीन दोनो का समन्वय है।

सेण्ट जेवियर स्कूल, जयपुर

सेण्ट जेवियर स्कूल की स्थापना जुलाई १९४३ को फादर आर० ई० लुडविग ने की। इँगलैण्ड के पब्लिक स्कूल के नमूने पर यह स्कूल प्रारम्भ हुआ और प्रतिवर्ष प्रगति करता हुआ अब जयपुर ही नही राजस्थान के बहुत अच्छे-अच्छे स्कूलो में गिना जाता है। स्कूल का अपना एक छात्रावास तथा एक सुन्दर स्नान सरोवर भी हैं। इस समय स्कूल में लगभग ८२५ बालक शिक्षा पाते है तथा छात्रालय में १२० बालक रहते है। अपने अनुशासन, शिक्षा और पाठनेतर प्रवृत्तियो के लिए यह स्कूल काफी प्रसिद्ध है।

हैपी स्कूल सोसायटी, दिल्ली

सस्था की स्थापना सन् १९३३ में श्री पदमचन्द द्वारा बाल-शिक्षण के रूपो में विकास की दृष्टि से की गई। सस्था के अन्तर्गत २ विभाग व २ प्रयोग स्कूल चलाये जा रहे हैं।

सस्था के हैपी टीचर्स ट्रेनिंग सेण्टर द्वारा स्त्रियो को प्रारम्भिक व शिशु अध्यापन की शिक्षा दी जाती है। स्नातिका को एच० ई० डी० की उपाधि दी जाती है।

हिन्दुस्तानी तालीमी सघ, सेवाग्राम, वर्धा

इस सस्था का जन्म गान्धीजी के बुनियादी तालीम के विचार को मूर्त रूप देने के लिए हुआ था। सौभाग्य से उसे श्री आर्यनायकम्‌जी और आशादेवीजी जैसे विद्वान् शिक्षा शास्त्रियो की सेवाएँ प्राप्त हो गई। सेवाग्राम आश्रम में ही इसकी स्थापना हुई और अध्यापको को बुनियादी तालीम का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ अध्यापन का कार्य भी किया जाता है। सघ की एक पत्रिका भी निकलती है। बुनियादी तालीम का काम पाँच सम विभागो मे विभक्त है—(१) पूर्व बुनियादी, (२) बुनियादी, (३) उत्तर बुनियादी, (४) उत्तम बुनियादी और (५) प्रशिक्षण। सघ से प्रशिक्षण प्राप्त करके हजारो युवक-युवतियाँ देश के विभिन्न भागो में बुनियादी शिक्षा का काम कर रहे है।

हिंगने स्त्री शिक्षण सस्था, बम्बई

इस सस्था का श्रीगणेश १४ जून १८९६ को "दि हिन्दू विडोज होम एसोसियेशन" के नाम से हुआ। प्रारम्भिक २॥ वर्षों में, जबतक कि पर्याप्त अर्थ व्यवस्था नही हो सकी, केवल कुछ विधवाओ के निर्वाह और शिक्षण का प्रबन्ध फीमेल ट्रेनिंग कालेज और गवर्नमेण्ट हाई स्कूल फार गर्ल्स पूना में किया गया। १-१-८९ को डाक्टर डी० के० कर्वे ने पूना में एक किराये के मकान के अन्दर वास्तव में एक अनाथ बालिका आश्रम आरम्भ किया। तत्पश्चात् राव-बहादुर गणेश गोविन्द गोखले ने लगभग ६ एकड भूमि और एक कमरे के निर्माण की सहायता देना निश्चय किया। फलस्वरूप सन् १९०० में एक कच्ची झोपडी का निर्माण आश्रम के निमित्त किया गया जो आज भी प्रेरणा के प्रतीक के रूप में यथापूर्व सुरक्षित है। सस्था का ध्येय युवती, निर्धन और योग्य हिन्दू विधवाओ को शिक्षित करके आत्म-निर्भरा तथा समाजोपयोगी बना देना था। आरम्भ में यद्यपि अनेकानेक कठिनाइयो का सामना डा० कर्वे और उनके सहयोगियो को करना पडा परन्तु अपने अदम्य उत्साह और सच्ची लगन के कारण सभी पर उन्होने विजय पाई। धीरे-धीरे कुमारिकाओ का ध्यान भी सस्था की ओर आकर्षित हुआ और फलस्वरूप उनके लिए भी महिला विद्यालय नाम से एक अलग सस्था की स्थापना कर दी गई। विकास के पाँच वर्ष पूना में समाप्त करके महिला विद्यालय सन् १९१२ में अपने नवनिर्मित भवन में हिंगने स्थानान्तरित हो गया। सन् १९१५ में आनथ बालिकाश्रम और महिला विद्यालय का एकीकरण हो गया तथा विवाहिताओ, अविवाहिताओ और विधवाओ के शिक्षण के लिए हिन्दू विडोज होम एसोसियेशन ने कार्यारम्भ कर दिया। सस्था की ओर से अपराधी, अवहेलित, उपेक्षित और

अनाथ बच्चो के लिए भी एक विशेष आवास गृह लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व आरम्भ कर दिया गया है, जिससे सैकडो बच्चे लाभान्वित हुए हैं।
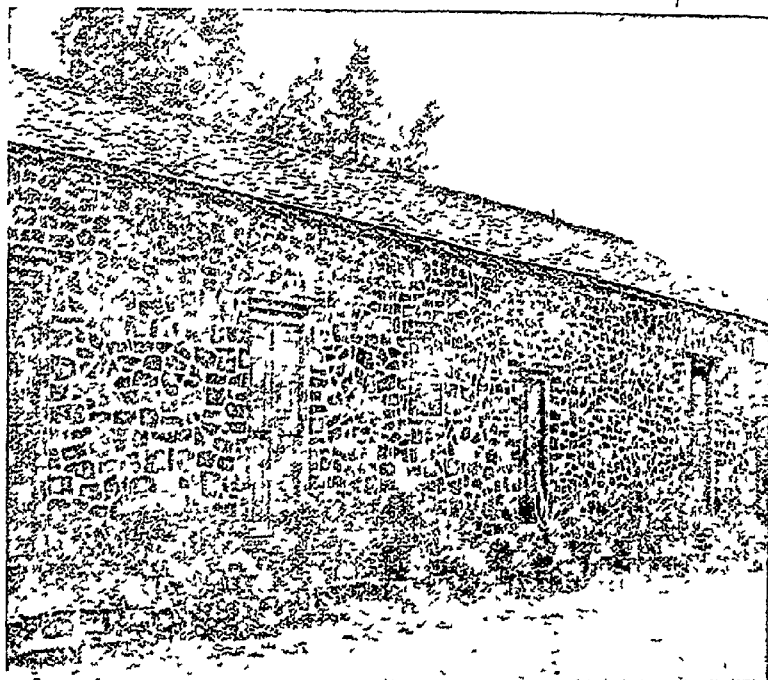
वह झोपडी जो आगे चल कर कर्वे विश्वविद्यालय के रूप में बदल गई

इस समय संस्था की विभिन्न शाखाओ तथा प्रशाखाओ में, सभी जातियो और वर्णों की २००० छात्राएँ बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त कर रही है और लगभग ५००० महिलाएँ अब तक इसकी सद्‌शिक्षाओ और सेवाओ से लाभ उठा चुकी है।

हिंगने में इस समय तीन मुख्य विभाग कार्य कर रहे है —

(१) महिलाश्रम—एस० एस० सी० परीक्षा के लिए।

(२) पार्वतीबाई ट्रेनिंग कालेज फार वीमेन।

(३) आनन्दीबाई कर्वे प्राइमरी स्कूल।

निर्धन शिक्षार्थियो के लिए अर्धशुल्क तथा नि शुल्क शिक्षा की भी यहाँ व्यवस्था है।

पाठ्यक्रम के अतिरिक्त छात्राओ को गृहस्थी के कार्यो, विविध कलाओ, खेती बाडी तथा समाज सेवा आदि की भी शिक्षा सुचारु रूप से दी जाती है।

५ से २५ वर्ष तक की लडकियो और १० वर्ष तक के लडके तथा आधुनिक विचारो वाली और पिछडी हुई लडकियो को एक साथ रखकर पारस्परिक प्रेम, त्याग, सहयोग और सद्‌भावनाएँ भी उन्नत करने पर यहाँ बल दिया
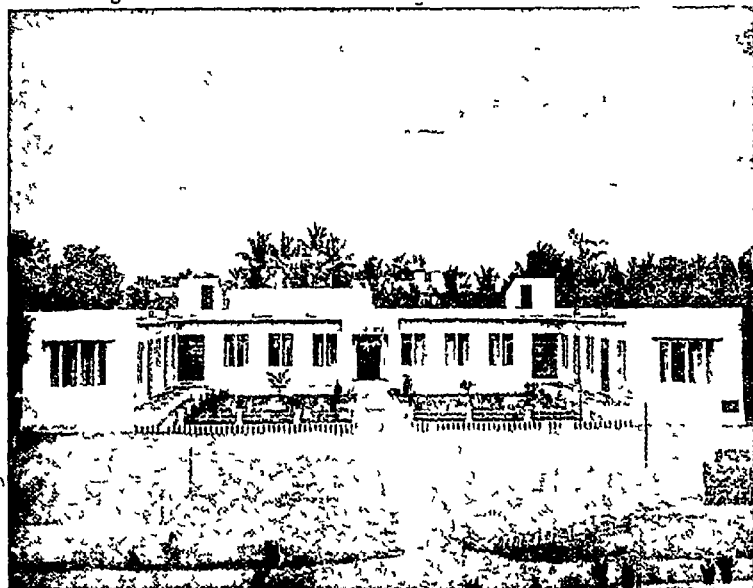
कर्वे विश्वविद्यालय का छात्रावास

जाता है। इसी सस्था ने भारतीय महिला विश्वविद्यालय को जन्म दिया और यही पर सर्वप्रथम सात वर्ष तक, मातृभाषा के माध्यम से महिलाओ को उच्च शिक्षा देने का परीक्षण किया गया। ग्यारह आजीवन सदस्यो ने जिनमें ६ महिलाएँ है त्याग के आधार पर आजीवन सस्था की सेवा का व्रत लिया है। महिलाओ को मनोवैज्ञानिक शिक्षण के द्वारा सर्वांगीण विकास की ओर ले जाने वाली यह सस्था, निश्चय ही, महिला शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाग्रगण्य है।

कस्तूरबा गाधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट, कस्तूरबाग्राम (इन्दौर)

कस्तूरबा, १९४२ के "भारत छोडो आन्दोलन" में ९ अगस्त को गिरफ्तार हुईं और पूना के पास आगाखाँ महल में गाधीजी के साथ नजरवन्द की गईं। २२ फरवरी १९४४ को कारावास में ही उनका देहान्त हुआ। बा उस समय ७५ वर्ष की थी। उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए कस्तूरबा गाधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट की स्थापना हुई। इस निधि में १ करोड २५ लाख रुपये एकत्र हुए और यह सारी रकम गाधीजी को उनकी ७५वी वर्षगाठ पर अर्पित की गई।

उद्देश्य

निधि के उपयोग की तरह-तरह की योजनाएँ सामने थी। लेकिन गाधीजी इस निधि का उपयोग देहाती

स्त्रियों और बच्चो के लिए करना चाहते थे। उनके शब्दो में "बा स्वभाव से देहातिन थी। देहात के जीवन की सेवा के लिए जीवन समझकर मेरे उसे अपनाने से बहुत पहले कस्तूरबा ने उस जीवन के लिए अपनी पसन्दगी जाहिर की थी।" अत यह तय हुआ कि इस निधि का उपयोग हिन्दुस्तान के देहातो में स्त्रियो तथा बच्चों की सेवा के लिए हो।

अपने जीवन काल में गाधीजी ट्रस्ट के अध्यक्ष रहे। उन्होंने "देहात" शब्द की स्पष्ट व्याख्या करते हुए ट्रस्ट के लिए यह मर्यादा रखी कि वह अपने काम का फैलाव ऐसे देहातो में करे, जिनकी आबादी २,००० से अधिक न हो और न वे किसी शहर या कस्बे के अग हो। "बालक" की आयु-मर्यादा भी ७ वर्ष तक मानी गई। गाधीजी का यह भी आग्रह था कि ट्रस्ट का काम जहा तक सभव हो स्त्रियों के द्वारा ही किया जाय।

सगठन

गाधीजी के बाद ट्रस्ट के अध्यक्ष क्रमश स्व० सरदार वल्लभभाई पटेल, स्व० श्री० ठक्कर बापा तथा स्व० गणेश वासुदेव मावलकर रहे।

फिलहाल श्रीमती प्रेमलीला वि० ठाकरसी ट्रस्ट की अध्यक्ष, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू उपाध्यक्ष और श्रीमती सुशीला पै मत्री है।

ट्रस्ट का काम देश के भिन्न-भिन्न भागो में वहा के प्रान्तीय प्रतिनिधियो के द्वारा होता है। उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान को छोडकर शेष सभी राज्यों में प्रतिनिधि है। प्रारम्भ मे ही महिलाओं को प्रतिनिधि नियुक्त करने का आग्रह रखा गया। प्रतिनिधि प्रान्तीय कार्यालय का सचालन करती है और अन्य सहयोगियो की मदद से विद्यालय, सेवा केन्द्र आदि प्रवृत्तिया चलाती है। इस समय ट्रस्ट के २५ ट्रस्टी है, यह सख्या नियम के अनुसार ३० तक हो सकती है। ट्रस्ट की कार्यकारिणी समिति में १२ ट्रस्टी है।

ट्रस्ट के ६ होल्डिग ट्रस्टी है, जिनके नाम पर सारी सम्पत्ति रखी गई है। ट्रस्ट का सलाहकार मेडिकल बोर्ड प्रसूति-सेविकाओ की परीक्षा लेता है तथा ट्रस्ट को मेडिकल मामलो में सलाह देता है। इडियन नर्सिग कौसिल द्वारा मेडिकल बोर्ड की परीक्षा मान्य की गई है। बोर्ड के अध्यक्ष डा० जीवराज और मत्री डा० वार्देकर है। बोर्ड की परीक्षा समिति के अध्यक्ष डा० चमनलाल मेहता है।

ट्रस्ट का प्रधान कार्यालय कस्तूरबाग्राम, इन्दौर (मध्य प्रदेश) में है।

प्रवृत्तिया

सेवा केन्द्र

ट्रस्ट द्वारा देहातो में दो प्रकार के सेवा केन्द्र चलाये जाते है—(१) ग्रामसेवा केन्द्र, (२) आरोग्य केन्द्र।

भिन्न-भिन्न राज्यों मे दिसम्बर १९५६ में ६ अस्पताल, ६१ आरोग्य केन्द्र, १०९ ग्रामसेवा केन्द्र तथा ९२ आरोग्य व ग्रामसेवा की सयुक्त प्रवृत्तियों वाले केन्द्र थे। १९५६ में विविध कारणो से ५६ केन्द्र बद हुए तथा ३४ खोले गये।

ग्राम-सेविका प्रशिक्षण

देश के भिन्न-भिन्न राज्यो में इस समय ट्रस्ट द्वारा २१ ग्रामसेविका प्रशिक्षण विद्यालय चलाये जा रहे है। इनके अतिरिक्त ८ प्रशिक्षण केन्द्र प्रसूति-शास्त्र तालीम के लिए है। मजदूर मगल केन्द्रो पर काम करने वाली सेविकाओं के लिए आसाम में एक शिक्षण केन्द्र और चलता है। इनमें तालीम पा रही छात्राओं की सख्या दिसम्बर १९५६ में इस प्रकार थी—

ट्रस्ट की ओर से	२३३
समाज कल्याण बोर्ड की ओर से	९४५
अन्य	९२
	१२७०

कस्तूरबाग्राम

ट्रस्ट की "केन्द्रीय प्रशिक्षण सस्था" कायम करने की योजना १९४५ से सामने थी तथा इसके मुख्य-मुख्य मुद्दो पर गाधीजी के समक्ष ही चर्चा हो चुकी थी। बाद में इतने साल के अनुभव ने भी यह सिद्ध किया कि प्रातीय प्रशिक्षण विद्यालयो के अलावा ट्रस्ट का एक केन्द्रीय विद्यालय, जहा सब प्रकार के प्रशक्षिण की व्यवस्था हो, स्थापित किया जाय। इसके लिए इन्दौर के पास रालामडल ग्राम में मध्यभारत सरकार ने ४८० १९ एकड जमीन प्रदान की और कस्तूरबाग्राम नाम से एक स्वतत्र राजस्व ग्राम बनाया गया।

२ अक्टूबर १९५० को स्व० सरदार श्री वल्लभभाई पटेल ने कस्तूरबाग्राम की नीव रखी। ट्रस्ट का केन्द्रीय कार्यालय १ मई १९५१ से यहा लाया गया और केन्द्रीय विद्यालय का प्रारम्भ १८ जुलाई १९५१ से हुआ। कस्तूरबाग्राम में कृपि लायक ३५० एकड भूमि है। इस जमीन पर कृपि-गोपालन का कार्य गाधी स्मारक निधि के कृपि-गोसवर्द्धन विभाग द्वारा किया जा रहा है। एक छोटा पशु चिकित्सालय भी है। गोशाला में मालवी, गीर तथा काकेंज जाति की लगभग ९० गायें है।

कस्तूरबाग्राम के विद्यालय में विविध प्रशिक्षण योजनाओ की छात्राए तालीम पा रही है। १९५७ से समाज शिक्षण सगठन के प्रशिक्षण की तालीम का काम भी ट्रस्ट ने हाथ में लिया। यह तालीम भारत सरकार के प्रमत्रणालय द्वारा चलाई गई है। ट्रस्ट के विद्यालयो में काम करने वाली शिक्षिकाओ के प्रशिक्षण का कार्य भी इसी वर्ष कस्तूरबाग्राम में प्रारम्भ हुआ।

प्रसूति-शास्त्र प्रशिक्षण की छात्राओ की तालीम तथा आसपास के इलाके की जनता के हित की दृष्टि से कस्तूरबाग्राम में एक छोटा अस्पताल चल रहा है, जिसमें अन्तर-रोगी तथा बहिर्-रोगी विभाग है और प्रसूति-गृह में २० प्रसूताओ के लिए स्थान है।

विस्थापितो के बीच

भारत सरकार ने १९५१ में ट्रस्ट को पेप्सू राज्य के राजपुरा पुनर्वास केन्द्र पर स्त्रियो के कैम्प का काम सौंपा। कैम्प के सफल प्रवन्ध को देख कर भारत सरकार ने चाहा कि इस तरह के और भी कुछ कैम्पो का सचालन ट्रस्ट करे। क्रमश तीन कैम्पो का काम और सौंपा गया। इस समय ट्रस्ट द्वारा निम्न तीन निर्वासित गृह व्यवस्थित रीति से चलाये जा रहे है—

१ कस्तूरबा सेवाश्रम, राजपुरा।

२ कस्तूरबा सेवासदन, फरीदाबाद।

३ कस्तूरबा सेवालय, सरदारनगर (अहमदाबाद)।

इसके अतिरिक्त ट्रस्ट द्वारा राजस्थान के गगानगर व अलवर जिले में विस्थापितो के बीच कुछ केन्द्र चलाये जा रहे है।

कुष्ठ-सेवा

तामिलनाड के दक्षिण अर्काट जिले में मलवनथगल देहात में पिछले ९ वर्ष से कुष्ठधाम चलाया जा रहा

है। इस कुष्ठधाम की यह विशेषता है कि इसके मार्फत कुष्ठ रोग के उन्मूलन का चौतरफा कार्य हो रहा है। एक साधन क्षेत्र लेकर कई उप केन्द्रो द्वारा कुष्ठ रोग की रोकथाम जारी है। कुष्ठधाम पर स्त्री तथा पुरुषो के अलग-अलग विभाग है, जिनमें लगभग ४० मरीजो को रखने की व्यवस्था है। कुष्ठ रोगियो के रात्रि एकान्त निवास का प्रयोग भी किया गया है।

दूसरी विशेषता इस कुष्ठधाम की यह है कि इसकी अधिकाश आन्तरिक व्यवस्था कुष्ठ रोग के पीडित व्यक्ति ही सभाल रहे है। छोटे-छोटे हस्तोद्योग, आमोद-प्रमोद, प्रार्थना, खेती, बागवानी आदि प्रवृत्तिया रुचिपूर्वक चलती है।

कस्तूरबा समाधि

पूना मे आगाखा महल मे कस्तूरबा और महादेव भाई की समाधि की देखभाल ट्रस्ट द्वारा की जा रही है।

गाधी मेमोरियल सोसायटी ने इसके आसपास की आवश्यक भूमि प्राप्त की है और उपयुक्त स्मारक के निर्माण की योजना उन्होने बनाई है। जैसा कि शुरू मे बताया गया है ट्रस्ट को आरम्भ में १ करोड २५ लाख का दान प्राप्त हुआ था। पश्चात् १९५६ के अन्त तक ७६,३ ३,१४२ रु० की रकम व्याज, दान, सहायता, अनुदान आदि के रूप मे और प्राप्त हुई है। इस प्रकार अब तक ट्रस्ट को जनता तथा शासन से २,११,३३,१४२ रु० की रकम मिल चुकी है।

उसमें से ट्रस्ट १,१४,१९,१६९ रु० की रकम ग्रामसेवा, आरोग्य सेवा, सेविका प्रशिक्षण आदि भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियो पर खर्च कर चुका है। शेष उपलब्ध रकम मे से ९० लाख की रकम सरकारी ऋणपत्रो में व्याज पर जमा है जिस पर करीब ३ लाख सालाना व्याज की आमदनी होती है। करीब सात लाख रुपया बैको मे तथा प्रान्तो को पेशगी के रूप में वर्तमान गतिविधियो के हेतु काम में आ रहा है।

[पृष्ठ १४९ का शेषाश]

कोई २० साल पहले मेरे मन में एक खयाल आया था कि देश के लिए धन की तरह सेवको की भी माग जनता से करनी चाहिए। जिनके घर मे एक से अधिक लडका या लडकी हो उनसे एक लडका या लडकी देश के लिए दान में माग लेना उचित समझा। उन दिनो मैं मालवे के एक गाव—राजादे (अपसरा) में गया हुआ था, वहा पूज्य पन्नालालजी द्विवेदी (अब स्वर्गीय) से बातचीत चल पडी। उन्हे यह प्रस्ताव इतना अच्छा लगा कि अपने छोटे लडके केहरी (अब श्री कृष्णकान्त द्विवेदी) को उन्होने मेरे सिपुर्द कर दिया और बडा होने पर मेरे पास भेज दिया। वर्धा में उसकी शिक्षा-दीक्षा हुई—फिर मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी का काम मिला—इतने में नमक सत्याग्रह का आन्दोलन आया और जेल का सिलसिला शुरु हुआ। कृष्णकान्त ने काफी काम किया और जेल गये। इसके बाद स्वतत्र व्यवसाय में लगे—लेकिन 'सेवा' की लगन कम नही हुई है। 'सदन' को जब-जब सहायता की आवश्यकता होती है कृष्णकान्त उसके लिए कूद पडते है।

दुनिया मे दो तरह के आदमी देखे जाते है, एक तो वे जो काम थोडा करते है, फिर भी ज्यादा दिखाकर यश के भागी बन जाते है, बल्कि यश छीन ले जाते है, दूसरे वे जो ज्यादा काम और परिश्रम करके भी यश-प्राप्ति की विधा नही जानते। कृष्णकान्त इस दूसरी श्रेणी के है। घर फूंक तमाशा देखने वालो में उनकी गिनती मजे में की जा सकती है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

महिला शिक्षा सदन, हटूंडी (अजमेर)

विधान

१ नाम—इस सस्था का नाम "महिला शिक्षा सदन" होगा।

२ कार्यालय—"सदन" का कार्यालय हटूण्डी (अजमेर) में अथवा उस स्थान में रहेगा, जो कि "सदन" का सञ्चालक मण्डल समय-समय पर तय करे।

३ उद्देश्य—'सदन' का उद्देश्य भारतीय, विशेषकर राजस्थान की नारियो की, उन्नति करना है—खास करके गान्धीजी के आदर्शों के अनुसार सामान्यत नीचे लिखे कार्यो के द्वारा —

१ विद्यालय, छात्रावास, आश्रम, विद्यापीठ, उद्योगमन्दिर, विधवाश्रम आदि की स्थापना करना।

२ उपयोगी शिक्षा-पद्धति का विकास और प्रसार करना तथा उनसे सम्वन्धित परीक्षाएँ लेना।

३ पुस्तकालय, वाचनालय व मुद्रणालय की स्थापना करना और पत्र-पत्रिकाओ का सञ्चालन करना।

४ उपयुक्त पुस्तको एव साहित्य का प्रकाशन करना।

५ कर्ज अथवा चन्दे तथा दान के रूप में धन सग्रह करना।

६ 'सदन' के लिए आवश्यक या सुविधाजनक किसी चल या अचल सम्पत्ति को खरीदना, लीज पर, बदले में या अन्य किसी प्रकार से प्राप्त करना तथा किसी इमारत या अन्य वस्तुओ का निर्माण, मरम्मत अथवा रूपान्तर करना।

७ सामान्यत वे सब बातें करना जो 'सदन' की उद्देश्य-पूर्ति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायक एव उपयोगी हो।

४ सदस्यता—सदस्यो के पाँच वर्ग होगे —

(१) ट्रस्टी, (२) आजीवन सदस्य, (३) सरक्षक, (४) हितचिंतक, (५) साधारण सदस्य।

(१) ट्रस्टी—'सदन' के निम्नलिखित ट्रस्टी होगे और 'सदन' की सारी चल तथा अचल सम्पत्ति इनके नाम पर रहेगी। सञ्चालक-मण्डल के नियन्त्रण के अधीन रहते हुए, 'सदन' की अचल सम्पत्ति को बेचने या हस्तान्तरित करने का दस्तावेज लिखने का इन्हें अधिकार होगा।

१ श्री हरिभाऊ उपाध्याय

२ श्री कमलनयन बजाज

३ श्री वैजनाथ महोदय

४ श्री विश्वम्भरनाथ भार्गव

५ श्रीमती भागीरथीदेवी उपाध्याय

(२) आजीवन सदस्य—जो सज्जन सञ्चालक-मण्डल द्वारा समय-समय पर बनाये उपनियमों के अनुसार १० वर्ष तक अपना जीवन 'सदन' के काम के लिए अर्पण करने का वचन देंगे वे 'सदन' के आजीवन सदस्य होंगे।

(३) संरक्षक—जो सज्जन १०००) या इससे अधिक रुपये 'सदन' को दान करेंगे वे 'संरक्षक' होंगे।

(४) हितचिन्तक—वे सज्जन जो ५००) या इससे अधिक किन्तु १०००) से कम 'सदन' को प्रदान करेंगे, हितचिन्तक होंगे।

(५) साधारण सदस्य—(१) वे सज्जन जो 'सदन' को १०१) या इससे अधिक किन्तु ५००) से कम प्रदान करेंगे अथवा (२) जो सञ्चालक-मण्डल की राय में 'सदन' के काम में सहायक होते हों वे 'साधारण सदस्य' माने जायेंगे।

नोट—(१) सहायता यदि परिवार, किसी फर्म या संस्था की ओर से दी गई हो तो वे जिस व्यक्ति का नाम देंगे वह सदस्य बनाया जायगा।

(२) सञ्चालक-मण्डल की स्वीकृति के बिना कोई भी सदस्य नहीं बनाया जायगा।

५ रिक्ति-पूर्ति—मृत्यु, त्याग-पत्र आदि के कारण जो स्थान प्रचलित कार्यविधि में रिक्त होंगे उनकी पूर्ति सञ्चालक-मण्डल करेगा।

६ सदस्यता से मुक्ति—'सदन' को अधिकार होगा कि इसी उद्देश्य से बुलाई गई बैठक में उपस्थित सदस्यों के ३।४ बहुमत से, बिना कोई कारण बताये, किसी भी सदस्य को 'सदन' से अलग कर दे।

७ सञ्चालक-मण्डल का कार्य—'सदन' की सारी सम्पत्ति सञ्चालक-मण्डल के अधिकार में रहेगी और 'सदन' के कार्य तथा नवीन संस्थाओं का प्रबन्ध भी सञ्चालक-मण्डल ही करेगा।

८ सञ्चालक-मण्डल—सञ्चालक-मण्डल, पदाधिकारियों को मिलाकर, अधिक-से-अधिक १५ सदस्यों का होगा, जिनमें २ सदस्य ट्रस्टियों में से, १ संरक्षकों में से, १ आजीवन सदस्यों में से तथा शेष साधारण सदस्यों में से होंगे।

९ पदाधिकारी—'सदन' के निम्नलिखित पदाधिकारी होंगे —

१ अध्यक्ष

१ या २ उपाध्यक्ष, यदि सञ्चालक-मण्डल आवश्यक समझे।

१ मन्त्री

१ या २ संयुक्त मन्त्री, यदि सञ्चालक-मण्डल आवश्यक समझे।

१० चुनाव—पदाधिकारियों और सञ्चालक-मण्डल का चुनाव 'सदन' के सदस्यों की सभा में होगा और वे ३ वर्ष तक पदारूढ़ रहेंगे। लेकिन यदि चुनाव समय पर न हुआ तो वे ही नये चुनाव तक काम करते रहेंगे।

११ कार्य-प्रदान—सञ्चालक-मण्डल को अधिकार होगा कि वह अपना कोई भी कार्य मण्डल के सदस्यों की अथवा सञ्चालक-मण्डल द्वारा योग्य समझे गये अन्य व्यक्तियों की उपसमितियों को अथवा पदाधिकारियों और सदस्यों में से किसी को सौंप दे।

ऐसी कोई भी समिति, पदाधिकारी या सदस्य सौंपे गये कार्य को करते समय सञ्चालक-मण्डल द्वारा समय-समय पर दी गई हिदायतों का पालन करेंगे।

१२ उपनियम—'सदन' के कार्य-सञ्चालन के लिए सञ्चालक-मण्डल को उपनियम बनाने का अधिकार होगा और वे उपनियम, जब तक कि इन नियमों के विरुद्ध न हों, इन नियमों के अनुसार ही लागू समझे जायेंगे।

१३ वार्षिक बैठक—प्रतिवर्ष 'सदन' की एक वार्षिक बैठक होगी जो साधारण वार्षिक बैठक कही जायगी। इसमें निम्नलिखित कार्य होंगे —

१ 'सदन' के पिछले वर्ष के कार्य की रिपोर्ट प्राप्त करना और उस पर विचार करना।

२ पिछले वर्ष के जाँचे हुए हिसाव तथा तलपट पर विचार करके उसे मञ्जूर करना।

३ वजट मञ्जूर करना और

४ यदि और जव इन नियमो के अनुसार आवश्यक हो, सञ्चालक-मण्डल के पदाधिकारियो तथा अन्य सदस्यो का चुनाव करना।

१४ विशेष बैठक—साधारण वार्षिक बैठक के अलावा जव कभी अध्यक्ष उचित समझे विशेष बैठक भी वुलाई जा सकती है।

१५ सञ्चालक-मण्डल की बैठक—सञ्चालक-मण्डल की बैठके जव कभी आवश्यक होगी, वुलाई जा सकती हैं।

१६ बैठक का समय व स्थान—यदि सञ्चालक-मण्डल ने अन्य निर्णय न किया हो तो सञ्चालक-मण्डल और 'सदन' की साधारण वार्षिक बैठक का समय और स्थान अध्यक्ष की सलाह से मन्त्री निश्चित करेगा।

१७ बैठक की नोटिस—१ 'सदन' की बैठक का नोटिस कार्यालय के द्वारा बैठक की निश्चित तिथि के कम-से-कम ७ दिन पहले निकाला जायगा।

२ लेकिन अगत्य के अवसरो पर अध्यक्ष को ५ दिन के नोटिस पर ही बैठक वुलाने का अधिकार होगा।

३ सञ्चालक-मण्डल की बैठक के लिए ५ दिन का नोटिस दिया जायगा।

४ अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके सारे कार्य उपाध्यक्ष करेगा।

५ यदि ये दोनो अनुपस्थित हो तो उपस्थित सदस्यो में से कोई उस बैठक के लिए सभापति चुन लिया जायगा।

१८ सदस्यो द्वारा बैठक वुलाना—'सदन' की या सञ्चालक-मण्डल की बैठको के लिए जो सदस्य माँग करेंगे उनकी सख्या उस बैठक के लिए नीचे लिखे अनुसार निश्चित कोरम से कम न होगी। वे सदस्य अपनी सही से लिखित माँग पेश करेंगे, जिसमें वे बैठक वुलाने का उद्देश्य लिखेंगे। ऐसी माँग-प्राप्ति की तारीख से १ महीने के अन्दर यदि मन्त्री बैठक न वुला पावे तो प्रार्थी सदस्यो को अधिकार होगा कि वे मन्त्री द्वारा अर्जी-प्राप्ति की तारीख से २ मास के अन्दर 'सदन' के प्रधान कार्यालय में बैठक वुला लें।

१९ बैठक का कोरम—ऐसी बैठको के अतिरिक्त जो बैठक का कोरम पूरा न होने के कारण स्थगित बैठक के वाद वुलाई गई हो, 'सदन' की सव बैठको का कोरम उपस्थित ७ सदस्यो का व सञ्चालक-मण्डल की बैठको का कोरम उपस्थित ५ सदस्यो का होगा।

२० ठहराव—सारे ठहराव वहुमत से होंगे। अगर मत सम-समान हो तो बैठक के सभापति को निर्णायक मत देने का अधिकार होगा।

२१ रुपये-पैसे का प्रवन्ध—'सदन' का रुपया-पैसा किसी वैंक में रक्खा जायगा या अन्य तरह से लगाया जायगा, जैसा सञ्चालक मण्डल समय-समय पर तय करे। फिलहाल मन्त्री या सञ्चालक-मण्डल द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त कोई व्यक्ति सभा की तरफ से वैंक में खाता खोलेगा।

२२ कानूनी कार्यवाही—जब तक कि सञ्चालक-मण्डल किसी अन्य व्यक्ति को किसी विशेष मामले के लिए अधिकार न दे, 'सदन' के मन्त्री को अधिकार होगा कि वह 'सदन' की ओर से मन्त्री की हैसियत से अपने नाम से कानूनी कार्यवाही करे।

२३ सद्भावना से किये कार्यों के लिए क्षति-मुक्ति—यदि सञ्चालक-मण्डल, किसी पदाधिकारी या 'सदन' के किसी सदस्य द्वारा सदिच्छा से अपना कर्तव्यपालन करते हुए कोई नुकसान हो जाय तो वे इस क्षति की जिम्मेदारी से मुक्त समझे जायँगे।

२४ विधान में परिवर्तन—इसी उद्देश्य से खास तौर पर बुलाई गई सदस्यों की बैठक में उपस्थित सदस्यों के २।३ बहुमत से विधान में परिवर्तन किया जा सकेगा।

परिशिष्ट २

'सदन' का संचालक मण्डल

१ श्रीमती रामेश्वरी नेहरू (अध्यक्ष) दिल्ली
२ श्रीमुकुटविहारीलालजी भार्गव उपाध्यक्ष अजमेर
३ " सेठ भागचन्द सोनी (उपाध्यक्ष) अजमेर
४ " सीतारामजी सेक्सरिया कलकत्ता
५ " भागीरथजी कानोडिया कलकत्ता
६ " जगन्नाथजी शर्मा व्यावर
७ " श्रीनिवासजी बगड़का बम्बई
८ " जयनारायणजी व्यास जोधपुर
९ " जीतमलजी लूणिया अजमेर
१० " मिश्रीलालजी गंगवाल इन्दौर
११ " कन्हैयालालजी खादीवाला इन्दौर
१२ " हरिभाऊजी उपाध्याय हटूण्डी
१३ " कमलनयनजी बजाज वर्धा
१४ " कृष्णगोपालजी गर्ग अजमेर
१५ " महेशदत्तजी भार्गव व्यावर
१६ श्री० ठा० मदनसिंहजी अजमेर
१७ " बालकृष्णजी गर्ग अजमेर
१८ " विश्वम्भरनाथजी भार्गव अजमेर
१९ " बैजनाथजी महोदय इन्दौर
२० श्रीमती भागीरथीदेवीजी उपाध्याय (मन्त्राणी) हटूण्डी
२१ श्री० यशपाल जैन (सयुक्त मन्त्री) दिल्ली
२२ श्रीमती शकुन्तला पाठक (सयुक्त मन्त्री) हटूण्डी

ट्रस्टी-मण्डल

१ श्री हरिभाऊ उपाध्याय हटूण्डी (अजमेर)
२ श्री कमलनयन बजाज वर्धा
३ श्री बैजनाथ महोदय इन्दौर
४ श्री विश्वम्भरनाथ भार्गव अजमेर
५ श्रीमती भागीरथीदेवी उपाध्याय हटूण्डी (अजमेर)

परिशिष्ट ३

सदन के सहायक तथा दानदाता

श्रीमन्त एवं श्रीमती महारानी सा० ग्वालियर
ग्वालियर शासन
श्रीमन्त महाराजा, इन्दौर
श्रीमती तारादेवी राधाकृष्णजी मोहता, बीकानेर

इन्दौर शासन
श्री राजा पन्नालालजी पित्ती, हैदराबाद दक्षिण
कृष्णार्पण चैरिटी, दिल्ली—श्री घनश्यामदासजी बिरला
श्रीसेठ वकटलालजी वद्रुका, हैदराबाद दक्षिण
श्रीसेठ नथमलजी हेमराजजी चोरडिया ट्रस्ट, नीमच
श्रीमती गौरादेवी भागीरथजी मोहता, बीकानेर
श्रीमती गौरादेवी गोवर्धनदासजी बीनाणी, कलकत्ता
श्रीमती गीतादेवी मानकचन्दजी बागडी, कलकत्ता
श्रीमती जमनादेवी दाऊदयालजी कोठारी, बम्बई
श्रीसेठ भागचन्दजी सोनी, अजमेर
महाराजा श्री उम्मेद मिल्स लि०, पाली (मारवाड)
श्रीसेठ कन्हैयालालजी भण्डारी, इन्दौर
श्रीसेठ प्यारेलाल सेकसरिया, इन्दौर
श्रीमन्त महाराणा साहब, बडवानी
श्रीमन्त महाराजा साहब, रतलाम
जोधपुर शासन
जीवाजी काटन मिल्स, ग्वालियर
गान्धी-सेवा-सघ, वर्धा
श्रीमती मानकुमारी पन्नालालजी पित्ती, हैदराबाद दक्षिण
श्रीमती सुमित्रादेवी कृष्णलालजी बागडी, बम्बई
श्रीमती रतनदेवी खुशालचन्दजी डागा, बीकानेर
श्रीमती चन्दादेवी नारायणदासजी डागा, हैदराबाद दक्षिण
श्रीमती यशोदादेवी राधाकृष्णजी लाहोटी, बम्बई
श्रीमती राजकुमारीदेवी नारायणलालजी पित्ती, बम्बई
श्रीमती हरप्यारीदेवी वल्लभदासजी अग्रवाल, कलकत्ता
श्रीमती मूलादेवी शिवकृष्णजी भट्टड, कलकत्ता
श्रीमती लक्ष्मीदेवी शिवकृष्णजी झँवर, कलकत्ता
श्रीमती सुनीतिदेवी मगतूरामजी तापडिया, कलकत्ता
श्रीमती वरनीदेवी गोविन्ददासजी भट्टड, कलकत्ता
श्रीमती उमगकुमारीदेवी बिरधीचन्दजी चौधरी, हैदराबाद दक्षिण
श्री रामेश्वरजी सोठाणी, कलकत्ता
श्रीमती कस्तूरीदेवी मदनलालजी सोठाणी, दिल्ली
श्री शिवचन्दजी सोनी, कलकत्ता
श्री गोरधनदासजी कावरा, जोधपुर
श्रीमती अणचादेवी बालकृष्णजी मोहता, कलकत्ता
श्रीमती शान्तादेवी लक्ष्मीनारायण राठी, सोलापुर (महाराष्ट्र)
श्रीमती शान्तिदेवी दामोदरदासजी नागोरी, ग्वालियर
श्रीमती रतनदेवी गगादासजी बियाणी, पुरुलिया
श्रीमती बनारसीदेवी मोतीलालजी लाठ, कलकत्ता
श्री केदारनाथजी खेतान, पडरौना (यू० पी०)
श्री दीपचन्दजी चाण्डक, कलकत्ता
श्रीमती बृजकिशोरीदेवी गणेशीदासजी मीमाणी, कलकत्ता
श्रीमती भूलीदेवी गगादासजी वाहिणी, कलकत्ता
श्री दयारामजी सूरजमलजी, सिकन्दराबाद (हैदराबाद दक्षिण)
श्री कमलनयनजी बजाज, वर्धा
श्री गोपीकृष्णजी मालाणी, हैदराबाद (दक्षिण)
श्री सेठ लक्ष्मीचन्दजी घल्लानी, सिकन्दराबाद (हैदराबाद दक्षिण)
श्रीमती कुसुमबाई मानकचन्दजी बेताला, मद्रास
श्रीमती लक्ष्मीबाई रघुनाथसिंहजी मेहता, मद्रास
श्रीसेठ रघुनाथमलजी सिन्घवी, हैदराबाद दक्षिण
श्री खुशालचन्दजी डागा, बम्बई
श्री गगादासजी बियानी, पुरुलिया (गोशाला के लिए)
श्री ओंकारमलजी खेतान, पडरौना (यू०पी०)
श्री सेठ नारायणदासजी डागा, हैदराबाद दक्षिण
श्री लूणकरनजी चाण्डक, सोलापुर
श्रीमती तुलसीबाई चाण्डक, मद्रास
श्रीमती रामकुँवरदेवी मोतीलालजी, कूफडा, मद्रास
श्री सोहनलालजी दुगड़, बम्बई
श्रीमती चन्दनदेवी विट्ठनलालजी अग्रवाल, ग्वालियर
हिन्दुस्तान कमर्शियल कारपोरेशन, ग्वालियर
बिरला मिल्स, दिल्ली
श्री निहालकरणजी जमीदार, इन्दौर
श्री जोहरीलालजी मित्तल, इन्दौर
श्री राधाकृष्णजी नन्दलालजी मोर, कलकत्ता
श्री इन्द्रचन्दजी केजडीवाल, कलकत्ता

श्री लाडमलजी प्रकाशमलजी भण्डारी, मद्रास
श्री महादेवलालजी डालमिया, मद्रास
श्री शकरलालजी जाजोदिया, मद्रास
श्रीमती नर्मदादेवी मदनलालजी शर्मा, मद्रास
श्रीमती सुगनीवाई कुन्दनमलजी दमाणी, मद्रास
श्री सूरजरतनजी दयाणी, मद्रास
श्री शिवचन्दजी रामजी तेजपालजी, इन्दौर
श्री मानिकचन्दजी खजान्ची, इन्दौर
श्री सज्जन मिल्स, रतलाम
श्रीमती मोहिनीवाई, इन्दौर (गोशाला के लिए)
श्री कुँवर सा० रघुवीरसिंहजी वान्दनवाडा
श्रीमती रामीवाई, लश्कर
श्री चुन्नीलालजी ओंकारमलजी, इन्दौर
श्री सेठ जगन्नाथजी, इन्दौर
श्रीमती सौ० लक्ष्मीवाई सा० आग्रे, लश्कर
श्रीमन्त महाराज देवास, जूनियर
श्रीमती सावित्रीवाई होल्कर, इन्दौर
श्री लक्ष्मीनारायणजी जायसवाल, रतलाम
ग्लास डीलर्स एसोसियेशन, रतलाम
दिग्विजय इण्डस्ट्री, वागरोद (रतलाम)
श्रीमती सुमित्रादेवी वागडी, वम्बई (गोशाला के लिए)
श्री कालूरामजी गोविन्दरामजी, इन्दौर
श्री चम्पालालजी वागडी, कलकत्ता
श्रीमती नर्मदादेवी हिम्मतसिंहका, कलकत्ता
श्री लक्ष्मणदासजी गुप्ता, हैदरावाद दक्षिण
श्री ढढ्ढा एण्ड कम्पनी, मद्रास
श्रीमती नेनीकुँवर मोहनलालजी चुराडिया, मद्रास
श्री अमोलकचन्दजी गिलडा (चैरिटी), मद्रास
श्रीमती रामसुखीदेवी ताराचन्दजी गेलका, मद्रास
श्री फतेहकुँवर वहादुरमलजी समघडिया, मद्रास
श्रीमती कमलादेवी मोहनसिंहजी, इन्दौर
श्रीमती सुवुद्धिदेवी शर्मा, अजमेर
श्री रूपचन्द्रजी पारसमलजी, मद्रास
श्री पी० एम० राठौड, रतलाम
श्री वालकृष्णजी मुच्छाल, इन्दौर

श्री विश्वनाथजी मूदडा, चायवासी
श्री गणेशदासजी माहेश्वरी, कलकत्ता
श्री वद्रीनारायणजी राठी, हैदरावाद
श्री दामोदरदासजी डागा, कलकत्ता
श्री रामकिशनजी वागडी, कलकत्ता
श्री रमनलालजी गोपीकृष्णजी राठी, कलकत्ता
श्रीमती चान्ददेवी घनश्यामदासजी कोठारी, माधोपुर
श्रीमती कमलादेवी सुरेका, पुरुलिया
श्रीमती रतनदेवी ग्वालदास माहेश्वरी, पुरुलिया
श्री रामकुमारजी भुवालका, कलकत्ता
श्री आशाराम लालचन्द एण्ड करनानी कम्पनी, कलकत्ता
श्री रमनलालजी विनानी, कलकत्ता
श्री रामगोपालजी मोहता, वीकानेर
श्री रावतमलजी हरकचन्दजी वोथरा, वीकानेर
श्री श्रीकिशनजी जेठमलजी, वीकानेर
श्री पूसारायजी मूदडा, मद्रास
श्री हनुमतसहाय एण्ड कम्पनी, मद्रास
श्री करनसिंहजी मेहता, मद्रास
श्री शिवसहायजी चोरडिया, मद्रास
श्री हनुमानवक्सजी शारदा, हिंगनघाट, वर्धा
श्री लाला उल्फतरायजी, दिल्ली
श्री शिवचन्दजी जतनमलजी
श्री देवकुमारसिंहजी, इन्दौर
श्रीमती चन्दरवाई थोकासाजी, खण्डवा
श्री हीराजी जयराजजी, रतलाम
काश्यप एण्ड कम्पनी, रतलाम
श्री दौलतरामजी वूलचन्दजी, रतलाम
श्री विरधीचन्दजी वर्धमानजी, रतलाम
श्री चम्पालाल सागरमलजी कटारिया, रतलाम
मेसर्स वेंहरामजी डी० डूगाजी कम्पनी, रतलाम
श्री हीरालालजी नान्देचा, खाचरोद (रतलाम)
श्रीमती सरस्वतीदेवी मोहता, वीकानेर
श्री शिवदानमलजी, अजमेर
श्री वैद्य मोहनलालजी श्रीवल्लभजी, पुष्कर

श्री मधुकरजी श्रीधर सर्राफ, बम्बई
श्रीमती जानकीदेवी बजाज, वर्धा
श्री उत्तमचन्दजी छाजेड़, बीकानेर
श्री श्रीनिवासजी झँवर, हैदराबाद दक्षिण
श्री भगवानजी मुकन्दजी, (भगतजी), रतलाम
श्री बिशनस्वरूपजी, दिल्ली
श्री गुलाबचन्दजी जैन, अजमेर
श्री गौरधनलालजी झाजोदिया, इन्दौर
श्री छगनलालजी मानिकलालजी मित्तल, इन्दौर
श्री एस० पी० पाटणी, इन्दौर
श्री मोतीलालजी चान्दूलालजी, बडवानी
श्री शिवनाथजी गणेशीलालजी, रतलाम
श्री मागीलालजी चान्दमलजी, रतलाम
श्री सीतारामजी गोदाजी, रतलाम
श्री डा० देवीसिंहजी, रतलाम
श्री द्वारिकादासजी धर्मसिंहजी, रतलाम
श्री सौभाग्यमलजी रतनलालजी, रतलाम
श्री डा० मुकर्जी, इन्दौर
श्री डा० एस० एस० पण्डित, इन्दौर
श्री डा० चतुर्वेदी, इन्दौर
श्री मानकचन्दजी बेताल, मद्रास
श्री रघुनाथसिंहजी मेहता, मद्रास
श्री गणेशदासजी चाण्डक, मद्रास
श्री मोतीलालजी मूंदड़ा, मद्रास
श्री मदनलालजी सोढानी, दिल्ली
श्री लक्ष्मीनारायणजी शर्मा, शोलापुर
श्री केदारनाथजी खेतान, पडरौना
श्री ओंकारमलजी, खेतान
श्री उम्मेद मिल्स, पाली
श्री रावसाहब नारायणसिंहजी, मसूदा
श्री दीवानसाहब इनायतहुसेन, दर्गाशरीफ, अजमेर
श्री मण्डेलियाजी, ग्वालियर
श्री दामोदरदासजी नागोरी, ग्वालियर
श्री कन्हैयालालजी भण्डारी, इन्दौर
श्री सेठ भागचन्दजी सोनी, अजमेर

श्री मुकुन्ददासजी राठी, ब्यावर
श्री रावराजा साहब, सीकर
श्री लालचन्दजी, विनोद मिल्स, उज्जैन
श्री राजकुमारजी, राजकुमार मिल्स, इन्दौर
श्री प्यारेलालजी सेक्सरिया, इन्दौर
श्री चन्दनसिंहजी भडतिया, इन्दौर
श्री पन्नालालजी पित्ती, बम्बई
श्री गोविन्दलालजी बागड, बम्बई
श्री जयदयालजी डालमिया, दिल्ली
श्री रामनाथजी पोद्दार, बम्बई
श्री परमार्थ फण्ड, ग्वालियर
श्री सेक्सरिया चैरिटी ट्रस्ट, इन्दौर
श्री चौरडिया ट्रस्ट, नीमच
श्री नारायणलालजी पित्ती, बम्बई
श्रीमती सावित्रीदेवी बजाज, बम्बई
श्री गोविन्दलालजी बसीलालजी पित्ती
श्री खुशालचन्दजी डागा, बम्बई
श्री मदनमोहनजी रुइया, बम्बई
श्री सरदार रणजीतसिंहजी, दिल्ली
श्री आनन्दराजजी, सुराणा
श्री बाबा विचित्तरसिंहजी, दिल्ली
श्री मूलचन्दजी बगडिया
श्री राघवेन्द्रसिंहजी, नई दिल्ली
श्री रायबहादुर बिसेसरलाल मोतीलालजी, कलकत्ता
श्री रघुमल चैरिटी ट्रस्ट, कलकत्ता
श्री रामकुमारजी भुवालका, कलकत्ता
श्री श्रीचन्दजी तेरापन्थी महासभा, कलकत्ता
श्री क्लाथ मार्केट असोसियेशन, इन्दौर
श्री सोहनलालजी दूगड, कलकत्ता
श्री बाजोरिया एण्ड कम्पनी, कलकत्ता
श्री दौलतरामजी रावतमल, कलकत्ता
श्री रामदेवजी चोखानी, कलकत्ता
श्री ब्रजमोहनजी बिडला, कलकत्ता
श्री गजाधर सोमानी, बम्बई
श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, कलकत्ता

श्री रामेश्वरजी टाटिया, नई दिल्ली
श्री सीतारामजी सेक्सरिया, कलकत्ता
श्री आनन्दीलालजी पोद्दार, कलकत्ता
श्री आनन्दीलालजी उपाध्याय, जावरा
श्री जावरा शुगर मिल्स, जावरा
श्री कैप्टेन हण्डा, इन्दौर
श्री भागीरथजी मोहता, बीकानेर
श्री राधाकृष्णजी मोहता, कलकत्ता
श्री दयारामजी सूरजमल, सिकन्दराबाद
श्री गोपीकिशनजी मालानी, सिकन्दराबाद
श्री लक्ष्मीचन्दजी बल्लानी, सिकन्दराबाद
श्री रघुनाथजी सिंघवी, सिकन्दराबाद

परिशिष्ट ४

बड़ों के आशीर्वाद

मुझे यहां का सब काम देखकर बहुत खुशी हुई है। आज देश में इस प्रकार की संस्थाओं की बहुत जरूरत है।

—राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद

महिलाओं पर गान्धीजी ने अहिंसा के विकास की जिम्मेदारी डाली है। यह एक महान् कार्य है। महिलाओं को उसके लिए तैयार होना है। 'महिला' शब्द का अर्थ ही संस्कृत में महान् कार्य करने वाली होना है।

—आचार्य विनोबा भावे

भागीरथीदेवी के बारे में जानकर खुशी हुई। आशा है कि वे अपना काम इसी तरह जारी रखेंगी और उसमें उनको सफलता मिलेगी।

—स्व॰ सरदार वल्लभ भाई पटेल

मेरा विश्वास है कि आपकी यह संस्था अजमेर की नारियों के लिए सामाजिक सेवा, शिक्षा तथा संस्कृति का मुख्य केन्द्र बनेगी।

—स्व॰ सरोजिनी नायडू

संस्था सतत् प्रगति करती रहे यही मेरी हार्दिक इच्छा और आशीर्वाद है।

—आचार्य धोंडो केशव कर्वे

गान्धीजी ने मुझे कहा था कि जब अजमेर जाओ तो हटूण्डी जरूर जाना। इस राजस्थान जैसे पिछड़े हुए प्रान्त में राष्ट्रीय शिक्षा की बहुत जरूरत है। महिला शिक्षा सदन राजस्थान के लिए गौरव की चीज है। मेरी इच्छा है कि इस प्रकार की संस्थाएँ जगह-जगह हों।

हमें अपने देश को उन्नत बनाने के लिए गान्धीजी के रास्ते पर ही चलना होगा। महिला शिक्षा सदन को उनकी बनाई हुई चीज ही समझना चाहिए। इस प्रकार के काम जवाहरलालजी को भी प्रिय हैं।

जीवन के लिए शारीरिक सफाई ही काफी नहीं है, मानसिक और आत्मिक सफाई की भी जरूरत है। मुझे खुशी है कि हटूण्डी ग्राम की इस संस्था में इसी प्रकार की शिक्षा दी जा रही है। यहां बुनियादी तालीम की ओर झुकाव देखकर मुझे बहुत खुशी हुई है। वे लड़कियां भाग्यशालिनी हैं जो यहां पढ़ती हैं।

सच्ची सुन्दरता चरित्र में है। इस दृष्टि से भागीरथीदेवी यहाँ जो काम कर रही हैं वह बहुत अच्छा है। मेरे आशीर्वाद तो इस सस्था के साथ है ही, पर राजस्थान के हर भाई बहन को इस कार्य में आर्थिक सहायता और सहयोग देना चाहिए।

—राजकुमारी अमृतकौर

उस दिन जब मै स्टेशन से गुजरा तो श्रीमती भागीरथीदेवी तथा आश्रम के कार्यकर्ता मुझसे मिले थे, और जब मैंने उनसे असमर्थता जाहिर की थी तो मुझे भी बडा दु ख हुआ था। मैंने मार्ग में "सदन" की परिचय पत्रिकाएँ पढी थी। लेकिन उन्हे पढ कर मुझे "सदन" की वह कल्पना नही हुई थी जो यहाँ प्रत्यक्ष देखकर हुई। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य और कलात्मक ढग देखकर बडी प्रसन्नता हो रही है। यद्यपि यहाँ बडी-बडी इमारतें नही है, पेडो के नीचे ही वर्ग लगते हैं। लेकिन जिस भावना से यह कार्य यहाँ हो रहा है उससे मै प्रभावित हुआ हूँ। मैंने परिचय पत्रिका में पढा था कि यहाँ की शिक्षा में ज्ञान, कर्म और कला का समन्वय किया गया है लेकिन उसका जो व्यावहारिक रूप मैंने यहाँ देखा उससे मुझे बडी प्रेरणा मिली।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली देश के लिए उपयुक्त नही है। उसमें बुनियादी परिवर्तन करना है और शिक्षा का दीपक घर-घर जलाना है। यहाँ की शिक्षा में नये पुराने का सम्मिश्रण और पारिवारिक वातावरण देखकर मैं यह कह सकता हूँ कि जो बालिकाएँ यहाँ आई है, वे भाग्यशाली हैं। आगे चलकर उन्हे जीवन में यहाँ की शिक्षा का बडा लाभ मिलेगा। मैं यह शुभकामना करता हूँ कि यह काम फूले-फले।

—श्री जयप्रकाशनारायण

खुशी की बात है कि सदन धीरे-धीरे प्रगति करता जा रहा है। हरिभाऊजी पर इसका बोझ बढता जा रहा है। अत आप सबको उनका बोझ बटाना चाहिए और इस सस्था को सहानुभूति से देखना चाहिए। यद्यपि यहाँ सरकारी शिक्षा प्रारम्भ हो गई है लेकिन इसके पहिले स्वरूप को कायम रखना चाहिए। इसके लिए इसके सञ्चालक जागृत है यह मै जानता हूँ। सरकारी शिक्षा में प्रमाणपत्रो की धूम रहती है। उससे नौकरियाँ अवश्य मिल जाती हैं लेकिन जीवन का प्रश्न हल नही होता। जीवन का प्रश्न बुनियादी तालीम ही हल कर सकती है। वह हाथ का काम सिखाती है और वह उसकी आदत डालती है। खुशी की बात है कि यहाँ के सञ्चालक इस बारे में सतर्क है। उन्होंने हाथ के काम को इस सस्था में स्थान दिया है।

—स्व० श्रीकृष्णदासजी जाजू

बुनियादी तालीम और यूनिवर्सिटी तालीम के बीच सघर्ष पैदा होता है, यह खेद की बात है। उसका कारण यूनिवर्सिटी में प्रगतिशीलता नही, फेरफार करने का उत्साह नही, वे एक बोझ होकर बैठी हुई है ऐसा मुझे लगता है। लेकिन जो है, सो है, उसमें से रास्ता निकालना है। श्री विनोबाजी योग्य सलाह देंगे ही। वार्षिकोत्सव, स्त्री शिक्षा-परिषद्, अच्छी तरह सम्पन्न होगी, ऐसी उम्मीद करता हूँ।

—स्व० किशोरलाल भाई मश्रूवाला, वर्धा

शिक्षा का प्रचार तेजी से हो रहा है, लेकिन मुझे इससे सन्तोप नही है। आज की पढी-लिखी स्त्रियाँ अच्छी नागरिक नही है, उनमें इन्सानियत का भी अभाव है। मैं इन्सानियत की उपासक हूँ और मेरा उसके प्रति प्रेम ही मुझे यहाँ खीच लाया है। यद्यपि यह सस्था अभी छोटी ही है और यहाँ केवल १२५ लडकियाँ ही है लेकिन मेरा प्रेम

इसके लिए इसी कारण है कि यह सही रास्ते पर चल रही है। शिक्षा विभाग से मान्यता प्राप्त करके भी इसने अपने आदर्शों को नही छोडा है। यह बात मैंने यहां अपनी आंखों से देखी है। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि "मदन" में गान्धीजी के सब रचनात्मक आन्दोलनों का समावेश है। मेरी शुभकामनाएँ इसके साथ हैं। मैं चाहती हूँ कि देश के लोग इस सस्था को निकट से देखें और समझें।

—श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

शिक्षा का उद्देश्य है—जीवन साफल्य तथा ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों का सम्पूर्ण विकास। अत स्त्रियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे घर के काम-काज और मातृत्व के साथ ही पुरुषों के प्रत्येक कार्य में उसकी सच्ची सगिनी बन सके। मुझे खुशी है कि महिला शिक्षा सदन में इसी प्रकार की शिक्षा दी जा रही है। कोई बात नही कि यह कार्य एक छोटे से रूप में शुरु हुआ है। महात्मा गान्धी जब पहले-पहल अहमदाबाद आये तब उन्होंने अपना काम इतने ही छोटे पैमाने पर शुरु किया था लेकिन कौन जानता था कि उस छोटे मे बीज में विशाल वट वृक्ष छिपा हुआ था। महिला शिक्षा सदन का भविष्य भी उज्ज्वल है।

—स्व० बालासाहब खेर

यह सस्था सर्वांगीण उन्नति कर रही है। इस काम का सब श्रेय श्रीमती भागीरथीदेवी को है। इस सस्था की इस तरह दिन-ब-दिन उन्नति होती रहे यही मेरी हार्दिक कामना है।

—श्रीमन्त महाराजा जीवाजीराव शिन्दे, ग्वालियर

मैं इस 'सदन' को क्या आशीर्वाद दू ? इस आश्रम को तो महात्माजी का व उनका (स्व० जमनालालजी बजाज) आशीर्वाद प्राप्त था। मेरे तो आशीर्वाद है ही। यहां के काम से मुझे सन्तोष हुआ है। आप अपनी बालिकाओं को यहाँ पढने भेजें और हर तरह से इसकी मदद करें।

—श्रीमती जानकीदेवी बजाज, वर्धा

मेरा नाम यहां के सञ्चालक-मण्डल में है लेकिन खेद है कि मैं दूसरे कामो में लगी रहने के कारण यहाँ जल्दी-जल्दी नही आ पाती, लेकिन जब कभी मैं यहाँ आती हूँ और यहाँ का सीधा-सादा वातावरण देखती हूँ तो मुझे बडी खुशी होती है। इस सस्था के प्रति मेरा आदर खासकर इसलिए है कि यह ठीक दिशा मे प्रगति कर रही है।

स्त्रियों को खासकर बच्चों का पालन और घर का बहुत-सा काम करना पडता है। अत उनके जीवन को बनाने के लिए बुनियादी तालीम से बढकर कोई दूसरा तरीका नही है। शिक्षा की इस ठीक दिशा में इस सस्था को काम करते देखकर मुझे खुशी हो रही है। बच्चियों को अपने जीवन में वही सादगी और स्वार्थ त्याग लाना चाहिए, जो भागीरथीदेवी और हरिभाऊजी के जीवन में है।

—श्रीमती सुचेता कृपलानी

यहाँ क्या-क्या प्रवृत्तियां चल रही है और किस प्रकार का काम हो रहा है इसकी पहले मुझे कोई कल्पना नही थी। लेकिन यहाँ आने के बाद मुझे ऐसा लगा मानो मैं किसी हरे-भरे कुञ्ज में आ गई हूँ। यहाँ गेहूँ के खेत है, गोशाला है, दवाखाना है, बच्चियाँ खाना बनाती है, खेती होती है। लेकिन इससे भी ज्यादा खुशी की बात है कि यहाँ सगीत, नृत्य, अभिनय आदि की ओर भी काफी ध्यान दिया जा रहा है। गान्धीजी के आदर्शो पर चलने वाली

सस्था में कला पर उतना ध्यान नही दिया जाता है। यहाँ गान्धीजी के आदर्शों और कार्यक्रम के साथ कला का मेल करने के लिए मैं सदन के सञ्चालको को धन्यवाद दिये बिना नही रह सकती।

—श्रीमती लीलावती मुशी

सदन का कार्य अच्छी तरह चलता रहे यही मेरी शुभकामना है।

—स्व० ग० वा० मावलकर

अक्सर एक तरफ सारे देश को शिक्षित बनाने के बडे काम को देख कर और दूसरी तरफ ८५% निरक्षर व्यक्तियो को देखकर मुझे बेचैनी होती रहती है, लेकिन जब मैं 'सदन' जैसी सस्थाओ को देखता हूँ तो मुझमें आशा और उत्साह का सञ्चार होता है। यह काम कितना ही कठिन हो, कितनी ही आर्थिक कठिनाइयाँ हो लेकिन यह काम तो हमें करना ही है। यहाँ ७५ बालिकाएँ हैं, राजस्थान की दृष्टि से देखें तो ७५० बालिकाओ का होना भी कम ही है, फिर भी हमें सख्या की ओर ध्यान न देकर गुण की ओर विशेष ध्यान देना है। सच्चे अर्थ में शिक्षित होकर यदि इतनी ही बालिकाएँ निकलें तो एक बडा काम हो सकता है, क्योकि लडको की शिक्षा से भी अधिक महत्त्व लडकियो की शिक्षा का है। मनोविज्ञान के आचार्यो का कहना है कि चार-पाँच वर्ष की अवस्था तक बालको पर जो सस्कार पडते हैं वे जीवन भर के लिए दृढ हो जाते है। यदि यह बात सत्य है तो फिर स्त्री-शिक्षा का बहुत अधिक महत्त्व है। छोटा बच्चा तो माँ के पास रहता है। उसके ही सस्कार उसके ऊपर असर करते हैं। इसलिए देश का भविष्य बनाने के लिए हमें स्त्री शिक्षा पर बहुत जोर देना चाहिए। यदि हम लडके की शिक्षा पर २) खर्च करे तो लडकी की शिक्षा पर हमें ६) खर्च करना चाहिए।

—डॉ० ताराचन्द

अपना देश आजाद हुआ है। लेकिन सच्ची आजादी का फायदा उठाने के लिए हमको हरएक क्षेत्र में काफी काम करना है और जन-समुदाय को प्रजातन्त्र के लिए तैयार करना है। भावी प्रजा की उन्नति का आधार सुशिक्षित माताओ पर है। मैं आशा रखता हूँ कि यह सस्था स्त्री-शिक्षा के महत्त्वपूर्ण कार्य में हिस्सा लेगी।

—मोरारजी देसाई

यह सुनकर खुशी हुई कि श्री भागीरथीदेवी की मेहनत से स्त्रीशिक्षा का काम हटूण्डी में अच्छा चल रहा है। मैं उनको मुबारकबाद देता हूँ। काश ! मेरे लिए मुमकिन होता कि मैं इस मौके पर हटूण्डी पहुँच सकता। मैं कहा करता हूँ कि श्री भागीरथीदेवी को उनके कामो में खुदा पूरी कामयाबी दे।

—डॉ० सैयद महमूद

प० हरिभाऊजी उपाध्याय से मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध है। यहाँ उनकी उच्च साधना का परिणाम देख कर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान बहुत पिछडा हुआ है। इस प्रकार की महिला सस्था राजस्थान के लिए आशीर्वाद है। स्त्री-शिक्षा के इस आदर्श आश्रम को देखकर मुझे बडी खुशी हुई है।

—आचार्य मुनि जिनविजयजी

राजस्थान में तो यह काम बडा कठिन था। श्री हरिभाऊजी ने इस काम में नेतृत्व किया। इस प्रकार की सस्थाओ को आज पूरा सहयोग और सहायता मिलनी चाहिए। यदि राज्य यह नही करता तो अपना कर्तव्य पूरा नही करता।

—डॉ० कालूलाल श्रीमाली

मुझे इस तरह की सस्थाओ को देखकर जितनी खुशी होती है, उतनी वडी-बडी इमारतो वाले कालिजो और विश्वविद्यालयो को देखकर नही होती।

—डॉ० जाकिर हुसेन

यह देश की उन थोडी-सी सस्थाओ में से है जो राष्ट्रीय शिक्षा की दिशा में प्रयत्नशील है। यहाँ का सुन्दर वातावरण, हरिभाऊजी का मार्गदर्शन और स्वास्थ्यवर्धक जलवायु लडकियो के लिए वरदान है।

—डॉ० केमकर

मुझे यहाँ का कार्य वडा अच्छा लगा। देश में इस प्रकार की सस्थाओ की वहुत ज्यादा आवश्यकता है। बालिकाएँ ही आगे चलकर माताएँ बनती है। अत बालिकाओ की शिक्षा यहाँ जिस प्रकार दी जा रही है उसे देख कर प्रसन्नता होती है।

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

मुझे यहाँ आकर वडी प्रसन्नता हुई। हरिभाऊजी का और मेरा सम्बन्ध वहुत पुराना है। हम लोग पिछले ३० वर्षो से एक दूसरे से परिचित हैं। गान्धीजी के कारण हम लोगो का परिचय हुआ था। उन्होने यहाँ गान्धीजी के आदर्शो के अनुकूल जो शिक्षा का काम प्रारम्भ किया है, उसे देखकर मनको सचमुच वडी प्रसन्नता होती है। मै आशा करता हूँ कि यह काम उत्तरोत्तर वढता रहेगा।

—डॉ० जीवराज मेहता

इस सदन जैसी सस्थाओ का वडा भारी महत्त्व है। यहाँ की शिक्षिकाओ तथा छात्राओ की वडी भारी जिम्मेदारी है। इस प्रकार की सस्थाओ को जितना वढा सके वढावे, जितनी सहायता दे सके दें। इस सस्था को आगे वढाना है और इसके पीछे जो विचारधारा है उसे वढाना है।

—डॉ० सुशीला नैयर

मुझे आज यहाँ आकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यहाँ की विभिन्न प्रवृत्तियो को मैने देखा। सचमुच राजस्थान में यह अपने ढग की अनोखी सस्था है। इसके सामने आर्थिक समस्याएँ हैं। उनका अध्ययन करने की गरज से मै यहाँ आया हूँ जिससे मै कुछ उचित सलाह दे सकू।

—श्री रामनाथ पोद्दार

यह आश्रम हमें प्राचीन गुरुकुलो की याद दिलाता है ऐसा प्रतीत होता है। आधुनिक युग की नवीनता और प्राचीन काल की गुरुता का यहाँ सुन्दर समन्वय हो गया है। यहाँ हमने जो कुछ देखा उससे हमें विश्वास हो गया कि शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रयोग अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। ज्ञान, कर्म और कला का समन्वय यहाँ की शिक्षा प्रणाली में सचमुच प्रशसनीय है। वालिकाओ का कार्यक्रम वडा सुन्दर, आकर्षक और मधुर था। कार्यक्रम में विविधता तो थी ही, भावनाओ को ऊँचा उठाने की अपूर्व शक्ति भी थी जो अन्य स्थानो के कार्यक्रमो में नही थी। जिसे हम सच्चे अर्थ में सास्कृतिक कार्यक्रम कह सकते है वह हमें यही देखने को मिला। इसे देखकर हमें ऐसा लगा कि यहाँ शिक्षा के सम्बन्ध में जो कुछ विचार किया जाता है उसे मूर्त रूप देने का भी प्रयत्न किया जाता है। हमारे ऊपर इस सबका वडा प्रभाव पडा है।

प्रधानाध्यापको के सेमीनार के प्रतिनिधि
—श्री हरिश्चन्द्र जी

वहिन भागीरथी के भगीरथ प्रयत्न से व मान्यवर हरिभाऊजी के मार्ग दर्शन में यह शिक्षा सस्था प्रगति की ओर जा रही है। हटूण्डी का एक इतिहास है और उस इतिहास में सदन के कार्यकाल का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण अग है।

—श्री जयनारायण व्यास

इस सदन को मैं त्रिवेणी तीर्थ कहता हूँ। जिससे हम तरते हैं उसे तीर्थ कहते है। इस ससार सागर से तरने के लिए मानव शरीर नाव है। जिन्होने अपने इस शरीर को तीर्थ बना लिया है, वे ही तीर्थ का निर्माण कर सकते है। मैं इसे त्रिवेणी तीर्थ इसलिए कहता हूँ कि हमारे देश में नवयुग के तीन तीर्थ हैं वोलपुर का शान्तिनिकेतन, वर्धा का सेवाग्राम और पाण्डीचेरी का अरविन्दाश्रम। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि टैगोर के आश्रम की भावशीलता एव भक्ति भावना, सेवाग्राम की कर्मशीलता और अरविन्द आश्रम की विचारशीलता का यहाँ सौम्य समन्वय दिखाई देता है।

—श्री बा० भ० वोरकर
मराठी के प्रसिद्ध कवि और विचारक

यहाँ की वालिकाएँ स्वस्थ और प्रसन्न है और वे सन्तोषजनक कार्य कर रही है।

—आचार्य हरि रामचन्द्र दिवेकर, ग्वालियर

'महिला शिक्षा सदन' हटूण्डी में लडकियो की शिक्षा का जो प्रयोग प्राचीन परिपाटी को लेकर किया जा रहा है वह ध्यान देने योग्य है। पिछले दो सालो से इस सस्था में पुस्तकीय शिक्षा के अलावा गृहकार्य, सगीत और कला-कौशल की शिक्षा लडकियों को दी जा रही है। इसमें पुस्तकीय पढाई की बनिस्वत सामूहिक जीवन और अनुशासन पर वहुत जोर दिया जाता है जिससे लडकियाँ उपयोगी गृहिणी व शिक्षित नागरिक बन सकें। इसमें विधवाओ व परित्यक्ताओ को लेने की भी व्यवस्था है। यह बडे खेद की बात है कि ऐसी सस्था में जिसकी उपयोगिता की प्रशसा डॉ० राजेन्द्रप्रसाद व वालासाहव खेर जैसे प्रसिद्ध महानुभावो ने की है, राजपूताना के आसपास के प्रदेशो के माँ-बाप लडकियो को ज्यादा सख्या में नही भेज रहे हैं।

—"हिन्दुस्तान टाइम्स"
(१८ जनवरी, १९४८)

मुझे यहाँ की वालिकाओ के चेहरे पर प्रसन्नता और स्वस्थता देखकर बहुत खुशी हुई है। मैं स्वास्थ्य को बहुत महत्त्व देता हूँ क्योकि शरीर ही धर्म साधन का माध्यम है। उसके अच्छे-बुरे होने पर ही जीवन का अच्छा-बुरा बनना निर्भर है। यहाँ का काम और वह उद्देश्य जिससे यह सब किया जा रहा है मुझे बहुत अच्छे लगे।

—महाराजाधिराज शाहपुरा

आश्रम में आने का और वहाँ की प्रवृत्तियो को देखने का अवसर एक बार मुझे मिला था, उस समय वहाँ के कार्य और व्यवस्था को देखकर मुझे खुशी हुई थी।

—श्री वृजलाल वियाणी

इस आश्रम को देखकर मुझे बड़ी प्रेरणा मिली। यहाँ बालिकाएँ जिस तरह एक स्वर में गीत गाती है वह तो मुझे बहुत पसन्द आया।

—श्री हेलिन पार्कर

जबसे मुझे मालूम हुआ कि गान्धीजी के आदर्शों के अनुसार यहाँ एक संस्था चल रही है, तभी से मेरी इच्छा इसे देखने की हुई। स्विटजरलैण्ड में भी मैंने इस महिला शिक्षा सदन जैसी ही एक संस्था देखी थी जो गान्धीजी के आदर्शों के अनुसार चल रही है और जिसमें हाथ से काम करने की महत्ता पर जोर दिया जाता है। हमारे देश में ही नही, अन्य देशों में भी सरकारी शिक्षा संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य कई स्वतन्त्र शिक्षा संस्थाएँ होती है जो अपने आदर्शों के अनुसार काम करती है। ऐसी संस्थाओं की सभी जगह बड़ी जरूरत रहती है। हमारे देश में तो इस प्रकार की संस्थाओं की बहुत जरूरत है। वे देश के कोने-कोने में फैल जानी चाहिए। मैं मानता हूँ कि इस प्रकार की संस्थाओं को धन तथा अन्य साधनों की बड़ी जरूरत रहा करती है, उन्हें बड़ी कठिनाइयों में से गुजरना पड़ता है, लेकिन सब से बड़ी कमी है हरिभाऊजी जैसे व्यक्ति की। यदि ऐसे व्यक्ति मिल जावे तो फिर कोई कमी नही रहती। मैं आशा करता हूँ, उनकी देख-रेख में यह संस्था उत्तरोत्तर प्रगति करेगी।

—श्री कन्हैयालाल मेहता

६–७ मील रेता पार करके यहाँ आने के बाद ऐसा प्रतीत हुआ कि हम किसी शिक्षा व संस्कृति के नन्दन वन में आ गये है। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि यहाँ गान्धीजी के आदर्शों के अनुसार कार्य हो रहा है। यहाँ के जीवन में आत्मत्याग, सेवा-भाव और उच्चादर्श को देखकर मैं सबसे अधिक प्रभावित हुआ हूँ।

—श्री नगरकर

स० पू० चीफ कमिश्नर, अजमेर राज्य

मैं पिछले वार्षिकोत्सव के समय यहाँ आया था। उस समय से अब तक जो प्रगति हुई है उससे मुझे बड़ी खुशी हुई है। देश को ऊँचा उठाने में देवियों की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि यह बड़ा काम यहाँ हो रहा है।

—स्वामी ओमानन्दजी

आप बच्चियों को देखकर मुझे अपना बचपन याद आ जाता है जब कि मैं भी आपकी ही तरह इस आँगन में खेला कूदा करता था। यह बड़ी ही पवित्र भूमि है। इस आँगन में बहुत से साधकों ने साधना की है।

—कमलनयन बजाज

यहाँ के लोग जिन भावनाओं से भर कर यह सारा काम कर रहे है उससे मैं काफी प्रभावित हुआ हूँ। आज देश के सामने आजादी प्राप्त करने से भी अधिक कठिन काम उसके नव निर्माण का है। देश का नव-निर्माण अन्य किसी उपाय से इतना नही हो सकता जितना शिक्षा से बुनियादी और स्थायी निर्माण होगा। आज देश में यद्यपि अनेक शिक्षा संस्थाएँ है तथापि बालिकाओं की शिक्षा-संस्थाएँ बहुत कम है। उनमें भी गान्धीजी के आदर्शों पर चल कर राष्ट्र-निर्माण की ओर अग्रसर होने वाली संस्थाओं का तो अभाव-सा ही है। अतः मुझे यह देख कर बहुत खुशी हुई कि यह संस्था गान्धीजी के आदर्शों पर चलकर नारी जीवन के निर्माण के काम में लगी हुई है।

—श्री सिद्धराज ढड्डा, जयपुर

मुझे विश्वास है कि आपकी लगन और कर्तव्य-परायणता के फलस्वरूप शिक्षा सदन दिन-प्रति-दिन उन्नति की ओर अग्रसर होगा।

—श्री रामसहायजी, भेलसा

सदन महिला समाज की वास्तविक सेवा करता हुआ भारत की नारियो को इस योग्य वना रहा है कि वे सच्ची राष्ट्रीयता की भावना के साथ भारतमाता की सेवा कर सके। यह कार्य अत्यन्त स्तुत्य है।

—श्री जगमोहनलालजी श्रीवास्तव

आज देश के नव-निर्माण में नारी-जीवन के सर्वांगीण विकास की विशेप आवश्यकता है। आशा है, सदन इस उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होगा।

—श्री टीकाराम पालीवाल

मैं आशा करता हूँ कि इस सस्था के द्वारा हमारे देश और विशेपत इस प्रान्त की महिलाओ का अधिकाधिक उत्थान होगा।

—श्री युगलकिशोरजी चतुर्वेदी

महिला शिक्षा सदन महाराजस्थान में नारी जागरण का कार्य कर रहा है, यह सर्वविदित है।

—श्री राधादेवी गोयनका, अकोला

महिला शिक्षा सदन वास्तव में वडा उपयोगी कार्य कर रहा है।

—श्री श्यामलालजी पाण्डवीय, ग्वालियर

महिला शिक्षा सदन न केवल प्रान्त के लिए ही वल्कि देश के लिए अत्यन्त उपयोगी सस्था है। इस सस्था ने थोडे समय में जो प्रगति की है वह अत्यन्त प्रशसनीय है।

—श्री अमृतलालजी यादव, जयपुर

महिला शिक्षा सदन हमारे प्रान्त की एक आदर्श सस्था है।

—श्री मुकुटविहारीलालजी भार्गव, अजमेर

मुझे आशा है कि जिन वालिकाओ को यहाँ के स्वच्छ वातावरण में शिक्षा मिल रही है, वे दुनिया के सामने अपना अच्छा नमूना रखेंगी।

—श्री भूरेलाल वया

यहाँ केवल पुस्तकीय शिक्षा ही नही, चरित्र व जीवन-निर्माण की शिक्षा भी मिलती है, जो कि शिक्षा का सही उद्देश्य है। इस सस्था के प्रति मेरी श्रद्धा का यही प्रमाण है कि मैंने अपनी वालिका को यहाँ भजा है तथा सारे भारत और नैपाल तक की लडकियाँ यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आई है। मुझे आशा ह कि जो वच्चियाँ यहाँ शिक्षा प्राप्त करके निकलेगी वे यहाँ के सौरभ को अपने परिवारो और ग्रामो में फैलायेंगी।

—श्री रघुवीरदयालजी गोयल, वीकानेर

भगवान् से प्रार्थना है कि महिला शिक्षा सदन उत्तरोत्तर उन्नति करे और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्णतया सफल हो।

—श्री शुकदेवजी पाण्डे
मन्त्री, बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट, पिलानी

'सदन' का वातावरण व कार्य मुझे बड़ा जँचता है। उसकी धीमी किन्तु सुदृढ़ प्रगति और सफलता की जड़ में पूज्य हरिभाऊजी उपाध्याय की सौम्यता और प्रेरणा का सीधा हाथ है।

—श्री पूर्णचन्द्रजी जैन, जयपुर